साहित्य-मण्डल की सत्रहवीं पुस्तक

फूलदान

(उर्दू-भाषा की श्रेष्ठ कवितायें)

सम्पादक

ठाकुर शिवनाथसिंह शाण्डिल्य

प्रकाशक

साहित्य-मण्डल

दिल्ली ।

मूल्य दस आना

प्रकाशक—
ऋषभचरण जैन
मालिक—साहित्य-मण्डल,
बाज़ार सीताराम, दिल्ली ।

पहली बार

सन १९३३

मुद्रक—
जे० बी० प्रिंटिंग प्रेस,
चाँदनी चौक,
दिल्ली ।

दो शब्द

विद्वानों का कथन है कि ब्रह्मानन्द से दूसरे दर्जे पर काव्यानन्द है। जिसने एक वार काव्य-रस का रसास्वादन कर लिया, उसके लिये संसार के अन्य पदार्थ नीरस हो जाते है। महाकवि ग़ालिब ने ठीक ही कहा है—

स.ख़ुन क्या कह नहीं सकते कि जोयाँ हों जवाहर के।
जिगर क्या हम नहीं रखते कि खोदें जाके मादन को॥

अर्थात् हमारा हृदय ही हमारे लिये हीरों की खान है, तथा हमारी कविता ही हमारे लिये हीरा है। यदि हमारे हृदय में काव्य-पूर्ण भावों का अभाव होता, तो हम हीरों की खान खोदने का कष्ट उठाते।

कविता केवल आनन्द ही की सामाग्री नहीं है, वरन् उसने में ससार में वड़ी-वड़ी क्रान्तियाँ करादी हैं। कविता ने उत्साह-हीन मनुष्यों के हृदय में नूतन उत्साह का सचार कर दिया है, कायर पुरुषों को वीर बना दिया है। ससार का इतिहास इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से भरा हुआ है। जिस समय इङ्गलैण्ड के बादशाह एडवर्ड ने वेल्स पर आक्रमण किया, तो वेल्स के देश-भक्त कवियों ने देश-भक्ति का सञ्चार करनेवाले हृदय-विदारक पद्य गाने आरम्भ कर दिये। परिणाम यह हुआ कि

प्रत्येक मनुष्य देश पर प्राण न्योछावर करने के लिये तैयार होगया। इङ्गलैण्ड और वेल्स की लड़ाई शेर और चींटी की लड़ाई थी। अन्त में विजय एडवर्ड की ही हुई, किन्तु उसके दाँत खट्टे होगये।

फ़तह व शिकस्त क़िस्मत से है वले अय मीर।
मुक़ाबिला तो दिले-नातवाँ ने ख़ूब किया॥

विजयी होने पर एडवर्ड को वेल्स के कवियों पर इतना क्रोध आया कि उसने उनके वध की आज्ञा दे दी।

यूनान को तुर्कों की दासता से मुक्त करने का बहुत-कुछ श्रेय इङ्गलैण्ड के प्रख्यात कवि बॉयरन को है। बॉयरन की प्रसिद्ध कविता (Childe Harald's Pilgrimage) ने फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड और रूस में वह काम किया, जो आग बारूद पर करती है। इस कविता को पढ़कर उपरोक्त देश के निवासियों को इतनी आत्म-ग्लानि हुई कि वे यूनान की सहायता के लिये कटि-बद्ध होगये।

जन-साधारण को सदाचार के मार्ग पर ले जाने में जितनी सहायता उत्तम कविता कर सकती है, उतनी और कोई चीज़ नहीं कर सकती। बड़े-बड़े उपदेशकों की लम्बी-चौड़ी वक्तृता जो काम नहीं कर सकती, वह काम एक छोटा-सा चुभता हुआ पद कर जाता है। कवि लोग कड़वी से कड़वी बात कह जाते हैं, किन्तु उस पर काव्य-रस का ऐसा आवरण चढ़ा देते हैं कि सुननेवाले को बुरा नहीं मालूम होता।

एक बार जयपुर के राजा मिर्ज़ा जयसिंह अपनी नव-विवाहिता स्त्री पर इतने अनुरक्त होगये कि दिन-रात अन्तःपुर में पड़े रहने लगे। राज-कार्य चौपट होने लगे। सब मन्त्री समझाकर थक गये, किन्तु परिणाम कुछ भी न हुआ। उस समय महाकवि विहारीलाल ने निम्न-लिखित दोहा बनाकर किसी प्रकार उनके पास भिजवा दिया —

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बिधो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे को पढ़कर जयसिंह को होश आगया, और वे पूर्ववत् राज्य-कार्य करने लगे।

महाकवि तुलसीदास तथा महाकवि सूरदास अर्थात् राम-भक्त तथा कृष्ण-भक्त हिन्दी-कवि अपनी पीयूष-वर्षिणी कविता-द्वारा जो भक्ति-धारा बहा गये, उसके विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है।

संसार की प्राय सभी भाषाओं के काव्य में थोड़े-बहुत अंश में अद्भुत भाव तथा अकथनीय सुन्दरता भरी हुई है। उर्दू-काव्य-वाटिका भी बड़ी मनोहर तथा रमणीक है। उसकी नाज़ुक-ख़याली, वर्णन-शैली, अतिशयोक्ति तथा उपमायें बड़े मार्के की हैं, उर्दू शेरों को पढ़कर दिल में एक गुदगुदी पैदा होती है, और ज़बान चटख़ारे भरने लगती है। मौक़े-मौक़े से हृदय के भाव प्रकट करने में भी उर्दू-कवियों ने कमाल कर दिया है—

देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा ।
मैंने यह जाना कि गोया ये भी मेरे दिल में है ॥

किन्तु जहाँ उर्दू-काव्य में इतनी ख़ूबियाँ हैं, वहाँ एक बड़ी कमी भी है। उर्दू-साहित्य में शिक्षाप्रद तथा नीति-विषयक कवितात्रों का बड़ा ही अभाव है। उर्दू-कवियों ने अपनी सारी शक्ति अपने प्रेम-पात्र (माशूक़) का सौन्दर्य वर्णन् करने, उसकी बेवफ़ाई का राग अलापने तथा उसके वियोग में रोने ही में लगा दी है। परिणाम यह हुआ है कि उर्दू-कविता में उच्च भावपूर्ण पदों की बहुत ही कमी है। इस अभाव ही के कारण प्रसिद्ध सुधारक 'हाली' यह कहने के लिये विवश हुए हैं—

शेरो-क़सायद का नापाक दफ़्तर ।
अफ़ूनत में संडास से जो है बदतर ॥
हुआ इल्मो-दीं जिससे ताराज़ सारा ।
वो इल्मों में इल्मे-अदब है हमारा ॥

आधुनिक काल में उर्दू के सर्व-श्रेष्ठ महाकवि स्वर्गीय 'अकबर' ने भी, उर्दू-कवियों की आशिक़-मिज़ाजी का ज़िक्र करते हुए बहुत ही दुःख-भरे शब्दों में कहा है:—

बुतों की मदद से सब शायरी उर्दू की ममलू है ।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूँगा बुत टूटा ॥

अर्थात् उर्दू की कविता में आदि से अन्त तक प्रेम-पात्र (माशूक़) के सौन्दर्य का वर्णन् है। यदि उर्दू का प्रचार जाता रहा, तो उसका यही कारण होगा कि जनता अब इस प्रकार की कविता को पसन्द नहीं करती है।

इस छोटी-सी पुस्तक में हमने हिन्दी-पाठकों के विनोदार्थ उर्दू के काव्य-ग्रन्थों से नीति-विषयक कतिपय पद्यों का सङ्कलन करने का प्रयत्न किया है। जिन पाठकों ने उर्दू-साहित्य का—जो आदि से अन्त तक अधिकांश में श्रृङ्गार-रस से भरा हुआ है—अनुशीलन किया है, वही इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि इस प्रकार के पद्यों का सकलन करना कितना कठिन कार्य है। संकलित पद्यों में उर्दू-कवियों ने अपनी लेखनी का अनुपम चातुर्य दिखाया है, तथा नैतिक सिद्धान्तों का समावेश करके साधारण मनुष्यों का चरित्र सुधारने के लिये बहुत-सी सामग्री एकत्रित करदी है।

यदि इस पुस्तक से हिन्दी-पाठकों का कुछ भी मनोविनोद हुआ, तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—शिवनाथसिंह शाण्डिल्य।

फूलदान

ठाकुर शिवनाथसिंह शाण्डिल्य

ईश्वर-प्रार्थना

ख़ुदा का नाम रोशन है, ख़ुदा का नाम प्यारा है।
दिलों का इससे क़ुव्वत है, ज़बानों को सहारा है॥
ख़ुदा ही है ज़मीनो-आस्माँ का ख़ालिक़ो-मालिक।
उसी की क़ुदरतो-सनअ़त ने आलम को सँवारा है॥
उसी के हुक्म से है रात-दिन की ये कमी-बेशी।
उसी के हुक्म का ताबे-फ़लक़ पर हर सितारा है॥
उसी के हुक्म से फल और गल्ले की है पैदायश।
ज़मीं पर बदलियों से उसने पानी को उतारा है॥
उसी के इन्तज़ामो-हुक्म से मौसम बदलते हैं।
वही है वक्त पर जिसने हवाओं को उभारा है॥
ज़मीं पर सब्ज़वो गुल की नमूदें कैसी प्यारी हैं।
फ़लक पर चाँद-सूरज का भी क्या दिलकश नज़ारा है॥
ये जब तक सास चलती है, समझते हो हमीं-हम हैं।
अजल जब सर पै आ पहुँची तो फिर क्या बस हमारा है॥
करो ताअ़त ख़ुदा की बस वही माबूदे-बर-हक़ है।
उसी की शाने-यकताई जहाँ में आशकारा है॥

मनुष्य-योनि की श्रेष्ठता

१—बनाया कुछ 'ज़फ़र' ख़ालिक़ ने कब इन्सान से बेहतर ।
मलक को, देव को, जिन को, परी को, हूरो-ग़िल्माँ को ॥ (ज़फ़र)

२—हमने माना, हो फ़रिश्ते शेख़जी ।
आदमी होना बहुत दुश्वार है ॥ (अज्ञात)

३—फ़रिश्ते से बेहतर है, इन्सान बनना ।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा ॥ (ज़ौक़)

४—जो फ़रिश्ते करते हैं, कर सकता है इन्सान भी ।
पर, फ़रिश्तों से न जो हो, काम है इन्सान का ॥ (हाली)

उदार-हृदय मनुष्यों के धार्मिक विचार

१—हूँ मैं परवाना वहाँ रोशन जहाँ पर भेद हो ।
शम्मे-वहदत चाहिये, क़ुरआन हो या वेद हो ॥ (अकबर)

२—आता है वज्द मुझको, हर दीन की अदा पर ।
मसजिद में नाचता हूँ, नाक़ूस की सदा पर ॥ (अकबर)

३—आशिक़ों को इम्तियाज़े-दैरो-काबा कुछ नहीं ।
उसका नक़्शे-पा जहाँ देखा, वहाँ सर रख दिया ॥ (रौनक़)

४—'ज़ौक़' इस्माये-इलाही हैं, सब इस्मे-आज़म ।
उसके हर नाम में इज़्ज़त है, न इक नाम में ख़ास ॥ (ज़ौक़)

५—पण्डित को भी सलाम है, और मौलवी को भी ।
मज़हब न चाहिये, मुझे ईमान चाहिये ॥ (अकबर)

६—मिल्लतें रस्तों के हैं सब हेर-फेर ।
सब जहाज़ों का है लंगर एक घाट ॥ (हाली)

७—मसजिद में, बुतख़ाने में, कलीसा मे, दहर मे ।
दे दीजिये आवाज़ जहाँ आप कहीं हों ॥ (अज्ञात)

८—.ख़ुदा-.ख़ुदा न सही राम-राम कह लेंगे ।
मिलेगा राह में कावा सलाम कर लेंगे ॥ (अज्ञात)

धर्म का तत्व

१—दुख दे न किसी दिल के तईं बाग़े-जहाँ में ।
गर नख़्ले-हयात अपने से चाहे कि समर ले ॥ (अज्ञात)

२—सवाब कहता है, मिल जाऊँगा कर उनकी मदद ।
छिपा हुआ मैं ग़रीबों की भूख-प्यास में हूँ ॥ (अकबर)

३—तोड़ मसजिद, फाड़ मसहफ़, कर ज़िना और पी शराब ।
जो तू करता है, सो कर, पर मरदुम-आज़ारी न कर ॥ अज्ञात

संसार की असारता

१—दुनियाँ अजब सराये-फ़ानी देखी ।
हर चीज़ यहाँ की आनी-जानी देखी ॥
जो आके न जाये, वो बुढ़ापा देखा ।
जो जाके न आये, वो जवानी देखी ॥

२—क्या तुमसे बताऊँ उम्रे-फ़ानी क्या थी ।
बचपन क्या चीज़ थी, जवानी क्या चीज़ थी ॥

ये गुल की महक थी, वो हवा का झोंका।

इक मौज़े-फ़ना थी, ज़िन्दगानी क्या थी॥ (रवाँ)

३—फूल ऐ, बुलबुल न फूलों पर दो-रोज़ा है बहार।

एक झोंके में हवा सब रंगो-बू हो जायगा॥ (अज्ञात)

४—हक़ीक़त पर नज़र करता हूँ, जब दुनियाये-फ़ानी की।

बहारें ख़ाक में मिल जाती हैं, सब ज़िन्दगानी की॥ (अ०)

५—एक झोंका था कि जो सर से निकल गया।

देखते ही रह गये उम्रे-रवाँ को हम॥ (अज्ञात)

६—जिनके महलों में हज़ारों रंग के फ़ानूस थे।

झाड़ उनकी क़ब्र पर है, और निशाँ कुछ भी नहीं॥ (अज्ञात)

७—आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं।

सामान सौ बरस के हैं, कल की ख़बर नहीं॥

८—इबरत की जा है 'अकबर' देखे हैं हमने अक्सर।

नीचे ज़मीं के सोते ऊँचे मकानवाले॥ (अकबर मेरठी).

९—जगह दिल लगाने की दुनियाँ नहीं है।

ये इबरत की जा है, तमाशा नहीं है॥ (अज्ञात)

१०—मिट्टी में मिले जाते हैं, मस्ती कैसी।

देखो तो बुलन्दों को है पस्ती कैसी॥

चुपचाप पड़ी सोती है दुनियाँ 'बिस्मिल'।

ये शहरे-ख़ामोशाँ की है बस्ती कैसी॥

११—ये दुनियाँ झमेला है, और कुछ नहीं है।

क़िस्सा, एक रेला है, और कुछ नहीं है॥

ये कड़वा करेला है और कुछ नहीं है।
घड़ी-भर का मेला है, और कुछ नहीं है॥
वक़ा इसकी कोंपल फना इसकी जड़ है।
फ़क़त एक मिटा देनेवाली रगड़ है॥ (मुज़तर)

संसार दुःखपूर्ण है।

१—रंगे-इशरत बाग़े-आलम में नज़र आता नहीं।
गुल को गुलचीं का ख़तर, बुल्बुल को गम सैयाद का॥ (नासिख़)
२—हर शख़्स को सद चाक-गरेबॉ देखा।
इन्सान को दुनियॉ में परेशॉ देखा॥
ये आलमे-फ़ानी भी सराये-गम है।
आराम से यहॉ कोई न महमॉ देखा॥ (अज्ञात)
३—कभी ख़ौफ़े-ख़िज़ा है, और कभी सैयाद का खटका।
बनाऊँ क्या समझकर आशियाना इस गुलिस्तॉ में॥ (रिन्द)

संसार परिवर्तनशील है

१—कहीं शादी कहीं गम—गर्ज़ दुनियॉ की दुरंगी है।
पहनता है कफ़न कोई, कोई कपड़े बदलता है॥ (बीनाई)
२—कुछ रंज है, दुनियॉ में तो कुछ हमको खुशी है।
ऑखों में जो ऑसू हैं, तो होठों पे हँसी है॥ (बीनाई)
३—मरते ही जितने यार थे अगयार हो गये।
सब ख़ाक में मिलाने को तैयार हो गए॥ (मुन्तज़िर अमरोहवी)

४—अभी ग़म है, अभी शादी, अभी रोना, अभी हँसना।
तमाशा दीद के क़ाबिल है, इस दुनियाये-फ़ानी का॥ (बेख़ुद)

५—फ़लक़ देता है, जिनको ऐश उनको ग़म भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक़्क़ारे, वहीं मातम भी होते हैं॥ (सफ़र)

६—किसी का कुन्दा नगीने पै नाम होता है।
किसी की उम्र का लबरेज़ जाम होता है॥
अजब सरा है ये दुनियाँ कि जिसमें शामो-सुबह।
किसी का कूच, किसी का मुक़ाम होता है॥ (मिर्ज़ा दबीर)

मृत्यु-मीमांसा

१—हस्ती से ज़ियादा है कुछ आराम अदम में।
जो जाता है यहाँ से वह दोबारा नहीं आता॥ (ज़ौक़)

२—फ़ना का होश आना ज़िन्दगी का दर्दे-सर जाना।
अजल क्या है, ख़ुमारे-बादये-हस्ती उतर जाना॥ (चकबस्त)

३—ज़ीस्त कहते हैं, जिसे है इज़्तराब!
मौत कहते हैं, जिसे आराम है॥ (अज्ञात)

४—इससे है ग़रीबों को तसल्ली कि अजल ने।
मुफ़लिस को जो मारा, तो न ज़रदार भी छोड़ा॥ (ज़फ़र)

५—सर झुका देते हैं सब हुक्मे-ख़ुदा के सामने।
शाह तक मजबूर होते हैं, फ़ना के सामने॥ (रश्क)

६—किसी के मरने से ये न समझो कि जान वापिस नहीं मिलेगी।
बईद शाने-करीम से है, किसी को कुछ देके छीन लेना॥
(अकबर)

७—तिफ़्ल रो-रोके ये कहते हैं ज़बाने-हाल से।
जो अदम में चैन था, दामाने-मादर में नहीं॥ (अज्ञात)

क़ब्र

१—बस इतना फ़र्क़ है, इन्सान में और उसकी तुरबत में।
वो है एक ढेर मिट्टी का, ये है तसवीर मिट्टी की॥ (मंज़र)

२—ऐ लहद, ऐ क़ब्र, ऐ ख़िलवते-रूहे-रवाँ।
ज़ीस्त की वामान्दगी का एक गहवारा है तू॥
तेरे हर गोशे में है, मौजूद सामाने-अमाँ;
मंज़रे-हस्ती का एक ख़ामोश नज़्ज़ारा है तू॥ (अज्ञात)

परोपकार

१—ग़ैरों के वास्ते जो परेशान हो गया।
इन्सान भी न था तो वो इन्सान होगया॥
अव्वल तो ख़ल्क़ और करम भी फिर उसके साथ।
बातें ये जिसको आगईं इन्सान हो गया॥ (नूह)

२—अल्लाह के बन्दों से नहीं जिसको मोहब्बत।
अल्लाह की उलफ़त का मुस्तहक़ नहीं है॥

३—पायेगा वो क्या दौलते-यज़दा के ख़ज़ाने।
जिस दिल में ग़रीबों के लिये प्यार नहीं है॥ (रविश)

४—जो मर्दे-वफ़ा आग में ग़ैरों की जल गया।
शम्मे-रुख़े महबूब का परवाना वही है॥ (अज्ञात)

५—यारों की तरह लुत्फ़ो-करम आम किये जा।
आया है, जो दुनियाँ में तो, कुछ नाम कि~ जा॥ (आतिश)

६—नाम मन्जूर है, तो फ़ैज़ के असबाब बना :

पुल बना, चाह बना, मसजिदो-तालाब बना ॥ (ज़ौक़)

त्याग की महिमा

१—भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम ।

अब जो नफ़रत हमने की, वो बेक़रार आने को है ॥ (अज्ञात)

२—हम ख़ुदा थे, गर न होता दिल में कोई मुदआ ।

आरज़ूओं ने हमारो, हमको बन्दा कर दिया ॥ (अज्ञात)

३—इसको परवा न रही, खुश रहे दुनियाँ मुझसे ।

आक़िलों में मेरी गिनती हो, ये सौदा न रहा ॥ (अकबर)

४—वाइज़ ! कमाले-तर्क से मिलती है याँ मुराद ।

दुनियाँ जो छोड़दी है, तो उक़बा भी छोड़ दे ॥

सौदागरी नहीं, ये इबादत ख़ुदा की है ।

ऐ, बेख़बर जज़ा की तमन्ना भी छोड़ दे ॥ (इक़बाल)

नम्रता

१—ख़ाक का पुतला है इन्साँ, ऐ 'ज़फ़र' इसके लये ।

सरकशी अच्छी नहीं है, ख़ाकसारी चाहिये ॥ (ज़फ़र)

२—कर इज्ज़ गर आक़िलो-फरज़ाना है ।

दानाई पे भूला है, तो दीवाना है ॥

तसबीह के दाने पर नज़र कर नादाँ ।

गरदिश में गिरफ़्तार है, जो दाना है ॥ (अज्ञात)

३—सर उठाकर गिर पड़ा, फ़व्वारा आख़िर सर के बल ।

झुकके चलना चाहिये, याँ सर उठाना है मना ॥ (अज्ञात)

४—ज़मीं की तरह जिसने आजिज़ी वो इकिसारी की।
ख़ुदा की रहमतों ने उसको ढाँका आस्माँ होकर ॥ (अकबर)

५—बशर ने ख़ाक पाया, लाल पाया, या गौहर पाया।
मिजाज़ अच्छा अगर पाया, तो सब-कुछ उसने भर पाया॥ (दाग़)

६—दुश्मनों से दोस्ती ग़ैरों से यारी चाहिये।
ख़ाक के पुतले बने तो ख़ाकसारी चहिये ॥ (दाग़)

८—काट लेना हर कठिन मंजिल का कुछ मुश्किल नहीं।
इक ज़रा इन्सान में चलने की हिम्मत चाहिए ॥ (अज्ञात)

९—कुछ न कुछ करने को इन्सान हुआ है पैदा।
शगल अच्छा नहीं होता, कोई बेकारी का ॥ (इन्द्रजीत)

१०—हो नहीं सकती कभी आसान उसकी मुश्किलें।
ख़ुद जो अपनी मुश्किले आसान करता ही नहीं ॥ (इन्द्रजीत)

भाग्य और पुरुषार्थ

१—अच्छा-बुरा बनाना, 'मौक़ूफ़ अक्ल पर है।
तक़दीर के महल का मेमार ख़ुद बशर है ॥ (अज्ञात)

२—वही कानूने-फ़ितरत है, जिसे तक़दीर कहते हैं।
जिसे किस्मत समझते हैं, वो तदबीरों का हासिल है ॥ (अकबर)

३—तेरी हिम्मत ही तेरी क़िस्मत है।
हुक्मे-तक़दीर क्या क़ज़ा है ॥
और जो होना है कुछ तो होने दे।
रोने-धोने से यूँ हुआ क्या है ॥

काम से काम अपने रख ग़ाफ़िल।
काम औरों के देखता क्या है ॥ (बशीर)

४—मुमकिन नहीं है चाक को तक़दीर के करना रफ़ू ।
सोज़ने-तदबीर गो बरसों युँही सीती रहे ॥ (अज्ञात)

५—जो मुक़द्दर है वो टल सकता नहीं 'तालिब' कभी ।
तेरी क़िस्मत का तुझे मिलता है छप्पर फाड़के ॥

गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं

१—इन्सान खोके वक़्त को पाता नहीं कभी ।
जो दम गुज़र गया, वह फिर आता नहीं कभी ॥ (मीर अनीस)

२—वक़्त पर क़तरा है काफ़ी, आवे जोश-अञ्जाम का ।
जब कि खेती जल गई, बरसा तो फिर किस काम का ॥ (अज्ञात)

३—मुझको ग़फ़लत ने ख़बर अय्यामे फ़ुर्सत की न दी ।
आह ! जब जाते रहे दिन तब मैं पछताने लगा ॥ (क़ुदरत)

विद्या की महिमा

१—सब जानते हैं इल्म से है ज़िन्दगीये-रूह ।
बे-इल्म है, अगर तो वो इन्साँ है नातमाम ॥
बे-इल्म, बे-हुनर है, गर दुनियाँ में कोई क़ौम ।
नेचर का इक़्तज़ा है, रहे बनके जो ग़ुलाम ॥
तालीम गर नहीं है ज़माने के हस्ब-हाल ।
फिर क्या उम्मीदे-दौलतो-आरामो-एहतराम ॥ (अकबर)

२—तालीम है मुक़ामे-तरक़्क़ी का रास्ता ।
तालीम ही बताती है तौसीफ़े-किब्रिया ॥
तालीम ही से होते हैं उक़्दे तमाम हल ।
तालीम मुश्ते-ख़ाक को करती है कीमियाँ ॥
तालीम ही का हजरते-इन्साँ को नाज़ है ।
तालीम ही से हर कहीं-मह सरफ़राज़ है ॥ (अज्ञात)

३—आदमी में गर नहीं इल्मो-हुनर अक़्लो-अदब ।
है वो चौपाये से बदतर, यूँ बशर होने को है ॥ (कैफ़)
रहेगा इल्म की दौलत से जो महरूम दुनिया में ।
नहीं इन्सान वो हम-रुतबा कहिये उसको हैवाँ का ॥ (अज्ञात)

युवाओं को उपदेश

१—कुछ करलो नौजवानो, उठती जवानियाँ हैं ।
खेतो को देलो पानी, अब बह रही है गङ्गा ॥ (हाली)

२—ख़ुदा की याद जवानी में गाफ़िलो ! करलो ।
वगरना वक़्ते-फ़ज़ीलत तमाम होता है ॥ (आतिश)
मज़ा है जोशे-जवानी में पारसाई का ।
वो नाख़ुदा है जो किश्ती बचाये तूफ़ाँ से ॥ (हफ़ीज़)

सत्सङ्गति

१—यही तो खान है, जिससे रतन अनमोल मिलते हैं ।
इसी पौदे में विद्या के सुगन्धित फूल खिलते हैं ॥

है मुक्ति जिसका फल वो पेड़ हैं, सत्-पुरुष की संगत।
सुहाती है जो मन को, है इसी वो पुष्पकी रङ्गत ॥ (अज्ञात)

३—वक़् पर क़तरा बहुत है, अबरे-जोश-हंगाम का।
जल गया जब खेत,तब बरसा तो फिर किस काम का॥ अज्ञात

७—बरतरी होती है, दुनिया में मयस्सर इज्ज़ से।
झुकके चलने से महे-नौ माहे-कामिल होगया॥ (अज्ञात)

८—ख़ाकसारों को सदा फूलते-फलते देखा।
दाना सरसब्ज़ हुआ ख़ाक में पिनहा होकर॥ (हश्र)

९—मोहब्बत से बना लेते हैं, अपना दोस्त दुश्मन को।
झुकाती है हमारी आजिज़ी सरकश की गर्दन को॥ (चकबस्त)

१०—ग़ुबारे-राह बनकर चश्मे-मरदुम में महल पाया।
निहाले-ख़ाकसारी को लगाकर हमने फल पाया॥ (आतिश)

११—मंज़ूर है दुनियाँ में गर हिम्मते-आली।
कर गरदने-तस्लीम को ख़म और ज़ियादा॥
लेते हैं समर, शाखे-समरवर को झुकाकर।
झुकते हैं सख़ी वक़्ते-करम और ज़ियादा॥ (अज्ञात)

१२—बाग़-आलम में नहीं फलता नख़्ले-सरकशी।
सर्व की तक़दीर में है बारवर होना कहाँ॥(इन्द्रजीत शर्मा)

१३—ज़बाँ खोलेंगे मुझ पर बदज़बाँ क्या बदशआरी से।
कि मैंने ख़ाक भरदी मुँह में उनके ख़ाकसारी से॥ (ज़ौक़)

मीठा बोलना

१—फ़ितरत को नापसन्द है सख़्ती ज़वान में।
पैदा हुई न इसलिये हड्डी ज़वान में॥ (हबीब)

२—बात का ज़ख़्म है तलवार के जख़्मों से सिवा।
कीजिये क़त्ल मगर मुँह से कुछ इरशाद न हो॥ (दाग़)

३—कहे एक जब सुनले इन्सान दो।
कि हक़ ने ज़वाँ एक दी, कान दो॥ (ज़ौक़)

४—जहाँ काम होता है मीठी ज़वाँ से।
नहीं इसमें लगती है दौलत ज़ियादा॥ (हाली)

५—बनोगे खुसरवे, अक़लीमे-दिल शीरीं-ज़वाँ होकर।
जहाँगीरी करेगी ये अदा नूरे-जहाँ होकर॥

६—जो रखता है, क़ाबू में 'दानिश' ज़वाँ को।
बना लेगा वह अपना सारे जहाँ को॥ (दानिश)

हृदय की शुद्धता

१—तूने ए, ग़ाफ़िल! अगर सारा बदन धोया तो क्या।
धो सके गर मैले-दुनियाँ दिल के तू अन्दर से धो॥ (ज़फ़र)

२—तालीम का शोर ऐसा, तहज़ीब का गुल इतना।
बरकत जो नहीं होती, नीयत की ख़राबी है॥ (अकबर)

३—बदी नीयत की छिप सकती नहीं, शीरीं-ज़बानी से।
दिल अच्छा हो तो निभ जाती है, अक्सर बदज़बाँ होकर॥
('अकबर)

४—दिल से वो काफ़िर सनम निकले तो सब-कुछ हो क़बूल ।
जाके मसजिद में इबादत मैं करूँ तो क्या करूँ ॥ (दाग़)

५—दैरो-काबे को गया, बुत को किया है सिजदा ।
दिल तो काफ़िर है, मुसलमान रहे या न रहे ॥ (अज्ञात)

६—अपने ऐबों पर नज़र कर अपने दिल को पाक कर ।
क्या हुआ गर ख़ल्क़ में तू पारसा मशहूर है ॥ (रंगीन)

७—ख़ानये दिल है सफ़ैद, इसकी सियाही दूर कर ।
क्या सफ़ैदी से महल करता है तू अपना सफ़ैद ॥ (ज़फ़र)

सन्तोष

१—तलब अपनी न बढ़ने दो, ज़रूरी रिज़्क़ की हद से ।
बचा लेगी क़नाअत तेरी तुझको कुफ़्र की ज़द से । (अकबर)

२—फ़क़ीरों में हैं गो लेकिन, किसी दर पर नहीं जाते ।
तवक्कुल का है तकिया, आशना है अपने बिस्तर के ॥ (ख़ामोश)

३—है सब्रो-क़नाअत बड़ी चीज़ 'अकबर',
लज़्ज़त उसकी तूने चक्खी है कहाँ ॥
दुनिया-तलबी के वाज़ में महव है तू,
ये तो ज़रा समझ कि रक्खी है कहाँ ॥ (अकबर)

४—शगुफ़्ता रहती है ख़ातिर हमेशा ।
क़नाअत भी बहारे-बेख़िज़ाँ है ॥ (आतिश)

५—हो क़नाअत जो ज़िन्दगी का उसूल ।
तंगदस्ती फ़राख़दस्ती है ॥ (इक़बाल)

६—फ़क़ीरी फख़्रे शाहाँ है, ये क़ौल 'अख़्तर' का है ऐ दिल।
बड़ा है तख़्ते-सुल्ताँ से, कहीं पाया तवक्कुल का ॥ (अख़्तर)

७—तमन्ना दौलते-दुनियाँ को ऐ 'आतिश' नहीं रहती।
क़नाअत से गनी अल्लाह कर देता है मिसकीं को ॥ (आतिश)

८—दर पै शाहों के नहीं जाते फ़क़ीर अल्लाह के।
सर जहाँ रखते हैं सब, हम वाँ क़दम रखते नहीं ॥(अनीस)

उद्यम करो

१—गफ़लत को छोड़ दीजिये कुछ काम कीजिये।
इल्मो-हुनर से नाम का अंजाम कीजिये ॥
गर कुछ नहीं तो हज़रते 'अकबर' का क़ौल है।
मुर्दों के साथ क़ब्र में आराम कीजिये ॥ (अकबर)

२—हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।
वो कौन-सा उकदा है हल हो नहीं सकता ॥ (अज्ञात)

३—है जान के साथ काम इन्सान के लिये।
बनती नहीं जिन्दगी बेकाम किये ॥
जीते हो तो कुछ कीजिये ज़िन्दों की तरह।
मुर्दों की तरह जिये तो क्या ख़ाक जिये ॥ (हाली)

४—कलजुग नहीं कर-जुग है यह, यहाँ दिन को दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक्द है उस हाथ दे इस हाथ ले ॥ (नज़ीर)

५—सफ़र है, शर्त मुसाफ़िर-नवाज़ बहुतेरे।
हज़ारहा शजर सायेदार राह में हैं ॥ (आतिश)

६—आदमीयत से है बाला आदमी का मर्तबा ।
पस्त-हिम्मत ये न होवे पस्त-क़ामत हो तो हो ॥ (ज़ौक़

७—बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे ।
जहाँ तक कि हो काम अपने सँवारे ॥
ख़ुदा के सिवा छोड़दे सब सहारे ।
कि हैं आरज़ी ज़ोर कमज़ोर सारे ॥
अड़े वक़्त तुम दायें-बायें न झाँको ।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हाँको ॥ (हाली)

कुसंग के दोष

१—बद की सोहबत में मत बैठो ।
इसका है अञ्जाम बुरा ॥
बद न बने तो बद कहलावे ।
बद अच्छा बदनाम बुरा ॥ (अज्ञात)

२—बना देती है नेकों को बुरा सोहबत बुराई की ।
हुआ मैला है जल, मिट्टी से जब भी आशनाई की ॥
बुरों में रहके इन्साँ कोई, अच्छा रह नहीं सकता ।
कभी कपड़ा धुवें में छूके उजला रह नहीं सकता ॥ (अज्ञात)

३—नाक़िसों की दोस्ती दे दीनो ईमाँ को बिगाड़ ।
पूछलो जाकर गुलिस्ताँ से ख़िज़ाँ का इख़्तलाज । (सोज़)

४—दिला नाजिन्स की सोहबत भी तुर्फ़ा गुल खिलाती है।
करें नौरंगियां डालें अगर पानी में रोग़न को ॥ (वज़ीर)

४—सोहबत से हो बदों की ज़रर असिल नेक को।
होता है रंग गर्द से तबदील आब का ॥ (नस्साख़)

मित्र कैसा होना चाहिए

१—आपस में जो है सब ने रवादारे-दोस्ती।
कहिये उसी को यारो मददगारे दोस्ती ॥
जो रजो-ग़म में हाज़िरो-गायब हो इक तरह।
मिलिये उसी से वो है सज़ावारे-दोस्ती ॥
आदम का दोस्तदार हो शेरों की तरह जो।
हमको तो ऐसे शख़्स से है आरे-दोस्ती ॥
२—वक्त पर जो काम आये दोस्त उसको जानिये।
वर्ना रहता ऐ, 'ज़फर' यहाँ काम किसका बन्द है ॥ (ज़फर)
३—जा राहे-दोस्ती में ऐ, 'मीर' मर गये है।
सर देंगे लोग उनके पा के निशान ऊपर ॥ (मीर)

सच्चे मित्र दुर्लभ हैं

१—चार दिन की दोस्ती का है, ज़माने में रिवाज।
किस तवक़्क़ो पर किसी से आशनाई कीजिये ॥
२—ख़ुदा मिले तो मिले, आशना नहीं मिलता।
किसी का कोई नहीं, दोस्त, सब कहानी है ॥
३—तअल्लुक़ रूह ने मुझको जसद का नागवारा है।
ज़माने मे चलन है, चार दिन की आशनाई का ॥ (नातिश)

४—य' कहाँ की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासह ।
कोई चारासाज़ होता, कोई ग़मगुसार होता ॥ (ग़ालिब)
ग़ैरते नाला वो फ़रियाद न खो ऐ, 'आतिश' ।
आशना कोई नहीं, कौन ख़बर लेता है ॥ (आतिश)

विपत्ति में अपने भी पराये हो जाते हैं

१—सियाहबख़्ती में कब कोई किसी का साथ देता है ।
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्साँ से ॥ (अज्ञात)
२—तीराबख़्ती देखकर साया परे को हट गया ।
धूप में ली आड़ हमने जब किसी दीवार की ॥ (अज्ञात)
३— होता नहीं कोई बुरे वक़्त में शरीक ।
पत्ते भी भागते हैं, ख़िज़ाँ में शजर से दूर ॥ (अज्ञात)
४—पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं, देखो दम-निज़ाँ ।
वक़्त पड़ता है तो सब आँख चुरा जाते हैं ॥ (अमीर)
५—कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक ।
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती हैं ॥ (अज्ञात)
६—आँखें भी हाय अपनी नज़्अ़ में बदल गईं ।
सच है कि बेकसी में कोई आशना नहीं ॥ (अमीर मीनाई)

विपत्ति में अपने-पराये की पहचान होती है

१—अपने-बेगानों की खुलती है हक़ीक़त इससे ।
खरे-खोटे की कसौटी है मुसीबत क्या है ॥ (अज्ञात)

२—ऐश के यार तो अग़ियार भी बन जाते हैं।
दोस्त वो हैं जो बुरे वक़्त में काम आते हैं॥ (अज्ञात)
३—ज़वाले-जाहो-हशमत में बस इतनी बात अच्छी है।
कि दुनिया को बख़ूबी आदमी पहचान जाता है॥ (अक्बर)

अत्याचार का फल अवश्य मिलता है

१—ये ज़ुल्म है सिर्फ़ चन्द रोज़ा, कि एक दिन है इन्तक़ाम का भी।
अमीर हम्माम गर्म करलें, गरीब का झोपड़ा जलाकर॥
(अमीर)
२—क़रीब है यार रोज़े-महशर छिपेगा कुश्तों का ख़ून क्योंकर।
जो चुप रहेगी ज़बाने-ख़ञ्जर लहू पुकारेगा आस्तीं का॥(दाग़)
३—जो सितमगार है कभी वह फूलते-फलते नहीं।
सब्ज़ होते खेत देखा है, कहीं शमशेर का॥ (नासिख़)
४—ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।
नाव कागज़ की कभी चलती नहीं॥ (अज्ञात)
५—आज उनके वास्ते हैं, तो कल अपने वास्ते।
देकर किसी का रंज, कोई आदमी न हो॥ (अज्ञात)
६—खोटा किसी के मत लगा, गर मिस्ले-गुल फूला है तू।
वो तेरे हक़ में ज़हर, किस बात पर फूला है तू॥ (नज़ीर)
७—ख़ुदा ग़रीब की सुनता है, ग़ैब में फ़रियाद।
अगर ज़मीर दिले-दर्दमन्द रखता है। (वर्क़)

८—मत आग में डाल और को, फिर घास का पूला है तू।
सुन रख यह नुक्ता बेख़बर, किस बात पर भूला है तू॥

(नज़ीर)

स्वभाव नहीं बदलता

१—असफ़ल कभी न पहुँचे, आला के मर्तबे को।
कब शहद की हलावत पाता है गुड़ का शीरा॥ (ग़ाफ़िल)

२—जाती नहीं है सख़्त दिलों की करख़्तगी।
होती नहीं है नर्म कभी करगदन की शाख़॥ (नस्साख़)

३—ऐबे-ज़ाती तर्बियत से भी न ज़ायल हो सके।
तलख़ी शक्कर में भी देवें तल्ख़ जो बादाम हों॥ (ग़ाफ़िल)

४—कमीने में कभी बूए-शराफ़त आ नहीं सकती।
न शाख़े-तुख़्मे-हन्ज़िल में हो पैदा लुत्फ़ सन्दल का॥ (अक०)

५—नहीं जाती असालत आदमी की सोहबते-बद से।
न हो आहन रहे जा पास आहन के तिला बरसों॥ (अज्ञात)

६—असर अच्छों के दिल में कर नहीं सकती बुरी सोहबत।
नहीं होता तयस्सर मन में जैसे साँप के फन का॥ (अज्ञात)

७—इत्र की मिट्टी में मिलकर भी महक जाती नहीं।
तोड़ भी डालो तो हीरे की चमक जाती नहीं॥ (अज्ञात)

८—मुमकिन है कि टल जाय जबल, अपने मुकिर से।
लेकिन कभी तब्दील जिबल्लत नहीं होती॥ (अज्ञात)

मनुष्य को स्वयं अपने दोष नहीं दीखते

१—औरों पै मौतरिज़ थे अपनी जो आँख खोली।
अपने ही दिल को हमने गज्जे-अयूब पाया ॥ (अकबर)

२—इतनी ही दुशवार अपने ऐब की पहचान है।
जिस क़दर करनी मलामत और को आसान है॥ (हाली)

३—हम किसी को क्यों कहें मुँह से बुरा अपने 'ज़फ़र'।
हम ही सब से हैं बुरे, हमसे बुरा कोई नहीं ॥ (ज़फ़र)

४—ऐ 'ज़ौक़', किसको चश्मे-हिक़ारत से देखिये।
सब हम से जियादा हैं, कोई हम से कम नहीं ॥ (ज़ौक़)

५—न थी हाल की जब हमें अपने ख़बर।
रहे देखते औरों के ऐबो-हुनर ॥
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र।
तो निगाह में कोई बुरा न रहा ॥ (अज्ञात)

धन-प्रशंसा

१—ज़रदार जो हैं तो क्यों न हों ख़न्दा बरगे-गुल।
बागे-जहां में ज़र भी कम-अज-जाफ़रां नहीं ॥ (नासिख़)

२—इन रोज़ों ख़ान्दां को कोई पूछता नहीं।
इज्जत है आदमी की बस अब सीमो-ज़र के साथ। (दलेर)

३—तै करो नाहक़ नसबनामे को वक़्त आया है अब।
बे-असर होगी शराफ़त माल देखा जायगा ॥ (अकबर)

४—कौड़ी है जिनके पास वो अहले-यक़ीन हैं।
खाने को उनके न्यामतें सौ बहतरीन हैं॥
कपड़े भी उनके तन में निहायत महीन हैं।
समझे हैं वो जो उसको बड़े नुक़्ते-चीन हैं॥
कौड़ी के सब जहान में नक़्शो-नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

५—कौड़ी बग़ैर सोते थे ख़ाली ज़मीन पर।
कौड़ी हुई तो रहने लगे शहनसीन पर॥
पटके सुनहरी बँध गये जामों की चीन पर।
मोती के लच्छे लग गये घोड़े की ज़ीन पर॥
कौड़ी के सब जहान में नक़्शोनगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

६—जब तक थे गिरह में अहमक़ों की पैसे।
सब कहते थे उनको आप ऐसे-ऐसे॥
मुफ़लिस जो हुए तो फिर किसी ने ऐ 'ज़ौक़'।
पूछा न कि थे ये वो कौन ऐसे-तैसे॥ (ज़ौक़)

७—रौनक़ो-बहार सब होती है पैसे से हसूल।
और जो न होवे, यह चेहरे पै उड़ती ख़ाक-धूल॥
पैसा ही सारी चीज़ है पैसा ही मर्द-सूल।
बिन पैसे आदमी है जहाँ-बीच नाक़बूल॥
पैसा ही रङ्ग-रूप है, पैसा ही माल है।
पैसा न हो तो आदमी चर्ख़े की माल है॥ (नज़ीर

८—कहते थे बुरा ज़र को सखुन-सज पुराने।
उन लोगों के हमराह गये उनके ज़माने॥
वह फ़लसफा वो इल्मो-अदब अब है फसाने।
बदला है नया रङ्ग ज़माने की हवा ने॥
दौलत से है अब ज़ीनते-काशानये-तहज़ीब।
कहते है इसे शम्मा-जलुख़ानये-तहज़ीब॥ (चकबस्त)

धन-निन्दा

१—है ज़हर हक़ मे तेरे दौलत का यह ज़ख़ीरा।
ज़रदार ही तो अक्सर मरता है खाके हीरा॥
२—जो माल के दोस्त है कोई उनसे यह कह दे।
आफ़त हुई क़ारूं के लिये ज़र की मोहब्बत॥ (असीर)
३—तहसील किया तो है तहफ्फुज का ख़याल।
महफ़ूज़ रहा तो सरफ का है जजाल॥
आने मे भी रञ्ज और जाने मे भी रञ्ज।
लानत तुझ पर हज़ार लानत ऐ माल॥ (महर)
४—काम क़ारूं के न आया मालो-ज़र।
मुनइमो दौलत पे बेजा है घमण्ड॥ (अञ्जुम)
५—फ़हमीदवाले करते है दौलत पै कब घमण्ड।
क्या ऐतबार ज़िन्दगीये-मुस्तआर का॥ (तमन्ना)

दान-माहात्म्य

१—तौफ़ीक़ अता करे अगर तुझको .खुदा ।
औरों को खिला बैठके और .खुद भी खा ॥
चलती-फिरती है छाँव दौलत ऐ, 'महर' ।
जब तक है पास इससे कुछ नफ़ा कमा ॥ (महर)

२—माल रखने को नहीं, कहदो ग़नी से, बाँट दे ।
लफ़्ज़ में तक़सीम के दाख़िल किया है सीम को ॥ (अज्ञात)

३—तुझे इमारत की गर तलब है, लुटादे दौलत को बेकसों में ।
मिसाले दरिया जो पाये, दे दे, मिलेगा, मत इन्तज़ार कर, दे ॥

कृपण-निन्दा

१—सीराब न हो जिससे कोई तिश्नये-मक़सूद ।
ऐ 'ज़ौक़' गर वो आबे-बक़ा भी है तो क्या है ॥ (ज़ौक़)

२—वाइज़ न तुम पियो न किसी को पिला सको ।
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की ॥ (ग़ालिब)

३—ज़र की जो मोहब्बत तुझे पड़ जायेगी बाबा ।
दुख इसमें तेरी रूह बहुत पायगी बाबा ॥
हर खाने को हर पीने को तरसायगी बाबा ॥
दौलत जो तेरे यहाँ-ही न काम आयेगी बाबा ॥
फिर क्या तुझे अल्लाह से मिलवायेगी बाबा ॥

४—दौलत जो तेरे पास है रख याद, तू यह बात ।
खा तू भी और अल्लाह की कर राह में ख़ैरात ॥ (नज़ीर)

देने से इसी के तेरा ऊँचा रहे फिर हाथ ।
और व्हाँ भी तेरी गुज़रेगी सौ ऐश से औक़ात ॥
और व्हाँ तुझे सैर ये दिखलायेगी बाबा ॥ (नज़ीर)

५—दाता की तो मुश्किल कभी अटकी नहीं रहती ।
चढ़ती है पहाड़ों के ऊपर नाव सख़ी की ॥
और तूने बख़ीली से अगर जमा इसे की ।
तो याद ये रख बात कि जब आवेगी सख़्ती ॥
ख़ुश्की में तेरी नाव ये डुबवायेगी बाबा ॥ (नज़ीर)

६—तू लाख अगर माल के सन्दूक़ भरेगा ।
है ये यक़ीन आख़रश इक दिन तो मरेगा ॥
फिर बाद तेरे इस पै कोई हाथ धरेगा ।
वह नाच-मज़ा देखेगा और ऐश करेगा ॥
और रूह तेरी क़ब्र में चिल्लायेगी बाबा ॥ (नज़ीर)

७—उसके तो वहाँ ढोलको-मृदंग बजेगी ।
और रूह तेरी क़ब्र में हसरत से जलेगी ॥
वह खाएगा और तेरे तईं आग लगेगी ।
ता-हश्र तेरी रूह को फिर कल न पड़ेगी ॥
ऐसा ये तुझे गोर में तड़पायेगी बाबा ॥ (नज़ीर)

८—गर होश है तुझमें तो बख़ीली का न कर काम ।
इस काम का आख़िर को बदी होता है अंजाम ॥
'थू' करेगा कोई कहके, कोई देवेगा दुश्नाम ।

ज़िनहार न लेगा कोई हर सुबह तेरा नाम ॥
पैज़ारें तेरे नाम पै लगवायेगी बाबा ॥ (नज़ीर)

विशुद्ध प्रेम

१—दर्दे-उल्फ़त आदमी के वास्ते अकसीर है ।
ख़ाक़ के पुतले इसी जौहर से इन्साँ होगये ॥ (चकबस्त)

२—कहा पतङ्ग ने ये दारे-शमा पर चढ़कर ।
अजब मज़ा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर ॥ (अज्ञात)

३—शरावे-रूह-परवर है, मोहब्बत नोये-इन्साँ की ।
सिखाया इसने मुझको, मस्त बे जामो-सुबू रहना ॥ (इक़बाल)

४—जो चाहे होश तो बेहोश हो जामे-मोहब्बत से ॥
ये बेहोशी है ऐसी जिससे हुशियारी नहीं जाती ॥ (अज्ञात)

५—मोहब्बत की वह मंज़िल है कि मन्ज़िल भी है सहरा भी ।
जर्स भी, कारवाँ भी, राहबर भी, राहज़न भी है ॥
मर्ज़ कहते हैं सब उसको ये है लेकिन मर्ज़ ऐसा ।
छिपा जिसमें इलाजे गर्दिशे-चर्ख़े-कुहन भी है ॥ (इक़बाल)
बिन इश्क़ आदमी की ज़रा शान ही नहीं ।
जिसको न होवे इश्क़ वो इन्सान ही नही ॥ (रज़ी)

विषाक्त प्रेम

१—बुरी है ऐ, 'दाग़' राहे-उल्फ़त .
ख़ुदा न लेजाय ऐसे रस्ते ॥

अगर तुम अपनी ख़ैर चाहते हो।
भूलकर दिल्लगी न करना॥

२—इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है ये वो आतिश 'ग़ालिब'।
कि लगाये न लगे, और बुझाये न बने॥ (ग़ालिब)

३—हम कह देते हैं ऐ दिल, इश्क है ख़ाना-ख़राब।
इसमें जब रक्खा क़दम, तब लाख का घर ख़ाक था॥ (अज्ञात)

४—जलके मैं ख़ाक हुआ तो भी रहा दिल मुज़तर।
यह वह सीमाब है, कुश्ता न हुआ, पर न हुआ॥
'ज़ौक़' बीमारे-मोहब्बत है, ख़ुदा ख़ैर करे।
कि ये आज़ार हुआ, जिसको वह जाँ-बर न हुआ॥ (ज़ौक़)

५—यह इश्क वो है, जो पत्थर को दम में आब करे।
लगाये दिल वही, जिनको खुदा ख़राब करे॥ (अज्ञात)

६—बुतों को इश्क से बढ़कर अज़ाब क्या होगा।
किसी पर और खुदा का अताब क्या होगा॥ (ग़रीब)

७—दर्दो-ग़म, रंजो-अलम, हसरतो-यासो-हिरमा।
और उल्फ़त में धरा क्या, मुसीबत के सिवा॥ (मोमिन)

८—इस इश्क़ो-आशिक़ी के मज़े, हमसे पूछिये।
दौलत मिटाई, रंज सहे, खोदिया शबाब॥ (ख़ुद)

९—दाग़े-फ़ुरक़त ज़ीस्त-भर, सोज़े-जहन्नुम बाद-मर्ग।
इन बुतों को किस तवक़्क़ो पर खुदाया चाहिये॥ (नासिख़)

१०—फिरते हैं 'मीर' ख़्वार कोई पूछता नहीं।
इस आशिक़ी में इज़्ज़ते-सादात भी गई॥ (मीर)

११—मुहब्बत कौड़ियों के हो अगर मोल ।
बनी आदम न ले यह दर्दे-सर मोल ॥ (अज्ञात)

बनावटी मनुष्यों के धोखे में न आओ ।

१—मैंने इन आंखो से ऐ, वाइज़ लिबासे-वाज़ में ।
जौ-फ़रोशी करते देखे हैं बहुत गन्दुमनुमा ॥
दावये-इश्क़ो-मोहब्बत पे न जाना इनके ।
इनमें गुफ़्तार ही गुफ़्तार है, किरदार नहीं ॥ (हाली)

२—न जा ज़ाहिर पे ज़ाहिद के कि बातिन कुछ नहीं इसका ।
मसल मशहूर है हिन्दी कि मुँह चिकना कजम ख़ाली ॥ (अज्ञात)

३—स्पीच-मज़हबी में यकता है शेख़े-कैम्प ।
लेकिन ये सब ज़बाँ पे है दिल में कुछ नहीं ॥ (अकबर)

४—रेशे-सफ़ैदे-शेख़ में है ज़ुल्मते-फ़रेब ।
इस मक्र-चाँदनी पै न करना गुमाने-सुबह ॥ (ज़ौक़)

५—लिबासे-ख़िज़्र में यहाँ सैकड़ों रहज़न भी फिरते हैं ।
अगर रहना है दुनियाँ में तो कुछ पहचान पैदा कर ॥ (अज्ञात)

धूम्र-पान-निषेध

१—तम्बाकूनोश का सीना सियाह है ।
अगर बावर न हो, नैचा गवाह है ॥

२—तम्बाकूनोशरा सीना सियाह अस्त।

अगर बावर न'दारी नै गवाह अस्त॥ (अज्ञात)

मद्य-पान-निषेध

१—ऐ 'जौक़' देख, दुख़्तरिज़ को न मुँह लगा।

छुटती नहीं है मुँह से ये काफ़िर लगी हुई॥ (जौक)

२—उसकी बेटी ने उठा रक्खी है दुनिया सर पर।

ख़ैरियत गुजरी कि अँगूर के बेटा न हुआ॥ (अकबर)

३—ये दौरे-जाम ऐ शराबनोशो, फ़लक की गरदिश से कम नहीं है।

चला है ये दौर जिस जगह, उस ज़मीं का तख़्ता उलट दिया है॥

४—मय उन्होंने पी अब उनके पास क्यों कर दिल लगे।

जानवर इक रह गया, इन्सान रुख़सत होगया॥ (अकबर)

५—मय है इक आग न तन इसमें जलाना हरगिज।

मय है इक नाग करीब इसके न जाना हरगिज़॥

मय है इक दाम न दिल इसमें फँसाना हरगिज॥

मय है इक ज़हर न इस ज़हर को खाना हरगिज़॥

६—दफ़ै चोतीस में चालान हुआ ख़ूब पिटे।

पीके हम-तुम जो चले झूमते मय-ख़ाने से॥ (हकीम)

७—मयनोश का ८ पाव जहन्नुम की राह में।

बेटी बजाय बीबी है, इनकी निगाह में॥

दुनिया की शर्म इनको न उक़बे का कुछ ख़याल।

मतवाला और रिजाला है जो मय की चाह में॥

या रब शराब-ख़ोरी से सब को बचाइयो।
दुश्मन में हो ये ऐब न हो ख़ैरख़्वाह में॥ (हादी)

८—बदबू मेरे घर न ऐ शराबी, फैला।
है तेरा दहन नजासतों का थैला॥ (अकबर)

बाल—विवाह—निषेध

१—है बचपन को शादी न ज़ेबा भलों को।
निचोड़ो कुचलकर न कच्चे फलों को॥ (बेताब)

२—शादी न कर अपनी क़ब्ल तहसीले-उलूम।
बुत हो कि परी हो ख़्वाह हो कोई मेम॥ (अकबर)

३—बड़ी इस पै ये कमसनी, की जो शादी।
तो बुनियाद क़ौमी की इसने हिलादी॥
जहाँ लड़की सै-साला बन जाय दादी।
न फैले वहाँ कैसे फिर नामुरादी॥
कई पुश्त से हों जो बच्चों के बच्चे।
न क्यों जिस्म और अक़िल में हों वह कच्चे॥ (कैफ़ी)

वेश्या—गमन—निषेध

१—निकाही-ब्याही का छोड़ बैठे, सुताई रंडी को घर में डाला।
बनाया साहब इमामबाड़ा ख़ुदा की मसजिद को तुमने ढाकर॥
([illegible])

यौवन-निन्दा

१—जवानी आदमी की मायये-इलज़ाम होती है।
निगाहे-नेक भी इस उम्र में बदनाम लेती है॥ (अज्ञात)

२—पीरी में सब को रंज हुआ इनकलाब का।
मैंने किया शबाब में मातम शबाब का॥ (नूह)

३—जवानी की दुआ लड़कों को नाहक लोग देते हैं।
यही लड़के मिटाते हैं जवानी को जवाँ होकर॥ (अकबर)

४—इश्क़ का जोश है, जब तक कि जवानी के हैं दिन।
यह मर्ज़ करता है शिद्दत इन्हीं अय्याम में ख़ाम॥ (ज़ौक़)

अहङ्कार-निन्दा

१—दो दिन की ज़िन्दगी पै, न इतना उछल-के चल।
दुनिया है चल-चलाव का रस्ता, सँभल के चल। (रङ्ग)

२—चार दिन के हुस्न पर, इतना ग़रूर।
चाँदनी होती है के दिन के लिए॥ (कवी)

३—इस बेबसी पै, ज़ौक़, बशर का ये हाल है।
क्या जाने क्या करे, जो खुदा इख्तियार दे॥ (ज़ौक़)

४—हुस्ने-रोज़ अफ़ज़ूँ पै गुर्रा इसलिए ऐ माहरू।
यूँ ही घटता जायगा, जितना कि बढ़ता जाय है॥ (अज्ञात)

५—क्यों इज़्ज़ो-इक़बाल पे मग़रूर हुए इतने।
अंजाम बलन्दी का, आख़िर वही है पस्ती॥ (ज़ौक़)

६—नाले-बेअसर दूर को, कुदरत हो गर थोड़ी सी भी।

देख फिर सामान, इस फ़रऊने-बेसामान का। (ज़ौक़)

७—दिखा न जोशो-ख़रोश इतना ज़ोर पर चढ़कर ॥

गये जहान में दरिया बहुत उतर चढ़कर ॥ (ज़ौक़)

८—ख़ालिशे-ख़ार का खटका है, बग़ल में मौजूद।

देख गुल, दावये-नाज़ुकबदनी ख़ूब नहीं ॥ (ज़ौक़)

९—हाँ देख ! अजल ये 'मैं' बुरी होती है।

इस 'मैं' के गले पर तो छुरी होती है ॥

गले में तो रस भरा है और ढोल में ख़ोल।

फूँ-फाँ से कहीं शिकमपुरी होती है ॥ (नूह)

१०—थोड़े-से पानी में भी चल निकले है उभरता।

बेतह है, सर न खींचे एकदम हुबाब क्योंकर ॥ (मीर)

याचना

१—न पकड़ें दामने-इलियास गरदाबे-बला में हम।

कि बदतर डूबकर मरने से है जीना सहारे का। (अज्ञात)

२—दौलत न दे मुझे, मगर ऐसा ग़नी बना।

बे-मुद्दआ हो दिल, तो ज़बाँ बेसवाल हो ॥ (हफ़ीज़)

३—हूँ गदा, पर मौत से बदतर समझता हूँ सवाल।

बे-कफ़न गड़ता न मैं सुल्ताँ से ख़िलवत माँगता ॥ (अज्ञात)

४—दस्ते-सवाल सैकड़ों ऐबों का ऐब है।

जिस दस्त में ये ऐब नहीं वो दस्ते-ग़ैब है ॥ (अज्ञात)

५—अहसान नाख़ुदा का उठाये मेरी बला।

किश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ लङ्गर को तोड़ दूँ ॥ (अज्ञात)

६—ख़ाहिशे-ज़िल्लतो-ख़्वारी है दिला दस्ते-सवाल ॥
हाथ फैलाने से कब रहती है इज़्ज़त बाक़ी ॥ (अदीब)

एकान्त-वास की महिमा

१—वक़्ते-बद में कौन देता है, किसी का साथ 'रिन्द' ।
यार साबित इक मिली दुनियाँ में तन्हाई मुझे ॥ (रिन्द)

२—दुनियाँ में बहुत दौड़े, राहत के तमन्नाई ।
तसकीं की मगर सूरत, तुझमें ही नज़र आई ॥
ऐ गोशये-तन्हाई ! (महरूम)

३—बचा नहीं दिल, जिसको ले जाइये मेलों में ।
जुज़ तेरे कहाँ राहत, दुनियाँ के झमेलों में ॥
ऐ गोशये-तन्हाई ! (महरूम)

४—रहिये अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो ।
हम-सख़ुन कोई न हो और हम-ज़बाँ कोई न हो ॥
बे-दरो-दीवार-सा इक घर बनाना चाहिये ।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो ॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार ।
और अगर मर जाइये तो नौहाख़्वाँ कोई न हो ॥

स्वास्थ्य की महिमा

१—तन्दुरुस्ती अगर न हो 'साजिक़' ।
तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामत है ॥ (साजिक़)

२—हों गर्चे लाख दौलतें बीमार के कने ।
और न्यामतों के ढेर लगे हों बने-ठने ॥
बेहतर हैं मुफ़लसी के मियाँ चाबने चने ।
जो तन्दुरुस्त हैं वही दूल्हा हैं और बने ॥
जितने सखुन हैं सब में यही है सखुन दुरुस्त ।
अल्लाह आबरू से रक्खे और तन्दुरुस्त ॥ (नज़ीर)

शक्तिहीन होने पर लोग धर्मात्मा बनने लगते हैं

१—रुका हाथ जब बन गये पारसा तुम ।
नहीं पारसाई ये है नारसाई ॥ (हाली)

२—हर गुनाह से तोबा करली जब जवानी हो चुकी ।
ज़ाहिन्दा जन्नत में जाना कोई मुझसे सीखले ॥ (अज्ञात)

३—होके मक़रूज़े-मुग़ाँ की तर्क हमने मदकशी ।
तंगदस्ती का भला हो पारसा होने लगे ॥ (अकबर)

पारलौकिक स्वार्थ और सुख के लिये लोग धर्म करते हैं

१—ख़याले-हूर दिल में और तोबा लब पे ऐ ज़ाहिद ।
अजी बस देख ली जैसी तुम्हारी पारसाई है ॥ (अफ़सर)

२—तैयार थे नमाज़ पै हम सुनके ज़िक्रे-हूर ।
जलवा बुतों का देखके नीयत बदल गई ॥ (अकबर)

३—ख़्वाहिश को अहमक़ों ने परस्तिश दिया क़रार ।
क्या पूजता हूँ उस बुते-बेदादगर को मैं ॥ (ग़ालिब)

परिश्रम और मुसीबत के बाद सुख मिलता है

१—बेरंज मयस्सर नहीं आता है कभी गंज ।
जो जिसको मिला जान खपाने से मिला है ॥

२—नामी कोई बग़ैर मशक़्क़त नहीं हुआ ।
सौ बार जब अक़ीक़ कटा तब नगीं हुआ ॥ (अज्ञात)

३—न हो ख़ारों की ख़्वाहिश तब तलक मिलता नहीं है गुल ।
गुलशने-आलम में बे-रंजो-अलम राहत नहीं ॥ (रफ़ी)

ऋण

१—क़र्ज़ अहबाब को देने से मुहब्बत टूटे ।
गाँठ से जाये रक़म हाथ से गाहक छूटे ॥ (अज्ञात)

२—जो चीज़ आप चाहें वह हाज़िर जनाब है ।
गर मांगिये उधार तो कोरा जवाब है ॥ (अज्ञात)

३—क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ ।
रंग लावेगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन ॥ (ग़ालिब)

४—उतर गई सरे-बाज़ार शेख़ की पगड़ी ।
गिरह में दाम न होंगे उधार पी होगी ॥ (रियाज़ ख़ैराबादी)

५—लम्बी दाढ़ी ने आबरू रख ली ।
क़र्ज़ पी आये इक दुकान से आज ॥ (रियाज़ ख़ैराबादी)

.खुशामद

१—तुम .खुदा को .खुश करो 'अकबर' खुशामद छोड़ कर।
वाखुदा हाकिम जो होगा .खुद ही .खुश हो जायगा॥
(अकबर)

२—रिश्वत है गुलूये-नेकनामी का छुरा।
अय्याशी है बदी के पहिये का धुरा॥
हरचन्द कि वेमहल खुशामद है बुरी।
गुस्ताख़ मगर .खुशामदी से भी बुरा॥ (अकबर)

३—दिल .खुशामद से हर इक शख़्स का क्या राज़ी है।
आदमी, जिन वो परी, भूत, बला, राज़ी है॥

४—भाई फ़रज़न्द भी .खुश, बाप, चचा राज़ी हैं।
शाह मसरूर, ग़नीशाद, मदा राज़ी है॥

५—जो .खुशामद करे ख़ल्क़ उससे सदा राज़ी है।
हक़ तो ये है कि .खुशामद से .खुदा राज़ी है॥ (नज़ीर)

स्वदेश

१—न बदले आदमी जन्नत से भी बैतुलहज़न अपना।
कि अपना घर है, अपना और है अपना वतन अपना॥ (दाग़)

२—पूछा न जायेगा, जो वतन से निकल गया।
बेकार है जो दाँत दहन से निकल गया॥ (अमीर)

३—गो बहुत-कुछ रंज याराने-वतन से था हमें।
आँख नें आँसू मगर वक़्ते-सफ़र आ ही गया॥ (अकबर)

४—रह गया अपने गले में डालकर बाँहें ग़रीब।

ईद के दिन जिसको ग़ुरबत में वतन याद आ गया ॥ (बीनाई)

५—ग़ुरबत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में।

समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा ॥ (इक़बाल)

विदेश

१—इज़्ज़त उसे मिली जो वतन से निकल गया।

वह फूल सर चढ़ा जो चमन से निकल गया ॥ (अज्ञात)

२—अहले-जौहर को वतन में रहने देता गर फ़लक़।

लाल क्यों इस रंग से आता बदख़्शाँ छोड़ कर ॥ (नासिख़)

३—करते किस मुँह से हो ग़ुरबत की शिकायत ग़ालिब।

तुमको बेमहरिये-अरबा के वतन याद नहीं ॥ (ग़ालिब)

४—हँसनेवाला नहीं है रोने पर।

हमको ग़ुरबत वतन से बेहतर है ॥ (आतिश)

५—इस रंजे-बेकसी की या रब ख़बर न पहुँचे।

जाये न शामे-ग़ुरबत सर पीटती वतन में ॥ (अज्ञात)

कवि—कीर्तन

१—सुख़न क्या कह नहीं सकते कि जोयाँ हो जवाहर के।

जिगर क्या हम नहीं रखते कि खोदें जावे मादन को ॥ (ग़ालिब)

२—क़िस्मत ने गर औलाद नहीं,

अशआर से अपना नाम चले।

दुनिया से उठे जब मेहर सिफ़त,

ता-चन्द हमारा नाम चले ॥ (अज्ञात)

३—बन्दिशे-अल्फ़ाज़ जड़ने से नगों के कम नहीं।
शाअरी भी काम है 'आतिश' मुरस्सासाज़ का ॥ (आतिश)

४—रहता सखुन से नाम, क़यामत तलक है 'ज़ौक़'।
औलाद से तो है यही, दो पुश्त चार तक ॥ (ज़ौक़)

विभिन्न

निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने की।
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तों में निहाँ होकर ॥(अकबर)

न सुनो गर बुरा कहे कोई।
न कहो गर बुरा करे कोई ॥
रोक लो गर ग़लत चले कोई।
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई ॥
कौन है जो नहीं है हाजतमन्द।
किसकी हाजत रवा करे कोई (ग़ालिब)

ज़माने हाल में अगले फ़िसाने अम्रे-माज़ी हैं।
जो तलवारें चलाते थे वो अब ठोकर पे राज़ी हैं (अकबर)

बशर को चाहिये मिलता रहे हर से ज़माने में।
किसी दिन काम यह, साहब-सलामत आ-ही जाती है (अज्ञात)

अल्लाह निगहबाँ है आला की आबरू का।
मुँह पर पड़ा उसीके, जिसने फ़लक पे थूका ॥ (अज्ञात)

क़दमे-शौक़ बढ़े इनकी तरफ़ क्या 'अकबर'।
दिल से मिलते हाथ नहीं ये हाथ मिलानेवाले ॥ (अकबर)

मजनूँ का चोर होता है रुसवा जहान में।
चक्खी ख़राब करती है माले हराम की॥ (अज्ञात)
नामे-निको से बेहतर दुनियाँ मे क्या निशाँ है।
वो भी कोई निशाँ है जो फ़ील पर रवाँ हो॥ (सौदा)
घबराये तकलीफ़ से क्यों मर्दे उलुलअज़्म।
कहते ह जिसे रज वो इन्साँ के लिये है॥ (इन्द्रजीत शर्मा)
जो पेट के हल्के हैं पचे बात कब उनको।
रोके तो अफर जाय शिकम और ज़ियादा॥ (ज़ौक)
जो सख़ी है माले-दुनिया मे है ख़ाली उनके हाथ।
अहले-दौलत जो है वो दस्ते-करम रखते नहीं॥ (अनीस)
मुसीबत का इक-इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से है ये मुसीबत जियादा॥ (हाली)
ऐ, 'ज़ौक' तकल्लुफ मे है तकलीफ सरासर।
आराम से वो है जो तकल्लुफ नहीं करता॥ (ज़ौक)
ऐ, 'ज़ौक' तकल्लुफ है शराफत की निशानी।
हैवान है वह लोग जो तकल्लुफ नहीं करते॥ (ज़ौक)
साहबे-हिम्मत नहीं डरते है, मरने से कभी।
मौत क्या उनके लिये है, ज़ीस्त का पैगाम है॥ (इन्द्रजीत)
दुनिया मे बला से अगर आराम न पाया।
इसने यही पाया कि बुरा नाम न पाया॥ (ज़फर)
खुदा के वास्ते ज़ाहिद उठा पर्दा न काबे का।
कहीं ऐसा न हो यां भी वही काफ़िर सनम निकले।(ज़फर)

नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाई का तेरी हरगिज़ ।
गिला तब हो, अगर तूने किसी से भी निबाही हो ॥(मीर दर्द)

जो अहले-दीद हैं, उन्हें गुलशन में जा नहीं ।
नर्गिस के गोकि आँख हैं, पर सूझता नहीं ॥ (मीरदर्द)

पैदा कहाँ हैं ऐसे परागन्दा-तबा लोग ।
अफ़सोस तुमको 'मीर' से सोहबत नहीं रही ॥ (मीर)

अहले-जन्नत को मुबारिक हो फ़रिश्तों के ख़याल ।
अहले-दुनिया को फ़कत चाहिये इन्साँ होना ॥ (इन्द्रजीत)

जो है जरी बहुक्मे ख़ुदा लाज़वाल है ।
शहबाज़ है हराम कबूतर हलाल है ॥ (जौहर)

जो देखी हिस्टरी इस बात पर कामिल यक़ीं आया ।
जिसे मरना नहीं आया उसे जीना नहीं आया ॥ (अकबर)

फ़ज़लो-हुनर बड़ों के गर तुममें हो तो जानें ।
गर ये नहीं तो बाबा वो सब कहानियाँ हैं ॥ (हाली)

शाम को सोना सबेरे-सुबह का उठना शिताब ।
दिल को बख़्शे रोशनी चेहरे को बख़्शे आबोताब (अज्ञात)

है नाने-खुश्क तर जो मिले आबरू के साथ ।
बे-आबरू अगर हो, तो वह तर भी ख़ुश्क है ॥ (ज़फ़र)

भलाई भी कोई दुनिया में ऐ इन्सान करता जा ।
यही मौक़ा है उक़बा का भी कुछ सामान करता जा ॥

(इन्द्रजीत शर्मा)

जो पार उतारे औरों को उसकी भी नाव उतरती है ।

जो ग़र्क़ करें फिर उसको भी यहाँ डुबको-डुबको करती है।
शमशेर-खबर, बन्दूक़, सना, और नश्तर, तीर, नहरनी है।
यहाँ जैसी-जैसी करनी है, फिर वैसी-वैसी भरनी है॥ (नज़ीर)

ऊँचा नीयत का अपनी ज़ीना रखना।
अहबाब से साफ़ अपना सीना रखना॥
ग़ुस्सा आना तो नेचरल है 'अकबर'।
लेकिन है शदीद ऐब कीना रखना॥ (अकबर)

क़िस्मत की ख़ूबी देखिये टूटी कहाँ कमन्द।
दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम रह गया॥ (अज्ञात)

दो चार गाम यहाँ से है दौलत सराये-दोस्त।
टूटें ये पाव देखो तो आकर कहाँ थमें॥ (रिन्द)

बजा कहे आलम उसे बजा समझो।
ज़बाने-ख़ल्क़ को नक्क़ारये-ख़ुदा समझो॥ (ज़ौक़)

दिलों पर हुक्मरानी चाहिये शीरीं-कलामी से।
हुकूमत होती है नर्मी की सख़्ती से कहीं बेहतर॥(इन्द्रजीत)

हादसों से बेख़तर है ख़ाकसार।
कब दबा साया तले दीवार के॥ (अज्ञात)

तालिब को अपने रखती है दुनिया ज़लीलो ख़्वार।
जर की तमा से छानते हैं ख़ाक न्यारिये॥ (आतिश)

सुन रहा हूँ मैं समन्दर की गरज।
होगा कुछ रोज़ों में ये मदफ़न मेरा॥
इस तरह इन्सान का भी हाल है।

खेल में खोता है यह बचपन सदा ॥
जब जवानी सर पै चढ़ती है तो ये ।
इश्क़ में हो जाता है मुब्तला ॥
आख़िरश ज़िल्लत से पीरी काट कर ।
होता है बहरे-फ़ना में ये फ़ना ॥ (अज्ञात)

तुझको देता नहीं नैरंगे-ज़माना धोखा ।
फ़ेल तेरा तुझे इन्सान दग़ा देता है ॥ (इन्द्रजीत शर्मा)

ख़ाकसारी, आजिज़ी, ग़ुरबत, मोहब्बत, दोस्ती ।
जिनके ये अफ़आल हैं वो ही सआदतमन्द हैं ॥ (अज्ञात)

असफल भी इन्कसार से पाता है मरतबा ।
गिरकर बढ़ा निहाल से साया निहाल का ॥ (अज्ञात)

ये सच है बेग़र्ज़ आज़ाद होता है ज़माने में ।
तमन्ना जो न रखता हो, झुकाये वो नज़र किससे ॥ (ज़ाकिर)

जान जाये हाथ से जाये न सत ।
है यही एक बात हर मज़हब का तत ॥
चट्टे-बट्टे एक ही थैली के हैं ।
साहूकारी, बिस्वेदारी, सल्तनत ॥ (इक़बाल)

किसी की एक तरह पर बसर हुई न 'अनीस' ।
अरूजे-महर भी देखा तो दोपहर देखा ॥ (अनीस)

ग़ैरमुमकिन है कि उठ जाये दलीलो-बहस से ।
जो चला आता है बाहम अहले-मज़हब के ख़िलाफ़ ॥
हो नहीं सकता मुताबिक़ जब कि दो घड़ियों का वक़्त ।

रफ़ा हो सकते हैं फिर क्योंकर हजारों इख़्तिलाफ़ ॥ (हाली)

बाँट ले कोई किसी का दर्द ये मुमकिन नहीं।
बारे-ग़म दुनिया में उठवाते नहीं मजदूर से ॥ (अज्ञात)

न हो जिसमें अदब और हो किताबों से लदा फिरता।
'जफ़र' उस आदमी को हम तसव्वुर बैल करते हैं ॥ (जफ़र)

बिना सोचे, बिना समझे, बशर जो काम करता है।
वह अपने हाथ से अपना बुरा अंजाम करता है ॥ (अज़ीज)

है आज रुख हवा का मुवाफ़िक़ तो चल निकल।
कल की किसे ख़बर है किधर की हवा चले ॥ (इस्माइल मेरठी)

उम्र-भर वहशत में गर सेहरानवर्दी की तो क्या।
सैर के क़ाबिल जो था दिल का बयाबाँ रह गया। (नासिख़)

ताब सुनने की नहीं, बहरे-ख़ुदा ख़ामोश हो।
टुकड़े होता है जिगर 'नासिख़' तेरी फ़रियाद से। (नासिख़)

मिटा ही देती है जिसको दुनिया, भुला ही देता है जिसको गर्दूं।
अबस है इन्सान चाहता है जो नाम ऐसा निशान ऐसा ॥
(अकबर)

दो रोज़ हैं ये लुत्फ़े-ऐशो-निशाते दुनिया।
बूये-गुले-उरूसी, मेहमाँ है पैरहन में ॥ (अज्ञात)

मारना दिल का समझता है जहादे-अकबर।
वही गाज़ी है बड़ा, जिसने ये गाज़ा मारा ॥ (दाग)

निहंगो अज़दहाओ-शेर नर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से-अम्मारा को गर मारा ॥

न मारा आपको जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता ॥
अगर पारे को ऐ अकसीरगर मारा तो क्या मारा ॥ (ज़ौक़)
हक़ीक़त ज़ीस्त की पीरी में हम समझे तो क्या समझे।
बड़ा धोका दिया ज़ालिम ने दुनियाँ से ख़ुदा समझे ॥
(अकबर)

'ज़फ़र' है वही अपने नज़दीक दाना ।
रहे है जो दुनिया में नादान बनके ॥ (ज़फ़र)
गये नादानी कि वक़्ते-मर्ग यह साबित हुआ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना था। (मीर)
नाम से काम निकलता नहीं बे गोहरे-आसिल ।
तिल से आरिज़ के न हरग़िज़, कभी रोग़न निकला ॥
क्या-क्या दुनिया से साहबे-माल गये ।
दौलत गई न साथ, न अतफ़ाल गये ॥
पहुँचा के लहद तक फिर आये सब लोग ।
हमराह गर गये तो ऐमाल गये ॥ (अनीस)
गर हुस्न नहीं इश्क़ भी पैदा नहीं होता ।
बुलबुल गुले-तसवीर पर शैदा नहीं होता ॥ (अज्ञात)
रहमत का तेरी उम्मीदवार आया हूँ ।
मुँह ढाँपे कफ़न से शर्मसार आया हूँ ॥
आने न दिया ·ारे-गुनाह ने पैदल ।
ताबूत में काँधे पै सवार आया हूँ ॥ (दबीर)
किसलिये आये थे और क्या कर चले ।

तोहमतें चन्द अपने ज़िम्मे धर चले ॥
ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले ॥
शमा के मानिन्द हम बज़्म में।
चश्म-तर आये, दामन-तर चले ॥ (पीरदर्द)
बेकार हैं शिकवये-तगाफुल 'रजूर'।
होता है किसे ख़याले-यारे महजूर ॥
क्या तूने सुनी नहीं ये मसल मशहूर।
जो आँखों से दूर है, वह है दिल से भी दूर ॥ (रजूर)
जिस-जिससे रास्त बोला वो मुझसे कज हुआ है।
खामोश रह सदा, सच बोलना बुरा है ॥ (अज्ञात)
मनसूर की हकीकत तुमने सुनी ही होगी।
जो हक़ कहे है उसको यहाँ दार खींचते हैं ॥ (मीर तकी)
यों तो मुँह-देखे की होती, है मुहब्बत सब को।
मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरा ध्यान रहे ॥ (अज्ञात)
यह दर्दे-सर ऐसा है कि सर जाये तो जाये।
उल्फ़त का नशा जोई भर जाये तो जाये ॥ (ज़ौक)
हम तालिबे-शोहरत हैं, हमें इल्म से क्या काम।
बदनाम गर होंगे तो क्या कुछ नाम न होगा ॥
(अज्ञात)
काम इन्सान को इन्सान से पड़ता है जरूर।
बात रह जाती है, पर वक़्त गुज़र जाता है ॥ (अज्ञात)

मूसा ने यह की अर्ज़ कि ऐ वारेखुदा !

मक़्वूल तेरा कौन है वन्दों में सिवा ॥

इर्शाद हुआ वन्दा हमारा वो है ।

जो ले सके और न ले वदी का वदला ॥ (अज्ञात)

इस गुलशने-हस्ती में अजव दीद हैं लेकिन ।

जव आँख खुलीं गुल की तो मौसिम है ख़िज़ाँ का ॥ (अज्ञात)

ये सदा आती हैं ख़ामोशी से ।

मुँह से निकली हुई पराई वात ॥ (अज्ञात)

रखता अस्ल पेश हक़ीक़त दरोग़ क्या ।

वातिल को हक़ के सामने होगा फ़रोग़ क्या ॥ ।(अज्ञात)

क्या मिला अर्ज़े-मुद्दआ करके ।

वात भी खोई इल्तजा करके ॥ (अज्ञात)

आप भर जाता है वो कोई भरे या न भरे ।

सारे पैमानों से उम्र का पैमाना जुदा ॥ (अब्र)

है पैकरे-ख़ाकी में निहाँ गर्दे कदूरत ।

इन्सान की फ़ितरत में हो फिर दख़्ले वफ़ा क्या ॥ (अज्ञात)

अल्लाह आँख दे तो हया भी ज़रूर दे ।

किस काम की वह आँख कि जिसमें हया न हो ॥ (अज्ञात)

खुदा वचाये 'ज़फ़र' दोस्ती से इस दिल की ।

जो हो ये दोस्त तो हाजत नहीं अदू की मुझे ॥ (ज़फ़र)

धोखा है तमाम वहरे-दुनिया ।

देखेगा पै होंठ तर न होगा ॥ (पीर)

ज़िन्दगी जिन्दा-दिली का नाम है।
मुर्दा-दिल ख़ाक जिया करते हैं॥ (अज्ञात)

रहती है कब बहारे-जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द बूये-गुल, इधर आई, उधर गई॥ (आतिश)

कमज़ोर के आगे जिसे झुकना नहीं आता।
वो मुजरिमे-इख़लाक़ है, खुद्दार नहीं है॥ (रविश)

होने को तो दीवानों मे मामूर है दुनिया।
लैला का जो महबूब हो दीवाना वही है॥ (रविश)

धर्म पर जो न फ़िदा हो वो जवानी क्या है।
दूध की धार है तलवार का पानी क्या है॥ (चकवस्त)

जो खुद नहीं गरगर्म करेगा वो बशर क्या।
जब दिल मे नहीं दर्द जबा मे असर हो क्या॥ (अज्ञात)

जितना किसी मे पाओ तुम 'अक्बर' गरूर कम।
उतना ही उसको समझो हक़ीक़त से दूर कम॥ (अकबर)

मिलना किस काम का अगर दिल न मिले।
जीना किस काम का जो मंज़िल न मिले॥

वस्ते-दरिया मे गर्क़ होना अच्छा।
इससे कि नजर मे आके साहिल न मिले॥ (रवाँ)

क्या मुश्किल है दिल पर जब्त करना माना ये हमने।
मज़ा शीरो-शकर मिलता है लेकिन ज़हर पी-पीकर॥

दुनिया की तलब मे हुये अल्लाह से दूर।
लेकिन दुनिया को है हम से सख़्त नफ़्रत॥

धोबी के कुत्ते की तरह सद अफ़सोस ।
हम घर के रहे न घाट के ऐ 'रंजूर' ॥ (रंजूर)

आपस में मुवाफ़िक रहो ताक़त है तो ये है ।
देखो न वहम ऐब-मोहब्बत है तो ये है ॥
सेहत भी हो रोज़ी भी हो दिल को भी हो तसकीन ।
दुनिया में बशर के लिये न्यामत है तो ये है ॥

जिसकी ख़ुदा से शर्म है वो है बज़ुर्गे-दीं ।
दुनियाँ की जिसको शर्म है मर्दे-शरीफ़ है ॥
जिसको किसी की शर्म नहीं उसको क्या कहूँ ।
फ़ितरत में वह रज़ील है; दिल का कसीफ़ है ॥

ख़ंजर चले किसी पै तड़पते हैं हम अमीर ।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है ॥ (अमीर)

ख़ूबसूरत न हो कोई तो न हो बदनामी ।
सच तो ये है कि बुरा होता है अच्छा होना ॥ (तसकीन)

उनसे कह दो नहीं आहिस्ता रखते जो दोगाम ।
गिर ही पड़ते हैं बहुत दौड़के चलनेवाले ॥ (आतिश)

दुनिया अजब बाज़ार है कुछ जिन्स यहाँ की साथ ले ।
नेकी का बदला नेक है बद से बदी की बात ले ॥ (नज़ीर)

धो सके तो अपने दिल का दाग़ धो ।
शेख़ मुँह को हर-घड़ी धोता है क्या ॥ (सोज़ाँ)

मेवा खिला मेवा मिले, फल-फूल दे फल-पात ले ।
आराम दे आराम ले, दुःख-दर्द दे आफ़त तू ले ॥

खिलके गुल कुछ तो बहारे-जाँ-फ़िज़ाँ दिखला गये।
हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये ॥ (ज़ौक़)

कुछ उम्र भी न पाई ऐसे मुसिन न थे।
कहता था ख़ुद शबाब कि मरने के दिन न थे ॥ (अज्ञात)

मोहब्बत में ये बेरहमी कि जीना होगया मुश्किल।
ख़ुदा मालूम क्या होता जो वह काफ़िर अदू होता ॥(जलाल)

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वो क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता (अकबर)

बहुत मुश्किल है रहना पाक-दामन लौसे-दुनिया से।
उलझकर रह गया जो वादिये-पुरख़ार में आया ॥ (नसीम)

निगाहें दूरबीं देखें यह भी इक दुरंगी है।
जहाँ के रहनेवाले जिस तरह से काम करते हैं ॥
जो बहुत ऐसे हैं जो मरते हैं अपनी नेकनामी पर।
बहुत ऐसे हैं जो बदनामियों से नाम करते हैं ॥ (अज्ञात)

अहमक़ तो दिल रखता है, 'दानिश' ज़बान पर।
आक़िल ज़बान रखते हैं, दिल में छुपी हुई ॥ (दानिश)

अगर यह चाहते हो लोग इज़्ज़त से तुम्हें देखें।
तो औरों को न देखो तुम भी, ज़िल्लत की निगाहों से ॥
(अज्ञात)

दूसरों के ऐब जब 'दानिश' जो करता हो बयान।
तो समझ लेना कि है वह आदमी ख़ुद ऐबदार ॥ (दानिश)

मिला है उनको यह मज़मून रोशन चश्मे-बीना से।

कि छोड़ी जिसने .खुद बीबी उसे सब-कुछ नज़र आया ॥

(अकबर)

क़िस्मत पै इस मुसाफ़िरे-बेकस की रोइये ।
जो थक गया हो, सामने मंज़िल के बैठके ॥ (अज्ञात)

इन्सान उसी की राह में साबित-क़दम रहे ।
गर्दन वही है रज़ा में जो अब्र ख़म रहे ॥ (चकबस्त)

जो बेवफ़ा हैं मादरे-नाशाद के लिये ।
दोज़ख़ ये ज़िन्दग़ी है उस औलाद के लिये ॥ (अज्ञात)

काम पड़ने पर हुआ करता है सब का इम्तहाँ ।
वक्त पर देखा दबा जाते हैं दुम शेरे-जयाँ ॥ (इन्द्रजीत)

मुसीबत में बशर के जौहरे-मरदाना खुलते हैं ।
मुबारिक बुज़दिलों को गरदिशे-क़िस्मत से डर जाना ॥ (चकबस्त)

सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से ।
नहीं हाजत कि वो पानी बहावें सर से पाँओं तक ॥ (ज़ौक़)

कुछ राज़-निहाँ दिल का बयाँ हो नहीं सकता ।
गूँगे का सा है ख़्वाब, बयाँ हो नहीं सकता ॥ (ज़ौक़)

जो जिसके हक़ में समझा वो बेहतर बना दिया ।
दारा कोई, किसी को सिकन्दर बना दिया ॥
ख़ालिक़ ने एक-एक से बेहतर किया है ख़ल्क़ ।
मुझको फ़क़ीर तुझको तवंगर बना दिया ॥
ग़ाफ़िल मुक़ामे-रस्म नहीं जाये-शुक्र है ।
सौ से बुरा तो एक से बेहतर बना दिया ॥ (ज़ौक़)

आशाइशो-बेजा में मसर्रत नहीं होती ।
सो जायँ अगर पाँव तो राहत नहीं होती ॥ (दाग़)

सीरत के हम ग़ुलाम हैं सूरत हुई तो क्या ।
सुर्ख़ो-सफ़ेद मिट्टी की मूरत हुई तो क्या ॥

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले ।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले ॥ (ज़ौक़)

नहीं मोहताज ज़ेवर का जिसे ख़ूबी ख़ुदा ने दी ।
कि आख़िर बदनुमा लगता है देखो चाँद को गहना ॥(अज्ञात)

कोई ख़ूबी नहीं होती है जिस इन्सान में 'दानिश' ।
समझता फ़र्ज़ अपना है वह औरों की बुराई में ॥ (दानिश)

किसी की जब कोई तनक़ीद करता है, मैं रोता हूँ ।
हँसा गुल की तरह ग़ुञ्चा, जहाँ उसका दहन बिगड़ा ॥

औरों का ऐब-जोई अपना हुनर नहीं है ।
अपना ही ऐब-जोई अपना हुनर हमारा ॥ (जोशिश)

आप अपने हाल से वाक़िफ़ नहीं होता कोई ।
जैसे बू अपने दहन की आती है कम नाक में ॥ (अज्ञात)

ग़ालिब बुरा न मान, जो वाइज़ बुरा कहे ।
ऐसा भी है कोई कि सब अच्छा कहें जिसे ॥ (ग़ालिब)

ऐ भला तू आपको अच्छों की क्या पहचान है ।
जो ख़ुद अच्छे वे औरों को नहीं कहते बुरा ॥ (हाली)

[illegible] किसी ने हो तो ज़ाहिर न करें ।
लोग करते हैं बुरी बात का चर्चा कैसा ॥ (अज्ञात)

अय्याम मुसीबत के तो काटे नहीं कटते ।
दिन ऐश के घड़ियों में गुजर जाते हैं कैसे ॥ (शहीदी)

ख़ुदा जाने ये किसकी जलवा-गाहे-नाज़ है दुनिया ।
बहुत आगे गये रौनक़ वही बाक़ी है महफ़िल की ॥ (असीर)

रंज से ख़ूगर हो इन्साँ तो मिट जाता है रंज ।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ होगईं ॥ (ग़ालिब)

दोस्तों से इस क़दर सदमे उठाये जान पर ।
दिल से दुश्मन की अदावत का गिला जाता रहा ॥(आतिश)

नशा दौलत का बद-अतवार को जिस आन चढ़ा ।
सर पै शैतान के एक और भी शैतान चढ़ा ॥ (ज़ौक़)

मस्जिद की डेढ़ ईंट पै ज़ाहिद को ये घमण्ड ।
वो भी ख़ुदा के फ़ज़्ल से घर का मकाँ नहीं ॥ (अज्ञात)

कदूरत कब जगह पाती है दिल में साफ़-तीनत के ।
न देखा गर्द को जमते कभी दरिया के दामन पर । (मीनाई)

जब दिलों में फ़र्क़ आया आशनाई फिर कहाँ ।
बाल जब मोती में आया वो सफ़ाई फिर कहाँ ॥ (अज्ञात)

लग जायेगा तुम्हें किसी का कोसना ।
मर जाओगे जवान अगर बद-दुआ लगी ॥ (अज्ञात)

ये दुनिया रंजों-राहत का ग़लत अन्दाज़ा करती है ।
ख़ुदा पर ख़ूब रोशन है कि किस पर क्या गुज़रती है ॥(अज्ञात)

मुक़ाम शुक्र का है ये मुसीबते-दुनिया ।
इसी बहाने से अल्लाह याद आता है ॥ (अज्ञात)

शैतान की न मान जो राहत नसीब हो ।
अल्लाह को पुकार मुसीबत अगर पड़े ॥ (अकबर)

मौत ने कर दिया नाचार वगरना इन्साँ ।
है वो ख़ुद-बीं कि ख़ुदा का भी न क़ायल होता ॥ (अज्ञात)

ग़रूर अब क्या बढ़ेगा ख़म हुए हम दर्जे-पीरी से ।
हम अपने सर को अपने पॉव से ठोकर लगाते है ॥ (रशीद)

ऐ, बशर, ऐ, ख़ाक के पुतले, तुझे इतना ग़रूर ।
तेरे हम-जिन्स और फिर तू हो रहे उनसे नफ़ूर ॥ (ज़हीन)

तमाशा-गाहे-हस्ती मे अदम का ध्यान है किसको ।
किसे इस अंजुमन मे याद ख़िलवत-ख़ाना आता है ॥ (आतिश)

न बोरिया भी मयस्सर हुआ बिछाने को ।
हमेशा ख़्वाब ही देखा किये छपरखट का ॥ (आतिश)

[illegible] का ख़ज़ाना हो तो इज़्ज़त नहीं मिलती ।
दौलत से कमीने को शराफ़त नहीं मिलती ॥ (अनीस)

दुनिया को हमेशा नक्शे-फ़ानी समझो ।
रूदादे-जहाँ को इक कहानी समझो ॥

इन्सान को लाज़िम है रहे दूर रिया से ।
यह चीज़ जुदा करती है बन्दे को ख़ुदा से ॥ (जिगर)

[illegible] से [illegible] कब पाक दिल का ख़ून हुआ ।
जब किसी की याद आई फिर वही [illegible] हुआ (जिगर)

[illegible] हैं [illegible] मक़सूद [illegible] ।
[illegible] 'जिगर' हम [illegible] से ॥ (जिगर)

दोस्त रखते हैं जवाँमर्द अहले-जौहर यार को ।
तोलकर ज़र से सिपाही लेते हैं तलवार को ॥ (अज्ञात)

नागवारा जो करता है गवारा इन्साँ ।
ज़हर पीकर मज़े शीरो-शकर लेता है ॥ (आतिश)

ख़ुदी से बेख़ुदी में आ जो शौक़े हक़-परस्ती है ।
जिसे तू नेस्ती समझा है ऐ, ग़ाफ़िल ! वो हस्ती है ॥

ख़बरदार ऐ, मुसाफ़िर ख़ौफ़ की जा राहे-हस्ती है ।
ठगों का बैठका है जाबजा चोरों की बस्ती है ॥
'अमीर' उस रास्ते से जो गुज़रते हैं वो लुटते हैं ।
महल्ला है हसीनों का कि क़ज़्ज़ाकों की बस्ती है ॥ (अमीर)

ऐसे लोगों में नहीं हम जो कहें और न करें ।
मर्द जो कहते हैं वो करके दिखा देते हैं ॥ (आसफ़)

हिर्से-ज़र दिल से दूर कर ग़ाफ़िल ।
जिन्से-फ़ानी पर तू न मर ग़ाफ़िल ॥
यह जहाँ जो मुक़ामे-इबरत है ।
रख तू अंजाम पर नज़र ग़ाफ़िल ॥ (अनवर)

आदमज़ाद है दुनियाँ के हँसी सब लेकिन ।
यार लोगों ने परीज़ाद बना रक्खा है ॥

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते-इन्सान पर ।
फ़ेले-बद तो ख़ुद करें, लानत करें शैतान पर ॥ (अज्ञात)

एक मुसल्सिल सिल्सिला पाओगे वाँ असबाब का ।
दश्त में पत्ता खड़कता तुम अगर देखो कहीं ॥ (अकबर)

राहत जिसे कहते हैं, वो महनत का सिला है।
राहत-तलबो वाजिबे-राहत नहीं होती॥ (इस्माइल मेरठ)

मान लीजे शेख़ जो दावा करे।
इक बज़ुर्गे-दीं का हम झुटलायँ क्या॥ (अज्ञात)

आदमीयत और शै है इल्म है कुछ और चीज़।
कितना तोते को पढ़ाया पर वो हैवाँ ही ही रहा॥

ऐश के अंजाम से दम-भर न जो ग़ाफ़िल रहा।
ऐन बेदारी में देखा, इसने ख़्वाबे-ज़िन्दगी॥

सारा आलम सारी दुनियाँ एक मातमख़ाना है।
किस जगह तुझको छुपा दूँ ऐ, ख़्वाबे ज़िन्दगी॥
(जोश मलयानी)

फलते नहीं है नख़्ले-तमन्नाये बदनसीब।
देखे हैं किसने-शाख़े-सरे चरगदन के फूल॥

ग़ाफ़िल फ़रेबे-गुलशने-हस्ती न खाइयो।
इस गुलकदे के फूल हैं सब मक्रो-फ़न के फूल॥ (शहीर)

'आज़ाद' चुपके रहना आठों पहर बुरा है।
फट जायगा कलेजा कुछ बात भी किया कर॥ (आज़ाद)

पाय नामासिये फ़लक ने ताककर तोड़ा उसे।
मैंने जिस डाली को तोड़ा आशियाने के लिये॥ (इक़बाल)

न रह अपनों से बेपरवा इसी में ख़ैर है तेरी।
अगर मंज़ूर है दुनिया में ओ बेगाना ख़ू रहना॥ इक़बाल

दुनियाँ के जो मज़े हैं, हरगिज़ वो कम न होंगे।
चर्चे यही रहेंगे, अफ़सोस हम न होंगे॥ (अज्ञात)

लुत्फ़े-कलाम क्या जो न हो दिल में दर्दे-इश्क़।
बिस्मिल नहीं है तो, तू तड़पना भी छोड़ दे॥ (इक़बाल)

दोस्त ही जब दुश्मने-जाँ हो तो क्या मालूम हो।
आदमी को किस तरह अपनी क़ज़ा मालूम हो॥ (अज्ञात)

लज़्ज़त को तर्क करती है दुनिया का रञ्ज दूर।
परहेज़ भी दवा है जो बीमार ने किया॥ (अज्ञात)

ख़याले तन-परस्ती छोड़ फ़िक्रे हक़-परस्ती कर।
निशाँ रहता नहीं है, नाम रह जाता है इन्साँ का॥ (अज्ञात)

तबाही में है लाज़िम यादे-हक़ अहले-तवक्कुल को।
ख़ुदा पर छोड़ता है, नाख़ुदा किश्ती को तूफ़ाँ में॥(अज्ञात)

जवानी में अदम के वास्ते, सामान कर ग़ाफ़िल।
मुसाफ़िर शब से उठते हैं, जो जाना दूर होता है॥ (हश्र)

चाहे जो अपनी ख़ैर, तो जाये न शर के पास।
हो जिस बशर में शर, न रहे उस बशर के पास॥ (ज़ाकिर)

'ज़फ़र' आदमी उसको न जानियेना,
कैसा ही साहिबे-फ़हमोज़का।
जिसे ऐश में यादे-ख़ुदा न रही,
जिसे तैश में ख़ौफ़े-ख़ुदा न रहा॥ (ज़फ़र)

दूर रह और देर मत रह सामने, मिस्ले-हलाल।
शहर में तुझको अगर है अपनी शोहरत की तलब॥ (ज़ौक़)

हुजूमे-बुलबुल हुआ चमन से ।
किया जो गुल ने जमाल पैदा ॥
कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर' ।
करो तो कोई कमाल पैदा ॥ (अकबर)

क़ल्ज़मे-दहर में रखता है तजर्रुद मद फ़ज़ ।
ग़र्क़ कम होता है दरिया में सफ़ीना ख़ाली ॥
एक के नफ़े से है एक को नुक़सान यहाँ ।
जाम भर जाय जो, साक़ी ! तो सागिर ख़ाली ॥ (नासिख़)

सुन ले जो तवज्जह से बुज़ुर्गों की नसीहत ।
फिर कानें-जवाहर नहीं उस कान से बेहतर ॥

लालची वो मूर्ख तो बस हिर्स में फँस जायगा ।
मुर्ग़-दाना पर नहीं फँसता है दाना देखकर ॥

ख़ुशी से अपनी रुसवाई गवारा हो नहीं सकती ।
गरेबाँ फाड़ता है तंग जब दीवाना आता है ॥ (चकबस्त)

जिस बज़्म से भी चला गया जामे-मये-नफ़ाक़ ।
फीका वहीं है रंग उसी अञ्जुमन का है ॥ (इन्द्रजीत)

लोग कहते हैं कि बदलता है ज़माना अक्सर ।
मर्द वो हैं जो ज़माने को बदल देते हैं ॥ (अज्ञात)

ठोकर से बचके चलिये फ़िक्रे मआल कीजे ।
आँखों के तजुरबे से इस्लाहे-हाल कीजे ॥ (अज्ञात)

उसे कहते हैं वफ़ा यही ख़ुश्ते-नुमा है ।
बदनाम हो दुनिया में निकोनाम है रोता ॥

नाचीज़ है वह नाम नहीं जिस पै कुछ इल्ज़ाम ।
जो काम है उनका, यही इनआम है गोया ॥ (हाली)

रास्ती सीधी सड़क है इसमें कुछ खटका नहीं ।
कोई रहरू आज तक इस राह में भटका नहीं ॥ (अज्ञात)

है बेकारी भी इस ख़ुमख़ानये-आलम में बाकारी ।
जो ख़ाली बैठे हैं वो उम्र का पैमाना भरते हैं ॥

मन वो सलवा मुफ़्त का गर हो तो है मुझको हराम ।
हो रियाज़त की तो नाने-ख़ुश्क है न्यामत मुझे ॥

बच्चों को माँ की गोद भी मकतब से कम नहीं ।
इस मदर्से में हाजते-लौहो-क़लम नहीं ॥

यूँ तो बर्सों न पिलाऊँ न पीऊँ ऐ, ज़ाहिद ।
तौबा करते ही बदल जाती है नीयत मेरी ॥ (दाग़)

मौक़ूफ़ जुर्म ही पै करम का ज़हूर था ।
बन्दे अगर क़सूर न करते क़सूर था ॥ (असीर)

कुछ उम्र भी न पाई थी ऐसे मुसिन न थे ।
कहता था ख़ुद सबाब कि मरने कि दिन न थे ॥ (अज्ञात)

पर जब करो आग़ाज़ कोई काम बड़ा ।
हर साँस को उम्रे-जाँवदानी समझो ॥ (दबीर)

डर मौत का जीने की तमन्ना नहीं रखते ।
हम दिल में किसी तरह का खटका नहीं रखते ॥ (शाकिर)

बुरे अल्फ़ाज़ कह-कहकर न कर बरबाद नेकी को ।
कि हरफ़े-तल्ख़ भी नक़्शे-बदी है लोहे-नेकी पर ॥ (अज्ञात)

यूँ न किसी का बरगश्ता मुक़द्दर हो जाय।
मैं अगर फूल उठाऊँ तो वो पत्थर हो जाय॥ (चकबस्त)

लाख सरकश हों दबा ही वो रहेगा पे, 'जफ़र'।
बारे-अहसाँ से अगर रक्खे सरे-दुश्मन पै बोझ॥ (ज़फ़र)

क़तरा दरिया में जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वही, जिसका मआल अच्छा है॥ (ग़ालिब)

स.ख़ुन-सजी का क्या कहना है, लेकिन याद रख 'अकबर'।
जो सच्ची बात होती है, वही दिल में उतरती है॥ (अकबर)

वो मरता नहीं जिसकी .ख़ूबी हो बाक़ी।
वो ग़ायब नहीं जिसका हो ज़िक्र हाज़िर॥ (हाली)

नाख़लफ़ तिफ़्ल जो मर जाय तो अच्छा है 'असीर'।
देना माँ-बाप को पड़ता है कफ़न छोटा-सा॥ (असीर)

मर्द को चाहिये क़ायम रहे ईमान के साथ।
ता-दमे-मर्ग रहे यादे ख़ुदा जान के साथ॥

मैंने माना कि तुम्हारी नहीं सुनता कोई।
सुर मिलाना पर तुम्हें क्या फ़र्ज़ है शैतान के साथ॥ (अकबर)

सहरा को भी न पाया बुग़्ज़ो-हसद से ख़ाली।
क्या-क्या जला है लाखू, फूला जो ढाक-बन में॥ (अज्ञात)

नाज़ुक नज़ूक था तो उठाते थे नर्म-गर्म।
काहे को मार' कोई दबे जब बिगड़ गई॥ (मीर)

ज़ुल्म करता है चर्ख़े-निफ़्लापरवर अहले गौहर पर।
जो कानों से न सुनते थे, वो आँखों से दिखाता है॥ (रिन्द)

एक हम हैं कि हुए ऐसे परोमान कि बस।
एक वो हैं कि जिन्हें चाह के अरमाँ होंगे ॥
उम्र तो सारी कटी इश्क़े-बुताँ में 'मोमिन'।
आख़िरी वक़्त में, क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे ॥ (मोमिन)

सुबह गुज़री शाम होने आई 'मीर'।
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा। (मीर)

ग़लतफ़हमी बहुत है आलमे-अल्फ़ाज़ में 'अकबर'।
बड़ी मायूसियों के साथ अक्सर काम चलता है ॥
ये रोशन है कि परवाना है उसका आशिक़े-शादिफ़।
मगर दुनिया है कहती शमअ से परवाना जलता है ॥
(अकबर)

इन्सान को इन्सान से कीना नहीं अच्छा।
जिस सीने में कीना हो वो सीना नहीं अच्छा ॥
आवाज़ ये आती है लबे-आबे-बक़ा से।
मरना ही यहाँ ख़ूब है, जीना नहीं अच्छा ॥
हो सैर जो मंज़ूर दिला बहरे-जहाँ की।
जुज़ किश्तिये-दरवेश सफ़ीना नहीं अच्छा ॥ (नासिख़)

करो दोस्तो पहले आप अपनी इज़्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज़्ज़त ज़ियादा ॥
निकालो न रख़्ने नसब में किसी के।
नहीं इससे कोई रिज़ालत ज़ियादा ॥
फिर औरों की तकते फिरोगे सख़ावत।

बढ़ाओ न हद से सख़ावत ज़ियादा ॥

कहीं दोस्त तुमसे न हो जायँ बदज़न ।

जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा ॥

जो चाहो फ़क़ीरी में इज़्ज़त से रहना ।

न रक्खो अमीरों से मिल्लत ज़ियादा ॥

तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगी की ।

न डालो तकल्लुफ़ की आदत ज़ियादा ॥ (हाली)

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ, 'ज़ौक़' ।

है बुरा वह ही कि जो तुझको बुरा जानता है ॥

और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है ।

क्यों बुरा कहने से तू उसके बुरा मानता है ॥ (ज़ौक़)

जुदा किसी से किसी का ग़रज़ हबीब न हो ।

यह वह रग है कि दुश्मन को भी नसीब न हो ॥ (अज्ञात)

तेरे आशियाँ में तो थे चार तिनके ।

चमन उड़ गये आंधियां आते-आते ॥ (अज्ञात)

पर गुज़रे ऐन वक्त पर, जो कुछ भी हो सका ।

पहले से कोई बात दिल में ठानते नहीं ॥ (अज्ञात)

दिल का कोई हामी दर्दे-बिस्मिल नहीं होता ।

कम्बख़्त कलेजा भी तो साबित नहीं होता ॥ (दाग़)

लगे बढ़ने हद से कि होशो-ख़िरद ।

लगी साथ बढ़ने परेशानियाँ ॥

बुढ़ापे की दानाई लेकर कोई।
बदलते वो बचपन की नादानियाँ ॥

न कर घर से निकलकर इज़्ज़तो-तौक़ीर के टुकड़े।
यही देगा ख़ुदा तुझको तेरी तक़दीर के टुकड़े ॥ (ख़लीक़)

ख़ुशी जीने की क्या, मरने का ग़म क्या।
हमारी ज़िन्दगी क्या और हम क्या ॥ (ग़ालिब)

इक रोज़ का रोना हो तो रोकर सबर आये।
हर रोज़ के रोने को कहाँ से जिगर आये ॥ (ग़ालिब)

बेहतर तो है यही कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें जो काम न बे-दिल्लगी चले ॥ (ज़ौक़)

भला गुल तू तो हँसता है, हमारी बेसबाती पर।
बता रोती है किस-किस हस्तिये-मौहूम पर शबनम (सौदा)

सैयाद ने कब नावके-बेदाद लगाया।
जब शाख़ से उड़ने को, हम पर तोल रहे थे ॥ (अज्ञात)

हद से जो चीज़ बढ़ी, उसमें ख़राबी आई।
ख़ाक में लोटते हैं, यार के गेसू बढ़कर ॥ (अज्ञात)

वह है मुख़्तार सज़ा दे कि जज़ा दे 'फ़ानी'।
दो घड़ी होश में आने के गुनाहगार हैं हम ॥ (फ़ानी)

फिरता हूँ फेरता है वह पर्दानशीं जिधर।
पुतली की तरह मैं नहीं कुछ अख़्तियार में ॥ (अज्ञात)

बनाया आशियाँ जिस जा वहीं सैयाद आ पहुँचा।

देखा वो अपनी आँख से जो कुछ सुना न था।

और देखिये 'रज़ी' अभी क्या-क्या दिखाये दिल ॥ (रज़ी)

जवानी से भी ज़्यादा वक़्ते-पीरी जोश होता है।

भड़कता है चिराग़े-सुबह जब ख़ामोश होता है ॥ (तस्लीम)

यों वफ़ा उठ गई ज़माने से।

कभी गोया जहाँ में थी ही नहीं ॥ (मीर)

हास्य

१—क़हक़हों की मश्क़ से मैंने निकाला अपना काम।

जब किसी ने क़द्रे-आहो-नालयां जारी न की ॥ (अकबर)

२—आतशे-दोज़ख़ से डराने की ज़रूरत क्या है।

हम तो दाढ़ी ही तेरी देखके डर जाते हैं ॥ (ज़रीफ़)

३—शेख़जी घर से न निकले और मुझसे कह दिया।

तुम तो बी० ए० पास हो, और बन्दा बीबी पास है।

(अकबर)

४—हुआ है आर सिजदों पर जो-दावर ज़ाहिदो तुमको।

ख़ुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है ॥ (ज़ौक़)

५—पोल अपनी खुली जो न पढ़ा कल्मीदे-लखान।

पढ़ गये पाक आप भी साहब हम जाने गये ॥ (अकबर)

६—कहें तलवारें-चलें यार भी ख़िदमत तो हम करते।

पया 'साद' ने सब-कुछ लिख दिया अपनी तुरिल्मा ने ॥

(शराब)

डारविन साहब हक़ीक़त से निहायत दूर थे।
मैं न मानूँगा कि मूरिस आपके लंगूर थे॥ (अज्ञात)

सूफ़सी दाढ़ी लगा तुम बन गये लंगूर-से।
इसको कटवाओ मैं बाज़ आई ख़ुदा के नूर से॥ (अज्ञात)

इन्साँ हुए मोहज़्ज़ब लेकिन मज़ा तो जब है।
जंगल में कह रही थी हाथी से एक हथनी॥
तक़रीर को खड़ी हो कल्लू मियाँ की बीबी।
परधान हो सभा में बंसी की धर्म-पत्नी॥ (इकबाल)

शेख़ का हुलिया अजब दाढ़ी मुँडाकर होता गया।
मुँह जो पहिले नारियल था, अब टिमाटर हो गया॥ (अज्ञात)

शग़ले मैंने रंगो-रोग़न शेख़ का चमका दिया।
लोग समझे ज़िक्रे-हक़ से शक्ल नूरानी हुई॥ (अज्ञात)

आजकल का फ़ैशन

१—आजकल तक़लीदे-इंग्रेज़ी तो हम पर फ़र्ज़ है।
गर्चे इसमें मन्ज़िल अपनी होती है खोटी ज़रूर॥
सख़्ती के मारे मसूड़े ख़्वाह छिल ही क्यों न जायं।
खायेंगे हर रोज़ हम सूखी डबल रोटी ज़रूर॥
उसकी टाँगों पर बला से मक्खियाँ भिनका करें।
काटकर कर देंगे हम घोड़े की दुम छोटी ज़रूर॥ (शब्बीर)

२—पकालें पीसकर दो रोटियाँ थोड़े-से जो लाना।
हमारी क्या है, ऐ भाई, न मिस्टर है न मौलाना॥ (अकबर)

मैंने इस शौन से उस शाख़ को अक्सर देखा ।
डुगडुगी हाथ में और साथ में बन्दर देखा ॥
आज तक मैंने कभी नीम की डंडी के सिवा ।
हाथ में उनके न शमशीर न ख़न्जर देखा ॥
किस तरह यार को अब ढूंढ़ने जाऊँ 'सरपर' ।
बम-पुलिस में भी कई रोज़ बराबर देखा ॥ (सरपर)
हरचन्द नातवां हूँ, पर आगया जो दिल में ।
देगा मिला ज़मीं से तेरा फ़लक क़ुलाबा ॥ (अज्ञात)
हज़रते-दिल जो किसी जिल के हवाले होते ।
जितने गोरे हैं मुक़र्रिर, मेरे साले होते ॥ (मास्टर शान्ति)
तोबा का तो इरादा हमारा भी है ऐ, शेख़ ।
पिन ज़रा आजाय बुढ़ापा अभी कुछ और ॥ (सोज़ा)

तहसील का दफ़्तर

मैंने सरे-राह [illegible] ये देखा नज़र ।
[illegible] पर ॥
[illegible] सारे ।
[illegible] तहसील का [illegible] दफ़्तर ॥ [illegible]
[illegible] ज़माने में ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]

हम मशरिक़ के मसकीनों का दिल मग़रिब में जा अटका है।
वहाँ कंटर सब बिल्लौरी हैं, यहाँ वही पुराना मटका है॥
इस दौर में सब मिट जायँगे हाँ बाक़ी वह रह जायेगा।
जो क़ायम अपनी राह पै है और पक्का अपनी हठ का है।
ऐ, शेख़ो-बिरहमन, सुनते हो क्या अहले-बसीरत कहते हैं।
गरदूँ ने कितनी बलन्दी से इन क़ौमों को दे पटका है॥
या बाहम प्यार के जलसे थे दस्तूरे-मोहब्बत क़ायम था।
या बहस में उर्दू-हिन्दी है या क़ुरबानी या झटका है॥
(इक़बाल)

'रज़ी' सबाब जो खोया है पीरी में।
हम उसको ढूँढ़ते फिरते हैं सर झुकाये हुये॥ (रज़ी)

अपने मन्सूबे तरक़्क़ी के हुए सब पामाल।
बीज मग़रिब ने जा बोया वो उगा और फल गया॥
बूट डासन ने बनाया मैंने एक मज़मूँ लिखा।
मुल्क में मज़मूँ न फैला और जूता चल गया॥ (अकबर)

मग़रबी ज़ौक़ है और वज़अ की पाबन्दी भी।
ऊँट पै चढ़के थियेटर को चले हैं हज़रत॥ (अकबर)

कर दिया करज़न ने ज़न मर्दों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बनाकर पूँछ ली॥
सच ये है इन्सान को योरुप ने हल्का कर दिया।
इब्तदा दाढ़ी से की और इन्तहा में मूँछ ली॥ (अकबर)

ये कोई दिन की बात है ऐ मर्दे-होशमन्द ।
ग़ैरत न तुममें होगी न ज़न ओट चाहेंगी ॥
आता है अब वो दौर कि औलाद की एवज़ ।
कालिज की मेम्बरी के लिये वोट चाहेंगी ॥ (इक़बाल)
शेख़ साहब भी तो परदे के कोई हामी नहीं ।
मुफ़्त में कालिज के लड़के उनसे बदज़न हो गये ॥
वाज़ में फ़रमा दिया कल आप ने ये साफ़-साफ़ ।
परदा आख़िर किससे हो जब मर्द ही ज़न होगये ॥ (इक़बाल)
दिखलाई जेल तर्क-मवालात ने मुझे ।
लीडर बनाया, मेरी हवालात ने मुझे ॥ (इश्तयाक़)
छोड़ लिटरेचर को अपनी हिस्ट्री को भूल जा ।
शेख़ो-मस्जिद से तअल्लुक़ तर्क कर स्कूल जा ॥
चार दिन की ज़िन्दगी है कोफ़्त से क्या फ़ायदा ।
खा डबल रोटी क्लर्की कर ख़ुशी से फूल जा ॥ (अकबर)
आप फ़िराक़ ने क्या जल्द [illegible] घड़ियाँ ।
[illegible] पहिचान [illegible] ॥ (नज़ान)
[illegible] ।
[illegible] ॥ (नैय्यर)
[illegible] ।
[illegible] (मुनीर)
[illegible] ।
[illegible]

तरक़्क़ी की नई राहें जो ज़ेरे आस्माँ निकलीं।
मियाँ मस्जिद से निकले और हरम से बीबियाँ निकलीं॥
मुसीबत में भी अब यादे-ख़ुदा आती नहीं उनको।
दुआ मुँह से न निकली पाकटों से अर्ज़ियाँ निकलीं॥(अकबर)

लाट साहब एक कुर्सी पर हैं, एक पर शेख़जी।
एक है, बकरे का हम-सर, एक बन्दर का जवाब॥ (बूम)

हरीफ़ों ने रपट लिखवाई है जा-जाके थाने में।
कि 'अकबर' जिक्र करता है ख़ुदा का इस ज़माने में॥(अकबर)

तहज़ीब के मरीज़ को गोली से फ़ायदा।
दफ़अ-मरज़ के वास्ते बिल पेश कीज़िये॥
थे वो भी दिन कि खिदमते-उस्ताद के एवज़।
दिल चाहता था हुदयये-दिल पेश कीजिये॥
बदला ज़माना ऐसा कि लड़का पस-अज़-सबक़।
कहता है मास्टर से कि 'बिल' पेश कीजिये॥ (इक़बाल)

क़ाबिले-रश्क है ज़माने में,
दिन वकीलों का रात आशिक़ की॥ (अकबर)

दस्तूर था कि होता था पहले ज़माने में।
मुल्ला का, मोहत सब का ख़ुदा का नबी का डर॥
दो ख़ौफ़ रह गये हैं हमारे ज़माने में।
मज़मूँ निगार बीबी का सी० आई० डी० का डर॥ (इक़बाल)

पेट है फूला हुआ क्यों शेख़ साहब इस क़दर।
खाके आये हैं कहीं से पेट भरकर जुतियाँ॥ (साकिब)

न पाँवों में जुंबिश न हाथों में ताक़त ।

जो उठ खींचें दामन, हम उस दिलरुबा का ।

सरे-राह बैठे हैं, और यह सदा है ।

कि अल्लाहवाली है बे-दस्तो-पा का ॥

लीडर

१—सदमे उठाये रंज सहे गालियाँ सुनीं ।

लेकिन न छोड़ा क़ौम के ख़ादिम ने अपना काम ॥ (अकबर)

२—खुल गया मुझ पर बहुत हैं आप मेरे ख़ैरख़्वाह ।

ख़ैर चन्दा लीजिये तूमार रहने दीजिये ॥ (अकबर

३—कोट और पतलून जब पहना तो मिस्टर बन गये ।

जब कोई तक़रीर की जलसे में लीडर बन गये ॥ (सामरी

४—ख़ाक तासीर हो मुल्लाओं के समझाने में ।

दिन को मस्जिद में तो हैं रात को मैख़ाने में ।

५—लड़ते हैं जाके बाहर ये शेख़ व बिरहमन ।

पीते हैं मैकदे में साग़िर बदल-बदलकर ॥ (मायल)

६—वो रोये बहुत स्पीचों में हिकमत इसको कहते हैं ।

मैं ख़ैरख़्वाह समझा उनको हिमाक़त इसको कहते हैं ॥

(अकबर)

शब्द-कोष

५—सवाब = पुण्य

६—मुसहिफ़ = .कुरानशरीफ़

२—ज़िना = व्यभिचार

८—मरदुम आज़ारी = मनुष्य को दुःख देना।

पृष्ठ ४

१—मौजे-फ़ना = मृत्यु का लहर

२—इबरत = उपदेश, शिक्षा

३—जा = जगह, स्थान

पृष्ठ ५

१—रंगे-इशरत = सुख की आभा

२—बाग़े-आलम = संसार-वाटिका

३—आशियाना = घोंसला, निवास-स्थल

४—अग़ियार = शत्रु

पृष्ठ ६

१—लबरेज़ = परिपूर्ण

२—जाम = प्याला

३—अजल = मृत्यु

४—.खुमारे-वादये-हस्ती = जीवनरूपी मद्य का नशा

५—ज़ीस्त = जीवन

६—इज़्तराब = दुःख, शोक

७—शाने करीम = ईश्वर की महिमा

शब्द-कोष

पृष्ठ ७

१—दामाने-मादर = माता की गोद

२—तुरबत = कब्र

३—लहद = कब्र

४—पामान्दगी = दुःख

५—गहवारा = पालना

६—सामाने-ऐशो = सुख के साधन

७—मनज़रे-हस्ती = जीवन के दृश्य

८—खुल्क़ = शीलस्वभाव

९—दाअते-यज़्दाँ = ईश्वरीय प्रसाद

पृष्ठ ८

१—आरज़ू = इच्छा, अभिलाषा

२—नासेह = उपदेशक

३—जज़ा = फल, पुरस्कार

४—[illegible] = दौलत

५—दानाई = बुद्धिमानी

६—तदबीर = [illegible]

७—दाना = बुद्धिमान

पृष्ठ ९

१—बीमार = रोगी

२—[illegible] = [illegible]

शब्द-कोष

पृष्ठ १०

१—नातमाम = अपूर्ण

२—हस्बहाल = अनुकूल

पृष्ठ ११

१—तौसीफ़े-क़िबिया = ईश्वरीय ज्ञान

२—मुश्ते ख़ाक़ = मुट्ठीभर ख़ाक, तात्पर्य मनुष्य से है

३—कहो-मह = छोटे-बड़े, सर्वसाधारण

पृष्ठ १२

१—चश्मे-मरदुम = मनुष्य की आँख

२—निहाले ख़ाकसारी = नम्रता का पौदा

३—नख़ले सरकशी = अभिमान का वृक्ष

४—बारबर = फलयुक्त, सफल

पृष्ठ १३

१—फ़ितरत = प्रकृति

२—राम = .गुलाम

पृष्ठ १४

१—तवक्कुल = त्याग, सन्तोष

२—क़नाअत = सन्तोष

३—मिसकीं = निर्धन

४—शगुफ़्ता = खिला हुआ, .खुश

५—ख़ातिर = दिल, हृदय

शब्द-कोष

पृष्ठ १९

१—इन्तक़ाम = बदला
२—सितमगर = ज़ालिम, अत्याचारी
३—शादमा = .खुश, प्रसन्न
४—दिले-दर्दमन्द = दुःखी मनुष्य का हृदय

पृष्ठ २०

१—असफल = नीच मनुष्य
२—मर्तबा = पद
३—हलावत = मिठास
४—करख़्तगी = कड़ापन, सख़्ती
५—करगरदन = गैंडा
६—तलख़ी = कड़वापन
७—शाख़ = टहनी
८—तुख़्म = बीज़
९—सन्दल = चन्दन
१०—तयस्सर = प्रभाव, असर
११—जब = पहाड़
१२—जिबलत = स्वभाव, आदत
१३—गंज = ख़ज़ाना
१४—अयूब = दोष
१४—चश्मे हिक़ारत = घृणा की दृष्टि
१५—सीमोज़र = चाँदी, सोना
१६—नस्ब नामे = वंशावली

पृष्ठ २२

१—अहले-यक़ीन = विश्वासपात्र

२—हसूल = प्राप्त

पृष्ठ २८

१—मखसुन मज = पवित्र

२—तहफ़्फ़ुज़ = रक्षा

३—मुतमव्वलो = धनी, वैभववान

४—फ़हमीद वाल = बुद्धिमान

पृष्ठ २५

शब्द-कोष

२—पैज़ार = जूता

३—उल्फ़त = प्रेम

४—जर्स = घंटा

५—कारवाँ = क़ाफ़िल

६—राहवर = मुसाफ़िर

७—राजन = डाकू

पृष्ठ २५

१—सीमव = पारा

२—आज़ार = दुःख कष्ट

३—अजाब = दुःख, क्रोध

४—अताब = क्रोध

५—दाग़े-फ़ुरक़त = प्रेम-वियोग

६—ज़ीस्त = जीवन

७—सोजे जहन्नुम = नार्कीय यन्त्रानायें

पृष्ठ २८

१—लिबासे वाज़ = उपदेश के रूप में

२—ज़ाहिद = परहेजगार

३—जुल्मते = अन्धेर

४—फ़रेब = धोखा

५—रजजन = डाकू

पृष्ठ २९

१—फ़लक = आकाश

२—दुख्तरिज़ = शराब

३—मय = मद्य

३० पृष्ठ

१—दहन = मुँह

२—नजासत = गन्दगी

३—तहसीले इल्म = विद्या प्राप्त करना

४—नामुरादी = निराशा

३१ पृष्ठ

१—इनक़लाब = परिवर्तन

३—मक़रूज़ = ऋण

४—मुग़ा = पीर, गुरू

पृष्ठ ३५

१—अक़ीक़ = पत्थर

२—अलम = दुःख

३—राहत = सुख

४—अहबाब = मित्र

पृष्ठ ३६

१—ग़लूये = गला, कंठ

२ = फ़रज़न्द — बेटा

३—गदा = फ़क़ीर

४—ख़ल्क़ = दुनियाँ, संसार

५—बैतुल हज़न = शोक-भवन

६—याराने = मित्रगण

पृष्ठ ३७

१—ग़ुरबत = प्रवास

२ —अहले जौहर = गुणवान लोग

३—जोयाँ = ढूंढनेवाला

४—ताअबद = सदैव

पृष्ठ ३८

१—मुरस्सा साज़ = जड़ैय्या

२ —निहाँ = गुप्त

३—माज़ी = भूत काल

पृष्ठ ३९

१—फ़ील = हाथी

२—शिकम = पेट

३—ज़ीस्त = ज़िन्दगी, जीवन

पृष्ठ ४०

१—तबा = तबियत

२—जरी = साहसी, दिलेर

४—अज़दहा = नाग, बड़ा साँप

पृष्ठ ४४

१—अकसीरगर = कीमियाँ बनानेवाला

२—लहद = क़ब्र

पृष्ठ ४५

१—ब.ज्म = सभा

२—महजूर = जुदा किया हुआ

३—रास्त = सीधा

४—हक़ = सच

पृष्ठ ४६

१—हक़ीक़त = सचाई

२—दरोग़ = झूँठ

३—हया = शर्म, लज्जा

पृष्ठ ४७

१—बूये-गुल = पुष्प-गन्ध

३—साहिल = किनारा

४—नफ़ूर = घृणा

पृष्ठ ४८

१—कसीफ़ = अशुद्ध

२—गाम = क़दम, पग

३—जिन्स = वस्तु

पृष्ठ ५५

१—बेदारी = जागृति

२—मातमख़ाना = शोक-भवन

पृष्ठ ५६

१—अदम = परलोक

२—शर = उद्दण्डता

३—बशर = मनुष्य

४—फ़हम = बुद्धि, समझ

५—ज़का = प्रतिभा

६—तैश = क्रोध

७—हिलाल = दोयज का चाँद

पृष्ठ ५७

१—कुल्ज़मे-दहर = संसार-सागर

२—साग़िर = प्याला

३—मुर्ग़ दाना = बुद्धिमान् चिड़िया

४—रुसवाई = बदनामी

पृष्ठ ५८

१—रास्ती = सचाई

२—राहरू = मुसाफ़िर

३—करम = कृपा, दया

पृष्ठ ५९

१—तिफ़्ल = बच्चा

पृष्ठ ५५

१—बेदारी = जागृति

२—मातमख़ाना = शोक-भवन

पृष्ठ ५६

१—अदम = परलोक

२—शार = उद्दण्डता

३—बशर = मनुष्य

४—फ़हम = बुद्धि, समझ

५—ज़का = प्रतिभा

६—तैश = क्रोध

७—हिलाल = दोयज का चाँद

पृष्ठ ५७

१—कुल्ज़मे-दहर = संसार-सागर

२—साग़िर = प्याला

३—मुर्ग़ दाना = बुद्धिमान् चिड़िया

४—रुसवाई = बदनामी

पृष्ठ ५८

१—रास्ती = सचाई

२—राहरू = मुसाफ़िर

३—करम = कृपा, दया

पृष्ठ ५९

१—तिफ़्ल = बच्चा

२—अहले-बसीरत = बुद्धिमान

पृष्ठ ६७

१—ज़न = स्त्री

२—तर्के-मवालात = असहयोग

३—फोफ़्त = परेशानी, दुःख

पृष्ठ ६८

१—हमसर = बराबर

२—मोहतसिब = हिसाब लेनेवाला

पृष्ठ ६९

१—नासह = उपदेशक

२—रिन्द = वह मनुष्य जो धार्मिक नियमों का पाबन्द न हो

पृष्ठ ७०

१—जुम्बिश = हरकत

२—तासीर = प्रभाव

३—मयकदा = शराबख़ाना

साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित

बीस पुस्तकें—

१—षड्यन्त्रकारी

मूल्य १॥)

२—महापाप

मूल्य १॥)

३—देहाती सुन्दरी

मूल्य १॥)

३—यौवन की आँधी

मूल्य १॥)

५—लेनिन और गांधी

(जब्त) २)

६—विनाश की घड़ी

मूल्य १)

७—श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र

मूल्य ॥)

८—रूस का पञ्चवर्षीय आयोजन

(जब्त) ४)

९—राजस्थान

मूल्य ३)

१०—चार क्रांतिकारी

मूल्य [illegible]

११—जेल-यात्रा

मूल्य २) सजिल्द२॥)

१२—तलाक़

मूल्य २), सजिल्द २॥)

१३—तपोभूमि

मूल्य २), सजिल्द २॥)

१४—जासूसी कहानियाँ

मूल्य १)

१५—टॉलसटॉय की डायरी

मूल्य ३)

१६—मास्टर साहब

मूल्य २)

१७—अभियुक्त

मूल्य २)

१८—मुग़लों के अन्तिम दिन

मूल्य १)

१९—फूलदान

मूल्य ॥≈)

२०—मधुकरी

(दूसरा भाग)

मूल्य ३)

भक्त-बालक

गोविन्द

गोवर्धन बड़ा सुन्दर गाँव है। गाँवमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी ही बस्ती अधिक है। गाँवके बीचमें एक मन्दिर है, जिसमें श्रीनाथजी महाराजकी बड़ी ही सुन्दर मूर्ति विराजमान है। उनके चरणोंमें नूपुर, गलेमें मनोहर वनमाला और मस्तकपर मोरमुकुट शोभित हो रहा है। घुँघराले बाल हैं, नेत्रोंकी बनावट मनोहारिणी है और पीताम्बर पहने हुए हैं। मूर्तिमें इतनी सुन्दरता है कि देखनेवालोंका मन ही नहीं भरता। मन्दिरके पास ही एक गरीब ब्राह्मणका घर था। ब्राह्मण था गरीब परन्तु उसका हृदय भगवद्-भक्तिके रंगमें रँगा हुआ था। ब्राह्मणी भी अपने पति और पतिके भी परम पति परमात्माके प्रेममें रत थी। उसका स्वभाव बड़ा ही सरल और मिलनसार था, कभी किसीने उसके मुखसे कड़वा शब्द नहीं सुना। पिता-माताके अनुसार ही प्रायः पुत्रका स्वभाव हुआ करता है। इसी नियमसे [illegible] पुत्र गोविन्द भी बड़े सुन्दर स्वभाववाला बालक था। उसकी उम्र दस वर्षकी थी। गोविन्दके शरीरकी बनावट इतनी सुन्दर थी कि लोग उसे श्रीनाथजीका अवतार [illegible] कहा करते थे

गोविन्द गाँवके बाहर अपने साथी सदानन्द और रामदासके साथ खेला करता था। एक दिन खेलते-खेलते सन्ध्या हो गयी। गोविन्द घर लौट रहा था तो उसने मन्दिरमें आरतीका शब्द सुना। शंख, घण्टा, घड़ियाल और झाँझकी आवाज सुनकर गोविन्दकी भी मन्दिरमें जाकर तमाशा देखनेकी इच्छा हुई और उसी क्षण वह दौड़कर नाथजीकी आरती देखनेके लिये मन्दिरमें चला गया। नाथजीके दर्शनकर बालकका मन उन्हींमें रम गया। गोविन्द इस बातको नहीं समझ सका कि यह कोई पाषाणकी मूर्ति है। उसने प्रत्यक्ष देखा कि एक जीता-जागता मनोहर बालक खड़ा हँस रहा है। गोविन्द, नाथजीकी मधुर मुसुकान पर मोहित हो गया। उसने सोचा यदि 'यह बालक मेरा मित्र बन जाय और मेरे साथ खेले तो बड़ा आनन्द हो!' इतनेमें आरती समाप्त हो गयी। लोग अपने-अपने घर चले गये। पुजारी भी मन्दिर बन्द करके चले गये। एक गोविन्द रह गया, जो मन्दिरके बाहर अँधेरेमें खड़ा नाथजीकी बाट देखता था। गोविन्दने जब चारों ओर देखकर यह जान लिया कि कहीं कोई नहीं है, तब उसने किंवाड़ोंके छेदसे अन्दरकी ओर झाँककर अकेले खड़े हुए श्रीनाथजीको हृदयकी बड़ी गहरी आवाजसे गद्गदकण्ठ हो प्रेमपूर्वक पुकारकर कहा, 'नाथजी! भैया क्या तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे? मेरा मन तुम्हारे साथ खेलनेके लिये बहुत छटपटा रहा है। भाई! आओ, देखो कैसी चाँदनी

रात है, चलो, दोनो मिलकर मैदानमें गुलिडंडा खेलें। मैं सच कहता हूँ, भाई! तुमसे कभी झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा।'

सरल हृदय बालकके अन्तःकरणपर आरतिके समय जो प्रभाव पडा, उससे वह उन्मत्त हो गया। परमात्माके मधुर और अनन्त प्रेमकी अमृतमयी मलयवायुसे गोविन्द प्रेम-मग्न होकर मन्दिरके अन्दर खडे हुए उस भक्त-प्राण-धन गोविन्दको रो-रो-कर पुकारने लगा। बालकके अश्रुसिक्त शब्दोंने बडा काम किया। *'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्'* की प्रतिज्ञाके अनुसार नाथजी मन्दिरमे नहीं ठहर सके। भक्तके प्रेमावेशने भगवान्को खींच लिया! गोविन्दने सुना, मानो अन्दरसे आवाज आती है—'भाई! चलो, आता हूँ, हम दोनों खेलेंगे।'

सरल बालकका मधुर प्रेम भगवान्को बहुत शीघ्र खींचता है। बालक ध्रुवके लिये चतुर्भुजधारी होकर वनमें जाना पडा। भक्त प्रह्लादके लिये अनोखा नरसिंह वेष धारण किया और व्रज-बालकोंके साथ तो आप गौ चराते हुए वन-वन घूमे, आज गोविन्दकी मतवाली पुकार सुनकर उसके साथ खेलनेके लिये मन्दिरसे बाहर चले आये! धन्य प्रभु! न मालूम तुम मायाके साथ लेकर कितने खेल खेलते हो। तुम्हारा मर्म कौन जान सकता है? बालकोंके खेलसे ही लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, फिर तुम तो [illegible] ठहरे! बेचारी माया तो तुम्हारे नट-चक्रमें

गोविन्द गाँवके बाहर अपने साथी सदानन्द और रामदासके साथ खेला करता था। एक दिन खेलते-खेलते सन्ध्या हो गयी। गोविन्द घर लौट रहा था तो उसने मन्दिरमें आरतीका शब्द सुना। शंख, घण्टा, घड़ियाल और झाँझकी आवाज सुनकर गोविन्दकी भी मन्दिरमें जाकर तमाशा देखनेकी इच्छा हुई और उसी क्षण वह दौड़कर नाथजीकी आरती देखनेके लिये मन्दिरमें चला गया। नाथजीके दर्शनकर बालकका मन उन्हींमें रम गया। गोविन्द इस बातको नहीं समझ सका कि यह कोई पाषाणकी मूर्ति है। उसने प्रत्यक्ष देखा कि एक जीता-जागता मनोहर बालक खड़ा हँस रहा है। गोविन्द, नाथजीकी मधुर मुसुकान पर मोहित हो गया। उसने सोचा यदि 'यह बालक मेरा मि[illegible] बन जाय और मेरे साथ खेले तो बड़ा आनन्द हो!' इतने[illegible] आरती समाप्त हो गयी। लोग अपने-अपने घर चले गये पुजारी भी मन्दिर बन्द करके चले गये। एक गोविन्द रह गय[illegible] जो मन्दिरके बाहर अँधेरेमें खड़ा नाथजीकी बाट देखता था गोविन्दने जब चारों ओर देखकर यह जान लिया कि कहीं क[illegible] नहीं है, तब उसने किंवाड़ोंके छेदसे अन्दरकी ओर झाँक[illegible] अकेले खड़े हुए श्रीनाथजीको हृदयकी बड़ी गहरी आवा[illegible] [illegible] हो प्रेमपूर्वक पुकारकर कहा, 'नाथजी! भै[illegible] क्या तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे? मेरा मन तुम्हारे साथ खेलनेक[illegible] लिये बहुत छटपटा रहा है। भाई! आओ, देखो कैसी चाँदनी

रात है, चलो, दोनों मिलकर मैदानमें गुलिडडा खेलें । मै सच कहता हूँ, भाई । तुमसे कभी झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा ।'

सरल हृदय वालकके अन्तःकरणपर आरतिके समय जो प्रभाव पड़ा, उससे वह उन्मत्त हो गया । परमात्माके मधुर और अनन्त प्रेमकी अमृतमयी मलयवायुसे गोविन्द प्रेम-मग्न होकर मन्दिरके अन्दर खड़े हुए उस भक्त-प्राण-धन गोविन्दको रो-रो-कर पुकारने लगा । वालकके अश्रुसिक्त शब्दोंने बड़ा काम किया । 'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' की प्रतिज्ञाके अनुसार नाथजी मन्दिरमे नहीं ठहर सके । भक्तके प्रेमावेशने भगवान्को खींच लिया । गोविन्दने सुना, मानो अन्दरसे आवाज आती है—'भाई ! चलो, आता हूँ, हम दोनों खेलेंगे ।'

सरल वालकका मधुर प्रेम भगवान्को बहुत शीघ्र खींचता है । वालक ध्रुवके लिये चतुर्भुजधारी होकर वनमें जाना पड़ा । भक्त प्रह्लादके लिये अनोखा नरसिंह वेष धारण किया और व्रज-वालकोंके साथ तो आप गौ चराते हुए वन-वन घूमे, आज गोविन्दकी मतवाली पुकार सुनकर उसके साथ खेलनेके लिये मन्दिरसे वाहर चले आये । धन्य प्रभु ! न मालूम तुम मायाके साथ रमकर कितने खेल खेलते हो । तुम्हारा मर्म कौन जान सकता है ? मामूली मायावीके खेलसे ही लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, फिर तुम तो मायावियोंके सरदार ठहरे । वेचारी माया तो तुम्हारे भक्त-चञ्चरीक

सेवित चरण-कमलोंकी चेरी है अतएव तुम्हारे खेलके रहस्यको कौन समझ सकता है ? इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुम्हें अपने भक्तोंके साथ खेलना बहुत ही प्यारा लगता है। इसलिये तुम धन्नाके साथ गायें दुहते फिरे थे और इसीलिये आज बालक गोविन्दके पुकारने पर उसके साथ खेलनेको तैयार हो गये !

नाथजी हँसते हुए गोविन्दके पास आकर खड़े हो गये, गोविन्दने बड़े प्रेमसे उनका हाथ पकड़ लिया। आज गोविन्दके आनन्दका ठिकाना नहीं है, वह कभी नाथजीके मुखकमलको देखकर मतवाला होता है, तो कभी उनके कोमल-कर-कमलोंका स्पर्श कर अपनेको धन्य मानता है। कभी उनके नुकीले नेत्रोंको निहार कर मोहित होता है तो कभी उनके सुरीले शब्दोंको सुनकर फिर सुनना चाहता है। गोविन्दके हृदयमें आनन्द समाता नहीं, बात भी ऐसी ही है। जगत्‌का समस्त सौन्दर्य जिसकी सौन्दर्यराशिका एक तुच्छ अंश है उस अनन्त और असीम रूपराशिको प्रत्यक्ष पाकर ऐसा कौन है जो मुग्ध न हो ?

नये मित्रको साथ लेकर गोविन्द गाँवसे बाहर आया। चन्द्रमाकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी, प्रियतमकी प्राप्तिसे सरोवरमें कुमुदनी हँस रही थी, पुष्पोंकी अर्धविकसित कलियोंने अपनी मन्द-मन्द सुगन्धसे समस्त वनको मधुमय बना रक्खा था। प्रकृतिने अपने नाथकी अभ्यर्थना करनेके लिये सब तरहसे सज-

भजकर भक्ति-पूरित पुष्पाञ्जलि अर्पण करनेके लिये पहलेसे तैयार थी। ऐसी मनोहर रात्रिमें गोविन्द, नाथजीको पाकर अपने घर-बार, पिता-माता और नींद-भूखको सर्वांश भूल गया। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे तरह-तरहके खेल खेलने लगे।

गोविन्दने कहा था कि मै झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा, परन्तु विनोदप्रिय नाथजीकी मायासे मोहित होकर वह इस बातको भूल गया। खेलते-खेलते किसी बातको लेकर दोनों मित्र लड़ पड़े। गोविन्दने क्रोधमें आकर नाथजीके गालपर एक थप्पड़ जमा दिया और बोला कि 'फिर कभी मुझे खिझाया तो याद रखना, मारते-मारते पीठ लाल कर दूँगा।' सूर्य-चन्द्र और अनल-अनिल जिसके भयसे अपने-अपने काममें लग रहे हैं, स्वय देवराज इन्द्र जिसके भयसे समयपर वृष्टि करनेके लिये बाध्य होते हैं और भयाधिपति यमराज जिसके भयसे पापियोंको भय पहुँचानेमें व्यस्त है। वही त्रिभुवननाथ आज नन्हे-से बालक-भक्तके साथ खेलते हुए उसकी थप्पड खाकर भी कुछ नहीं बोलते! धन्य है!

नाथजी रोने लगे और बोले-'भाई गोविन्द! तुमने कहा था न कि मारूँगा नहीं, फिर मुझे क्यों मारा?' नाथजीकी इस बातको सुनकर और उनको रोते देखकर गोविन्दका कलेजा भर आया, उसने दौडकर नाथजीके आँसू पोंछ उन्हें अपने गले लगा लिया और बोला, 'भाई! रो मत, तू मुझे बहुत ही प्यारा लगता

सेवित चरण-कमलोंकी चेरी है अतएव तुम्हारे खेलके रहस्यको कौन
समझ सकता है ? इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुम्हें अपने
भक्तोंके साथ खेलना बहुत ही प्यारा लगता है। इसलिये तुम धन्नाके
साथ गायें दुहते फिरे थे और इसीलिये आज बालक गोविन्दके पुकारते
ही उसके साथ खेलनेको तैयार हो गये !

नाथजी हँसते हुए गोविन्दके पास आकर खड़े हो गये, गोविन्द-
ने बड़े प्रेमसे उनका हाथ पकड़ लिया। आज गोविन्दके आनन्दका
ठिकाना नहीं है, वह कभी नाथजीके मुखकमलको देखकर मतवाल
होता है, तो कभी उनके कोमल-कर-कमलोंका स्पर्शक
अपनेको धन्य मानता है। कभी उनके नुकीले नेत्रोंको निहारक
मोहित होता है तो कभी उनके सुरीले शब्दोंको सुनकर फि
सुनना चाहता है। गोविन्दके हृदयमें आनन्द समाता नहीं
बात भी ऐसी ही है। जगत्का समस्त सौन्दर्य जिसकी सौन्द
राशिका एक तुच्छ अंश है उस अनन्त और असीम रूपराशि
प्रत्यक्ष प्राप्तकर ऐसा कौन है जो मुग्ध न हो ?

नये मित्रको साथ लेकर गोविन्द गाँवसे बाहर आया। चन्द्र
की चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी, प्रियतमकी प्राप्तिसे सरोव
कुमुदनी हँस रही थी, पुष्पोंकी अर्धविकसित कलियोंने अ
मन्द-मन्द सुगन्धसे समस्त वनको मधुमय बना रक्खा था। म
प्रकृति अपने नाथकी अभ्यर्थना करनेके लिये सब तरहसे स

धजकर भक्ति-पूरित पुष्पाञ्जलि अर्पण करनेके लिये पहलेसे तैयार थीं। ऐसी मनोहर रात्रिमें गोविन्द, नाथजीको पाकर अपने घर-बार, पिता-माता और नींद-भूखको सर्वांश भूल गया। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे तरह-तरहके खेल खेलने लगे।

गोविन्दने कहा था कि मै झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा, परन्तु विनोदप्रिय नाथजीकी मायासे मोहित होकर वह इस बातको भूल गया। खेलते-खेलते किसी बातको लेकर दोनों मित्र लड़ पड़े। गोविन्दने क्रोधमें आकर नाथजीके गालपर एक थप्पड़ जमा दिया और बोला कि 'फिर कभी मुझे खिझाया तो याद रखना, मारते-मारते पीठ लाल कर दूँगा।' सूर्य-चन्द्र और अनल-अनिल जिसके भयसे अपने-अपने काममें लग रहे हैं, स्वयं देवराज इन्द्र जिसके भयसे समयपर वृष्टि करनेके लिये बाध्य होते हैं और भयाधिपति यमराज जिसके भयसे पापियोंको भय पहुँचानेमें व्यस्त हैं। वही त्रिभुवननाथ आज नन्हे-से बालक-भक्तके साथ खेलते हुए उसकी थप्पड खाकर भी कुछ नहीं बोलते! धन्य है!

नाथजी रोने लगे और बोले-'भाई गोविन्द! तुमने कहा था न कि मारूँगा नहीं, फिर मुझे क्यों मारा?' नाथजीकी इस बातको सुनकर और उनको रोते देखकर गोविन्दका कलेजा भर आया, उसने दौड़कर नाथजीके आँसू पोंछ उन्हें अपने गले लगा लिया और बोला, 'भाई! रो मत, तू मुझे बहुत ही प्यारा लगता

है, तेरी आँखोंमें आँसू देखते ही मेरा कलेजा फटता है।' दोनों फिर खेलने लगे। रात अधिक हो गयी। भगवान्‌ने यह सोचकर कि इसके माता-पिता बड़े चिन्तित होंगे, अपनी मायासे गोविन्दके हृदयमें घर जानेके लिये प्रेरणा की। गोविन्दने कहा, 'नाथजी! बड़ी देर हो गयी है, मैं घर जाता हूँ, अब कल फिर खेलेंगे।' नाथजीने अनुमति दी! गोविन्द घर चला गया और अनाथोंके एकमात्र नाथ श्रीनाथजी अपने मन्दिरमें चले गये।

प्रतिदिन इसी प्रकार खेल होने लगा। गोविन्द इस नयन-मनमोहन नये मित्रको पाकर पुराने दोनों मित्रोंको भूल गया। एक दिन श्रीनाथजी महाराज खेलते-खेलते गोविन्दको दाँव न देकर भागे। गोविन्द भी पीछे-पीछे दौड़ा। नाथजी महाराज मन्दिरमें जाकर घुस गये। मन्दिरका द्वार बन्द था, अतएव गोविन्द अन्दर नहीं जा सका, नाथजीका अन्याय समझकर वह मन्दिरके बाहर खड़ा होकर उन्हें प्रणयकोपसे खरी-खोटी सुनाने लगा। भक्तमालके रचयिता रीवाँनरेश रघुराजसिंहजी लिखते हैं—

भगि मन्दिर भीतर कृष्ण गये, तब गोविंद भीतर जान लगो।
जब पंडन मारि निकासि दियो, तब बाहर ही अति कोप जगो॥
महि ठोंकत डंड, प्रचारत गारि दे, तू कढ़िहैं कबलों न भगो।
इत बैठ रहौंगो मैं तेरे लिये, नहिं दाँव दियो अहै पूरो ठगो॥

मन्दिर खुलते ही गोविन्द अन्दर घुस गया और डण्डेसे नाथ-जीकी मूर्तिको पीटकर बोला कि 'फिर कभी भागेगा ?' पुजारियोने 'हा ! हा !' करके गोविन्दको पकड़ा और मार-पीटकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया, इससे उसका प्रेम-कोप और भी बढ़ा और वह कहने लगा, 'नाथजी ! तैंने मेरे साथ बडा अन्याय किया है, दाँव न देकर भाग आया और अब मुझे अपने आदमियोसे मरवाकर बाहर निकलवा दिया, अच्छा कल देखूँगा, जबतक तुझे इसका बदला न दूँगा, तबतक पानी भी नहीं पीऊँगा ।' यों कहकर गोविन्द रूठकर चला गया और जाकर गोविन्दकुण्ड-पर बैठ गया। इधर मन्दिरमें भोग तैयार होनेपर पुजारीको प्रत्यादेश हुआ कि 'तुम लोगोंने मेरे जिस भक्तको मारकर बाहर निकाल दिया है वह जबतक नहीं आवेगा तबतक मेरे भोग नहीं लग सकता, उसके अंगपर जो मार पडी है वह सब मेरे शरीरपर लगी है।' पुजारीको क्या पता था कि भक्त और भक्तवत्सल अभिन्न होते हैं ? खैर ! पुजारीजी बड़े हैरान हुए, दौडे, और खोजते-खोजते कुण्डपर गोविन्दको पाकर कहने लगे, 'भाई, चलो ! नाथजीने तुम्हें बुलाया है, वे तुमसे हार मानते हैं और फिर तुम्हारे साथ खेलनेका वादा करते हैं ।' ब्राह्मणके वचन सुनकर गोविन्दने कहा, 'जाता तो नहीं, वही मेरे पास आता और जब मैं उसे खूब पीटता, तभी वह सीधी राहपर आता, पर अब, जब कि उसने हार मान ली है, तब तो चलो, चलता हूँ ।'

यों कहकर गोविन्द मन्दिरमें गया और विजय-गर्वसे हँसता हुआ बोला—'क्यों नाथजी ! फिर कभी करोगे ऐसी चातुरी ? अच्छा हुआ जो तुमने हार मानकर मुझे बुला लिया, नहीं तो ऐसा करता जो जन्मभर याद रखते !' गोविन्दने यह बातें कह तो दीं परन्तु जब नाथजीका मुख उदास देखा तो उसके सरल-हृदयमें बड़ी वेदना हुई । वह बोला—'भाई ! तुमने अभीतक भोग क्यों नहीं लगाया। तुम्हारे मुखको उदास देखकर मेरे प्राण रोते हैं, भाई! फिर कभी तुम्हें नहीं मारूँगा, तुम्हारी उदासी मुझसे सही नहीं जाती । मैं तुमसे अब नहीं रूठूँगा, तुम राजी हो जाओ और भोग लगाओ ।'

मन्दिरके द्वार बन्द हो गये । नाथजी प्रत्यक्ष होकर बोले 'भाई ! तुम भी तो भूखे हो । आओ, दोनों मिलकर खायँ' नाथजीका प्रसन्न-मुख देखकर गोविन्दका मन-सरोज भी खिल उठा । दोनों हँसने लगे । आनन्दकी ध्वनिसे मन्दिर भर गया गोविन्द, गोविन्दके हाथों बिक गये !

अकस्मात् द्वार खुला, गोविन्दने दिव्य-चक्षु प्राप्त किये उसे सर्वत्र केवल नाथजी ही दीखने लगे !

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

मोहन

एक छोटे-से गाँवमें एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी, ब्राह्मणी अत्यन्त दरिद्रा थी, उसके एक छोटे से पुत्रके अतिरिक्त कोई भी अपना नहीं था। ब्राह्मणीको दो चार भले घरोंमें भीख माँगनेसे जो कुछ मिल जाता, उसीसे वह अपना और अपने शिशु पुत्र मोहनका उदर-निर्वाह करती। किसी दिन यदि वहुत कम भीख मिलती तो ब्राह्मणी स्वय भूखी रहकर वच्चेको ही कुछ खिला-पिलाकर उसे हृदयसे लगा सन्तोषसे सो जाती। गाँवमें ऐसे लोग भी थे, जिनकी अवस्था वहुत अच्छी थी, परन्तु गरीव असहाया ब्राह्मणी-की किसीको कोई परवा न थी। महलोंमें रहनेवाले अमीरोंको बुरी तरहसे अनाप-शनाप वस्तुएँ पेटमें भरते रहनेके कारण मन्दाग्नि हुई रहती है, उन्हें पूरा-सा अन्न भी पचता नहीं, परन्तु गरीवोंकी दशाका ध्यान उन्हें क्यों होने लगा? देशमें न मालूम कितने असहाय और गरीव नर-नारी भूखकी ज्वालासे तड़प-तडपकर मर जाते है उनकी दशापर कौन दृष्टिपात करता है? पर जिसके कोई नहीं होता, उसके भगवान् होते हैं, वह विश्वम्भर किसी तरह गरीवकी

टूटी झोंपड़ीमें भी उसका पेट भरनेके लिये कुछ दाने जरूर पहुँचा देते हैं !

ब्राह्मणीके बालक मोहनकी उम्र छः वर्षकी हो गयी। ब्राह्मण-सन्तान है, कुछ पढ़ाना ही चाहिये, परन्तु किस तरह पढ़ाया जाय ? गाँवके अधिकांश लोगोंकी दृष्टिमें तो ब्राह्मणी गरीब होनेके कारण घृणास्पद थी ! ब्राह्मणीने समीपके एक दूसरे गाँवमें मोहनको पढ़ानेका प्रबन्ध किया। एक दिन वह उसको साथ ले दूसरे गाँवके गुरुजीके पास जाकर रोने लगी, गुरुजीको दया आ गयी, उन्होंने बालकको पढ़ाना स्वीकार किया। मोहन पढ़नेके लिये जाने लगा। गाँव दो कोस था, परन्तु दरिद्रा ब्राह्मणीके बालकके लिये सवारी कहाँसे आती ? मोहन पैदल ही आया-जाया करता। यद्यपि उस समय गुरुके घरोंमें बालकोंके रहनेकी प्रथा थी परन्तु मोहन बहुत छोटा होनेके कारण न तो वह गुरुगृहमें रहना ही चाहता और न माताको ही रातके समय अपने इकलौते बच्चेको आँचलमें छिपाकर सोये बिना चैन पड़ती ! रास्तेमें थोड़ी-सी दूर सुनसान जङ्गल पड़ता था। मोहनको उसीमेंसे होकर जाना पड़ता। सुबह सूर्योदयके समय ही वह जाता और सन्ध्याको लौटते-लौटते अँधेरा छा जाता। इससे मोहनको जङ्गलमें बड़ा डर लगता !

एक दिन गुरुके घर कोई उत्सव था, इससे मोहनको वहाँसे लौटनेमें कुछ देर हो गयी। कृष्णपक्षके कारण जंगलमें अन्धकार

घना हो गया था, मोहन रास्तेमें बहुत डरा, जंगली पशुओं और सियारोंकी आवाज सुनकर वह थरथर कॉपने लगा। ब्राह्मणी भी देर होनेके कारण उसको ढूँढ़ने चली गयी थी, डरते कॉपते हुए अपने लालको गोदी लेकर घर ले आयी। मोहनने कुछ शान्त होने-पर मातासे कहा, 'माँ ! मैं रोज जगल होकर आता-जाता हूँ, मुझे वहॉ बहुत डर लगता है, आज तू नहीं पहुँचती तो न मालूम मेरी क्या दशा होती। दूसरे लड़कोंके साथ तो उनके नौकर जाते हैं, जो उन्हें सॅभालते हैं, क्या मेरे लिये एक नौकर नहीं रक्खोगी ?' बालककी सरल वाणी सुनकर अपनी दरिद्रताका ध्यान आते ही ब्राह्मणीकी ऑखे डबडबा आयीं। ब्राह्मणीने बहुत धीरज रक्खा, परन्तु शेषतक रख नहीं सकी, वह रोकर कहने लगी, 'बेटा ! अपने दुःखकी दशा तुझको कैसे सुनाऊॅ, हम लोग बहुत ही गरीब हैं, तेरे लिये नौकर रखनेको मेरे पास पैसा कहाँ है ?' मॉकी ऑँखोंमें ऑसू देखकर मोहन भी रो पड़ा, उसने कहा, 'माँ, तू रोती क्यों है ? तुझे रोते देखकर मुझे भी रोना आता है। मॉ, क्या हमारे और कोई नहीं है ?' मोहनके सरल मर्मभेदी प्रश्नसे ब्राह्मणीका हृदय व्यथासे भर गया, पृथिवी मानो पैरोंके नीचेसे खिसकने लगी, धीरज छूटने लगा, परन्तु उसे तुरन्त यह खयाल आया कि 'ईश्वर तो अनाथनाथ हैं, क्या वह हमारे नहीं हैं ?' यह स्मृति होते ही ब्राह्मणीके हृदयमें बल आ गया, ऑसू

अकस्मात् सूख गये, वह कहने लगी, 'बेटा ! है क्यों नहीं, गोपाल है !' बच्चेने पूछा, 'माँ, गोपाल मेरे क्या लगते हैं !' स्नेहमयी ब्राह्मणीके मुँहसे निकल गया, 'बेटा ! गोपालभाई तेरा बड़ा भाई है।' बालकने कहा, 'माँ ! वह कहाँ रहते हैं ? मैंने तो उन्हें कभी नहीं देखा !' ब्राह्मणीका हृदय भगवत्-प्रेमसे भर गया था। जब मनुष्य सब ओरसे सर्वथा निराश होकर भगवत्की शरणागतिपर विश्वासकर उसीकी ओर ताकता है, तब उसे तुरन्त ही उधरसे आश्वासन और आश्रय मिल जाता है, उस अव्यक्त आश्रयको प्राप्त करते ही उसके हृदयमें बल, बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास स्वयमेव होने लगता है। भगवत्-प्रेमसे हृदय भर जाता है। ब्राह्मणी मानो निर्भ्रान्त चित्तसे कहने लगी–

'बेटा ! मेरा वह गोपाल सभी जगह है, जल-स्थल, अनल-अनिल, आकाश-पाताल, फल-फूल, समुद्र-सरिता सभीमें वह रहता है। जगत्में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो। परन्तु वह सहजमें दीखता नहीं है, जब उसे देखनेके लिये कोई बहुत ही व्याकुल होता है, तभी वह दीखता है। एक समय वृन्दावनमें गोपबालाओंके व्याकुल होनेपर उन्हें वह दीख पड़ा था, एक बार पाँच वर्षके बालक ध्रुवको दिखायी दिया था। जो एक बार उसे देख लेता है, वह तो उसकी सुन्दरता और स्वभावपर सदाके लिये मोहित हो जाता है !'

मोहन—माँ, मेरा गोपालभाई कभी अपने घर नहीं आता ?

ब्राह्मणी—आता क्यों नहीं ? वह तो सदा यहीं रहता है ।

मोहन—क्या तुमने उसे कभी देखा है ?

ब्राह्मणी—ना ! मैंने उसे नहीं देखा, मैं उसके लिये कभी व्याकुल नहीं हुई । परन्तु मैं जानती हूँ कि व्याकुल होनेपर वह अवश्य दर्शन देता है !

मोहन—तो तू व्याकुल क्यों नहीं होती ? ऐसे सुन्दर रूप और सुन्दर स्वभाववालेको देखे विना तुझसे कैसे रहा जा सकता है माँ ? मैं तो उसे देखे विना नहीं रहूँगा । मुझे बता, मैं उसके लिये कैसे व्याकुल होऊँ ?

ब्राह्मणी—बेटा ! जैसे भूख लगनेपर तू भोजनके लिये व्याकुल होता है, जैसे प्यास लगनेपर जलकी पुकार मचाने लगता है, जैसे आज जंगलमें तू मुझे पानेके लिये घबरा रहा था । ऐसे ही व्याकुल होकर पुकारनेसे वह अवश्य आता है । उस दिन मैंने तुझको एक कहानी सुनायी थी न, क्या तू उसे भूल गया ? पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीको जब दुष्ट दुःशासन सभामें नंगी करने लगा, तब उसने व्याकुल होकर पुकारा था, उसकी पुकार सुनते ही मेरा गोपाल वहाँ आ गया था ।

मोहन—क्या वही मेरा गोपालभाई है ?

ब्राह्मणी–हाँ बेटा, वही है। पुकारते ही वह आता है और सारे सङ्कटोंको हर लेता है।

मोहन–तो माँ, मैं क्या करूँ? कैसे पुकारूँ?

ब्राह्मणीने अटल विश्वासके साथ कहा, 'सुन! तू जिस जंगलसे होकर जाता है, उसी जंगलमें तेरा गोपालभाई रहता है। उसे हृदयसे पुकारना, तेरी व्याकुल पुकार सुनते ही वह आकर तेरे साथ हो जायगा!'

सरल विश्वासी बालकने दूसरे दिन वनमें प्रवेश करते ही इधर-उधर ताककर पुकारा 'भाई! गोपाल भाई!! तुम कहाँ हो आओ, मुझे डर लगता है?' बालकको सुनायी दिया, मानो कोई कह रहा है, 'हाँ, यहीं हूँ, आया!' मीठी आवाज सुनते ही बालकको ढाढ़स हो गया, उसका भय भाग गया, कुछ ही दूर चलनेके बाद उसने देखा कि उसीकी-सी उम्रका एक छोटा नयन-मनहारी सुकुमार श्यामसुन्दर ग्वालबालक वनके वृक्षसमूहोंमेंसे निकलकर उसके साथ खेलने लगा, प्यारसे बातचीत करने लगा और हाथ पकड़कर साथ-साथ चलने लगा। गोपालके आते ही मोहनका सारा दुःख दूर हो गया। मोहनने घर आकर मातासे सारा हाल सुना दिया। ब्राह्मणी भगवान्‌की दया समझकर रो पड़ी! उसने सोचा 'जिस दयामयने बालक ध्रुवकी पुकार सुनकर उसे दर्शन दिया था, वही मेरे बच्चेकी पुकारपर आ गया हो तो क्या आश्चर्य है।'

घर जाते समय जङ्गलमें सदाकी भाँति ज्यों ही उसे गोपालभाई मिले, त्यों ही मोहनने कहा, 'भाई ! आज मेरे गुरुजीके पिताका श्राद्ध है, उन्होंने एक लोटा दूध माँगा है, माँने कहा है कि गोपालभाईसे कहना, वह तुझे ला देगा । सो भाई, मुझे अभी दूध लाकर दो !' गोपाल बड़े प्यारसे बोले, 'भाई ! मुझे पहलेसे ही इस बातका पता है, देखो, मैं दूधका लोटा भरकर साथ ही लाया हूँ, तुम इसे ले जाओ ।' मोहनने गोपालभाईसे दूधका लोटा ले लिया । आज उसके आनन्दका पार नहीं है । सफलतापर किसे आनन्द नहीं होता । राज्यके पिपासुको जो आनन्द राज्यकी प्राप्ति होनेपर होता है, वही आनन्द एक बच्चेको मनचाहा मामूली खिलौना मिलनेसे होता है । वास्तवमें खिलौने दोनों ही हैं । यथार्थ आनन्द न राज्यमें है और न मामूली खिलौनेमें है, वह तो अपने अन्दर ही है, जो मनोरथ पूर्ण होनेपर मनमें एक बार बिजलीकी तरह चमक उठता है और दूसरा मनोरथ उत्पन्न न होनेतक झलमलाता रहता है । पर यहाँ तो गोपालके दिये हुए दूधकी प्राप्तिमें कुछ विलक्षण ही आनन्द था । इस आनन्दका स्वरूप वही भाग्यवान् जानता है जिसको भगवत्कृपासे इसकी प्राप्ति होती है ! हम लोगोंके लिये तो यह कल्पनासे बाहरकी बात है ।

मोहन हँसता हुआ दूधका छोटा-सा लोटा लेकर गुरुजीके समीप जा पहुँचा । लड़कोंकी लाई हुई सामग्रियोंको गुरुजी"

—भोजन या तो प्रेम हो, वहाँ किया जाता है, या विपद् पड़नेपर किसीके भी यहाँ करना पड़ता है । यहाँ प्रेम तो तुममें नहीं है और विपत्ति मुझपर नहीं पड़ी है, इससे मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं करूँगा । —अस्तु !

जब मोहनने कई बार गुरुसे कहा, तब गुरुजीने अवज्ञाके साथ झुँझलाकर एक नौकरसे कहा, 'जरा-सी चीजपर यह छोकरा कितना चिल्ला रहा है, मानो इसने हमें निहाल कर दिया । दूध किसी बर्तनमें लेकर हटाओ इस आफतको जल्दी यहाँसे।' अपमानसे बालकके मुखपर विषादकी रेखा खिंच गयी ! गरीब क्या करता ? रोने लगा !

भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है, वह कब किस सूत्रसे क्या करना चाहते हैं, किसीको कुछ भी पता नहीं लगता । नौकरने दूधको कटोरेमें उँड़ेला, कटोरा भर गया पर दूध पूरा नहीं हुआ, उसने एक गिलास उठाया, वह भी भर गया पर दूध ज्यों-का-त्यों रहा, आखिर एक बाल्टीमें डालना आरम्भ किया, वह भी भर गयी ! तब नौकरने घबराकर गुरु महाराजके पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया, श्राद्धके लिये बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हो रहे थे, इस आश्चर्य-घटनाको सुनकर सभी वहाँ दौड़े आये । देखते हैं, एक छोटे-से लोटेमें दूध भरा है । पास ही एक बाल्टी और कई बर्तनोंमें दूध छलक रहा है । गुरुजीने नौकरसे कहा, 'जरा मेरे

ब्राह्मण-मण्डली भोजन करनेके लिये बैठी, आज श्राद्धके भोजनमें मोहनके लाये हुए दूधकी खीर बनी थी । खाते-खाते ब्राह्मण अघाते नहीं थे । आजकी खीरका स्वाद कुछ अनोखा ही था । क्यों न हो, जिस प्रसादका एक कण पानेके लिये ब्रह्मादि देव सदा तरसते हैं, वही आज श्राद्ध-भोज्यान्नके रूपमें सबको प्राप्त था । ब्राह्मणोंका मन तो नहीं भरा परन्तु उस महाप्रसादकी प्राप्तिसे वे सुर-मुनि-दुर्लभ पदको पाकर सदाके लिये तृप्त हो गये। ब्राह्मणके पितरोंके तरनेमें तो आश्चर्य ही कौन-सा था ?

ब्राह्मण-मण्डली बालकको स्नेहार्द्र-हृदयसे आशीर्वाद देकर लौट गयी । अन्तमें गुरुदेवने अपने सब छात्रोंको साथ लेकर भोजन किया । मोहनको भी आज वहीं भोजन करना पड़ा । सन्ध्या हो गयी और सब लड़के अपने-अपने घर चले गये । गुरुदेवने गोपालभाईके प्यारे मोहनको रख लिया था । सबके जानेके बाद उससे बोले, 'बेटा ! मैं तेरे साथ चलता हूँ, तेरे गोपालभाईके दर्शन मुझे भी जरूर कराने पड़ेंगे ।' मोहनने कहा, 'चलिये, अभी मेरे साथ वनमें । मेरा गोपालभाई तो पुकारते ही आता है ।' गुरुने बालकको गोदमें उठा लिया और दोनों वनमें पहुँचे। बालकने वहाँ जाते ही पुकारा, 'गोपालभाई ! आओ, आज इतनी देर क्यों करते हो ?' बदलेमें उसे सुनायी दिया 'आज तो तुम अकेले नहीं हो, फिर मुझे क्यों बुलाते हो ?' मोहनने कहा,

थोड़ी देरमें गुरुदेवपर भी कृपा हुई। करुणा-वरुणालय, सौन्दर्यकी राशि, प्रेमके भण्डार, उदार-चूड़ामणि, अनूप-रूप-शिरोमणिके प्रत्यक्ष दर्शनकर गुरु महाराज सदाके लिये कृतकृत्य हो गये !

× × × ×

मोहनको साथ लेकर गुरुदेव ब्राह्मणीके पास आये। देखते हैं तो वहाँ 'गोपालभाई' माताकी गोदमें बैठे मानो जननीकी स्नेह-सुधाका पान कर रहे हैं। माताको बाह्यज्ञान नहीं है। उसके आनन्दाश्रुओंकी अजस्र धारासे गोपालभाईका समस्त शरीर अभिषिक्त हो गया है ! गुरु और शिष्य इस दृश्यको देखकर आनन्दसागरमें डूब गये !*

बोलो भक्तिमती ब्राह्मणी, पवित्र भक्त मोहन और उसके प्यारे 'गोपालभाई' की जय !

---

* स्वामी श्रीविवेकानन्दजीने लड़कपनमें अपनी धायसे एक कथा सुनी थी, स्वामीजीके शिष्य एम० सी० फेड्डी महोदय लिखते हैं कि इस कथाका उनके जीवन-पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उसी कथाके आधारपर यह गाथा लिखी गयी है।

लेखक

भक्तवर धन्नाजीका प्रेमबीज बहुत छोटी अवस्थामें ही सन्त-सुधा-समागमसे जीवनीशक्ति प्राप्त कर चुका था। धन्नाजीके पिता खेतीका काम करते थे, पढ़े-लिखे न होनेपर भी उनका हृदय सरल और श्रद्धासम्पन्न था। वे सदा अपनी शक्तिके अनुसार सन्त भक्तों महात्माओंकी सेवा किया करते थे। उस समय न तो आज-कलकी भाँति अतिरिक्त बुद्धिवादके रोगका प्रचार था और न भण्ड तपस्वियोंका ही भारत-भूमिपर विशेष भार था। इससे सरलतापूर्वक साधुसेवा होनेमें कोई विशेष बाधा नहीं थी। धन्नाजीके पिताके यहाँ भी समय-समयपर अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा आया करते थे।

धन्नाजीकी उम्र उस समय पाँच सालकी थी, एक दिन एक भगवद्भक्त साधु-ब्राह्मण उनके घर पधारे। ब्राह्मणने अपने हाथ कूएँसे जल निकालकर स्नान किया, तदनन्तर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यक्रिया करनेके बाद झोलीमेंसे भगवान् श्रीशालिग्रामजीकी मूर्ति निकालकर उसे स्नान कराया और तुलसी, चन्दन, धूप दीपादिसे उसकी पूजाकर उसके प्रसाद लगाकर स्वयं भोजन किया। धन्नाजी उस भक्तिनिष्ठ ब्राह्मणकी सब क्रियाएँ कौतुक देख रहे थे। बालकका सरल स्वभाव था, कुछ देर साधु-संग हुआ, धन्नाके मनमें भी इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि मेरे पास भगवान्की मूर्ति हो तो मैं भी इसी तरह उसकी पूजा करूँ। बालक जैसी बात देखते हैं, वैसा ही वे करना भी चाहते हैं। धन्नाने

सरल हृदयकी स्वाभाविक ही मन प्रसन्न करनेवाली मीठी वाणीसे ब्राह्मणदेवके पास जाकर कहा—'पण्डितजी ! तुम्हारे पास जैसी भगवान्‌की मूर्ति है वैसी एक मूर्ति मुझे दो तो मैं भी तुम्हारी ही तरह पूजा करूँ' ब्राह्मणने पहले तो कुछ ध्यान नहीं दिया परन्तु बालक धन्नाने जब बारम्बार रोकर गिडगिड़ाकर उसे बेचैन कर दिया तब बला टालनेके लिये एक काले पत्थरको उठाकर उसे दे दिया और कहा कि 'बेटा ! यह तुम्हारे भगवान् हैं, तुम इन्हींकी पूजा किया करो।' धन्नाको मानो यही गुरु-दीक्षा मिल गयी। इसी अल्पकालके सत्संग और सरलभक्तिके प्रतापसे बालक धन्नाजी प्रभुको अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न करनेमें समर्थ हुए। सत्संगका माहात्म्य भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं उद्धवजीसे कहते हैं—

> न रोधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म एव च।
> न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
>
> व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
> यथाऽवरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥
>
> सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
> गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
>
> विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
> रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ!॥

और यम आदि अन्यान्य सब साधनोंसे नहीं होता। भिन्न-भिन्न युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्योंमें राजसी-तामसी प्रकृतिके वैश्य-शूद्र-स्त्री एवं अन्त्यज आदि जातियोंके अनेक मनुष्य, केवल सत्सङ्गके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गज, जटायु, तुलाधर वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और यज्ञपत्नियाँ, एवं ऐसे ही अन्यान्य अनेक जन केवल सत्सङ्गके प्रभावसे अनायास ही मेरे दुर्लभपदको प्राप्त हुए हैं। देखो, गोपिका, यमलार्जुन, गौ, कालीयनाग, एवं व्रजके अन्यान्य मृग, पक्षी और जड़, तृण, तरु, लता, गुल्म आदि सब केवल सत्सङ्गके प्रभावसे अनायास ही मुझे पाकर कृतार्थ हुए हैं। उक्त अज्ञानी और जड़ोंमेंसे किसीने वेद नहीं पढ़े, ऋषि-मुनियोंकी उपासना नहीं की, न कोई व्रत रक्खा और न कोई तप किया। हे उद्धव! इसीसे कहते हैं कि योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करनेपर भी मैं दुर्लभ हूँ, केवल भक्ति और सत्सङ्ग ही ऐसा साधन है जिससे मैं सुलभ होता हूँ। इसलिये हे मित्र उद्धव! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुत—सब छोड़कर, सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय बनाओ। मेरी शरणमें आनेसे तुम भयसे छूट जाओगे। अस्तु!

इसी तरह करते । इसप्रकार जब कई दिन अन्न-जल बिना बीत गये, तब धन्नाजीका बल एकदम घट गया, शरीर सूख गया, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रही । शारीरिक क्लेशकी उन्हें इतनी परवा नहीं थी जितना उन्हें इस बातका दुःख था कि 'ठाकुरजी मेरी रोटी नहीं खाते ।' इसी मार्मिक दुःखके कारण उनकी आँखोंसे सर्वदा आँसुओंकी धारा बहने लगी ।

अब तो भगवान्‌का आसन हिला, सरल बालककी बहुत कठिन परीक्षा हो गयी, भक्तके दुःखसे द्रवित होकर भगवान् प्रकट हुए '*अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्*' सच्चिदानन्दघन जो योग-समाधि और ज्ञाननिष्ठासे भी दुर्लभ है वह परमब्रह्म नारायण धन्नाजीके प्रेमाकर्षणसे अपूर्व मनमोहनी मूर्ति धारणकर भक्तके सामने प्रकट हुए और उस '*प्रयतात्मन*' प्रेमी भक्तकी '*भक्त्युपहृतम्*' रोटी बड़े प्रेमसे भोग लगाने लगे । जब आधी रोटी खा चुके तब महाभाग धन्नाने उनका हाथ पकड़ लिया और कहने लगे कि 'ठाकुरजी ! इतने दिनोंतक तो आये नहीं, मुझे भूखों मारा, आज आये तब अकेले ही सारी रोटी लगे उड़ाने, तुम्हीं सब खा जाओगे तब क्या आज भी मैं भूखों मरूँगा, क्या मुझको जरा-सी भी नहीं दोगे ?।'

बालक-भक्तके सरल सुहावने वचनोंको सुनकर भगवान् मुस्कुराये और बची हुई रोटी उन्होंने धन्नाजीको दे दी । आज

इस धन्नाजीकी रोटीके अमृतसे बढ़कर स्वादका बखान शेष शारदा भी नहीं कर सकते। भक्तवत्सल करुणानिधि कौतुकी भगवान् प्रतिदिन इसी प्रकार प्रकट होकर अपनी जन-मन-हरण रूप-माधुरी-से धन्नाजीका मन मोहने लगे। मनुष्य जबतक यह अनोखा रूप नहीं देखता तभीतक उसका मन वशमें रह सकता है, जिसे एक बार उस रूप-छटाकी झाँकी करनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया, उसीका मन सदाके लिये हाथसे जाता रहा, फिर उसे एक क्षण-के लिये भी उस सुन्दरकी छविको छोड़कर संसारकी कोई चीज नहीं सुहाती—कोई बात नहीं भाती। धन्नाजीकी भी यही दशा हुई, यदि वह एक क्षणभरके लिये उस मन-मोहनको आँखोंके सामने या हृदय-मन्दिरमें न देख पाते तो उसी समय मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते, पलभरका भी भगवान्‌का वियोग उनके लिये असह्य हो उठता। इसीसे भगवान्‌को सदा-सर्वदा धन्नाजीके साथ या उनके हृदयधाममें रहना पड़ता। धन्नाने प्रेमरज्जुसे भगवान्‌को बाँध लिया, इसीसे वे भक्त-के परमधन भगवान् भी धन्नाको एक पलके लिये अलग नहीं छोड़ सकते थे। भगवान्‌का तो यह प्रण ही ठहरा।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो सबमें मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है

उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मुझसे वह कभी अदृश्य नहीं होता ।

धन्नाजी कुछ बड़े हो गये, इससे माताने उन्हे गौ दुहने-का काम सौंप दिया, कई गाये थीं, धन्नाजी दोनों समय गौ दुहा करते, एक दिन भगवान्‌ने प्रकट होकर उनसे कहा 'भाई ! तुम्हें अकेले इतनी गायें दुहनेमें बडा कष्ट होता होगा । तुम्हारी गायें मैं दुह दिया करूँगा ।'

सुर-मुनि-वन्दित सकल चराचर-सेव्य अखिल विश्व-स्वामी भगवान् अपने बालक-भक्तके साथ रहकर उसकी सेवा करने लगे । धन्य ! धन्नाके सुखका क्या ठिकाना है ? वह निरन्तर उस परम-सुखरूप परमात्माके साथ रहकर अप्रतिम, अचिन्त्य आनन्दका उपभोग कर रहे हैं !

कुछ दिन बाद धन्नाजीके गुरु वही ब्राह्मण-देवता धन्नाके घर फिर आये और उससे पूछने लगे कि 'क्यों भगवान्‌की पूजा करते हो या नहीं ?' धन्नाने हँसकर कहा, 'महाराज ! अच्छा भगवान् दे गये, कई दिनोंतक तो उसने मुझे न दर्शन दिया, न रोटी खाई, स्वय भी भूखा रहा और मुझे भी भूखों मारा । अन्त-में एक दिन प्रकट होकर सारी रोटी चट करने लगा, बड़ी कठिनता-से मैंने हाथ पकड़कर आधी रोटी अपने लिये रखवायी । परन्तु महाराज ! वह है बड़ा प्रेमी, सदा मेरे साथ रहता है । दोनों समय

मेरी गायें दुह देता है। मैं भी उसे छोड़ नहीं सकता, वह बड़ा ही प्यारा और सुन्दर है मेरे तो प्राण उसीमें बसते हैं।'

धन्नाजीकी बात सुनकर ब्राह्मणने आश्चर्यसे पूछा—'कहाँ है वह तुम्हारा भगवान् ?' धन्नाने कहा—'क्या तुम्हें दीखता नहीं ? यह देखो मेरे पास ही तो खड़ा है।' ब्राह्मणको दर्शन नहीं हुए, उसने कहा,—'कहाँ धन्ना ? मुझे तो नहीं दीखता।' धन्ना भगवान्‌से कहने लगे—'नाथ ! यही ब्राह्मण तो मुझे तुम्हारी मूर्ति दे गया था, अब इसे दर्शन क्यों नहीं देते ?' भगवान् बोले—'धन्ना ! तुमने जन्म-जन्मान्तरके महान् पुण्य और शुद्ध-भक्तिसे मेरे दर्शन प्राप्त किये हैं, इस ब्राह्मणमें इतना तपोबल नहीं है। परन्तु इसने तुम्हारा गुरु बनकर बहुत बड़ा पुण्य सञ्चय कर लिया है, इस पुण्यसे इसे मेरे दर्शन हो सकेंगे। तुम उसकी गोदमें जा बैठो तुम्हारे पवित्र शरीरके स्पर्शसे इसे दिव्य नेत्र प्राप्त होंगे, जिससे यह मुझे देख सकेगा।' धन्नाने ऐसा ही किया। भक्त ब्राह्मण भक्तवत्सल भगवान्‌की अपूर्व छटा देखकर कृतकृत्य हो गया। तदनन्तर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

धन्नाजीकी बाललीला समाप्त हुई, इसलिये भगवान्‌ने भी उनसे अब बालकोचित-सम्बन्ध नहीं रक्खा। भगवान्‌ने धन्नाजीको परम्परा-रक्षाके लिये नियमानुसार गुरुमन्त्र ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। धन्नाजी काशी गये और उन्होंने भक्तश्रेष्ठ आचार्य श्रीश्रीरामा-

भरा कर दिया। धन्नाजीके खेतकी बहुत प्रशंसा होने लगी। यह सब सुनकर धन्नाजीने सोचा कि मैंने तो खेतमें एक भी बीज नहीं डाला था, फिर यह सुन्दर खेती कैसे हो गयी? खेत सूखा पड़ा होगा इससे लोग सम्भवतः दिल्लगीसे ऐसा कहते होंगे। परन्तु जब उन्होंने स्वयं खेत जाकर देखा और जब उसे लहलहाता और उमड़ता पाया, तब तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। प्रभुकी माया समझकर मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया। धन्नाजीके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ चला! नाभाजी महाराज लिखते हैं—

घर आये हरिदास तिन्हैं गोधूम खवाये।
तात मात डर थोथ खेत लंगूर बवाये॥
आसपास कृषिकार खेतकी करत बड़ाई।
भक्त भजेकी रीति प्रगट परतीतिज्ञु पाई॥
अन्नरज मानत जगतमें कहुँ निपज्यो कहु वै बयो।
धन्य धनाके भजनको बिनहि बीज अंकुर भयो॥

चन्द्रहास

द्वापर युगका इतिहास है। केरल-देशमें मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे, उनके एकमात्र पुत्रका नाम था चन्द्रहास। चन्द्रहासकी उम्र जब बहुत ही छोटी थी, तभी शत्रुओंने केरलपतिको युद्धमें मार डाला। चन्द्रहास-जननी पतिव्रता रानी सती हो गयी। राज्यपर दूसरोंने अधिकार कर लिया! इस विपत्तिकालमें चन्द्र-हासकी धाय उसे लेकर चुपकेसे नगरसे निकल गयी और कुन्तलपुर जाकर रहने लगी। स्वामिभक्ता धायने तीन वर्षकी उम्रतक मिहनत-मजदूरी करके चन्द्रहासका पुत्रवत् पालन किया, तदनन्तर वह भी कालका ग्रास बन गयी।
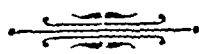
चन्द्रहास अनाथ और निराश्रय हो गया, परन्तु अनाथ-नाथ भगवान् निराधारका आधार है। वह विश्वम्भर सबका पेट भरता है। भगवत्-कृपावश चन्द्रहासका पालन नगरकी स्त्रियोंद्वारा होने लगा। उसके मनोहर मुखमण्डलने सबके मन हर लिये। जो स्त्री उसे देखती, वही उसे पुत्रवत् प्यार करती, खिलाती-

पिलाती और पहननेको वस्त्र देती। एक दिन देवर्षि नारद घूमते-घामते उधर आ निकले। बालकको योग्य अधिकारी जान उसे श्रीशालग्रामजीकी एक मूर्ति और 'रामनाम' मन्त्र दे गये। शुद्ध-हृदय शिशु बड़े प्रेमसे मूर्तिकी पूजा और हरिनाम-कीर्तन करने लगा। शिशु-अवस्था, सुन्दर वदन, सुहावनी सरस वाणी और श्रीहरिनाम-गान सभी साज मनहरण करनेवाले थे। इससे चन्द्रहासको जो देखता, वही मुग्ध हो जाता! वह इसी अवस्थामें परम धार्मिक और अनन्य हरिभक्त हो गया। जब वह अपने शरीरकी सुधि भूलकर मधुर तानसे हरिनाम गान करता, तब उसके चारों ओर एक दिव्य चाँदनी छिटक जाती। उस समय चन्द्रहास देखता मानो एक जन-मन-मोहन श्यामवदन बालक मुरली हाथमें लिये उसीके साथ नाच और गा रहा है। उसके प्राणमोहन सुरोंको सुनकर चन्द्रहासकी तन्मयता और भी बढ़ जाती।

× × × ×

कुन्तलपुरके राजा बड़े पुण्यात्मा थे, परन्तु उनके कोई पुत्र न था। केवल एक रूप-गुणवती कन्या थी, जिसका नाम था चम्पकमालिनी। राजगुरु महर्षि गालवके उपदेशानुसार राजा अपना सारा समय केवल भजन-स्मरण-सत्संगमें ही लगाते थे। राज्यका संपूर्ण कार्यभार धृष्टबुद्धि नामक मन्त्रीपर था। कुन्तलपुरका राज्य एक तरहसे वह मन्त्री ही करता था। उसके अलग भी

बड़ी जमींदारी थी, धन सम्पत्तिका पार नहीं था। धृष्टबुद्धिके मदन और अमल नामक दो सुयोग्य पुत्र और विषया नामकी एक सुन्दरी कन्या थी। मदन और अमल राजकार्यमे पिताकी यथेष्ट सहायता करते। इनमें मदन श्रीकृष्णभक्त और उदारचरित था, जिससे मन्त्रीके महलोंमें जहाँ विलासके रागरगका प्रवाह वहता था वहाँ कभी-कभी सन्त-समागम, अतिथि-सत्कार और भगवन्नाम-कीर्तन भी हुआ करता था। यद्यपि धृष्टबुद्धिको इन कामोंसे कोई प्रेम नहीं था, वह रात-दिन राजकार्य और धनसञ्चयमें ही लगा रहता था, परन्तु सुयोग्य पुत्र मदनको स्नेहवश इन कामोंसे रोकता भी नहीं था।

× × × ×

सन्ध्याका समय है। चन्द्रहास स्वाभाविक ही नाम-कीर्तन करता हुआ नगरकी सड़कोंपर घूम रहा है। मधुर ध्वनि सुनकर और भी बहुत-से बालक उसके साथ हो गये हैं। सभी आनन्दसे नाच-नाचकर मधुर कीर्तन करते हुए नगर-वासी नर-नारियोंका चित्त अपनी ओर खींच रहे हैं। घूमते-घूमते यह प्रेममत्त बाल-कीर्तन-दल धृष्टबुद्धिके प्रासादके निकट जा पहुँचा। मन्त्रीपुत्र मदन-के यहाँ ऋषिमण्डली एकत्र हो रही है, हरिचर्चा चल रही है। मीठी हरिध्वनि सुनकर ऋषियोंकी आज्ञासे मदनने चन्द्रहासको अन्दर बुला लिया। चन्द्रहासके साथ मिलकर बालक नाचने-गाने

उसके कानमें कुछ कहकर चन्द्रहासका हाथ उसे पकड़ा दिया। घातक चन्द्रहासको ले चला, तब उसने फिर कहा, 'देखो, आज ही काम बन जाय, कोई निशान जरूर लाना, पूरा इनाम मिलेगा !' घातक बालकको लेकर अदृश्य हो गया।

भीषण सुनसान जगल है। चारों ओर अँधेरा छा रहा है। घातकने म्यानसे तलवार निकाली। चन्द्रहास समझ गया कि यह मुझे मारना चाहता है। उसने निर्भयतासे कहा—'भाई ! तनिक ठहर जाओ, मुझे अपने भगवान्‌की पूजा कर लेने दो, फिर खुशीसे मारना।' घातकका हृदय कुछ पिघला, उसने अनुमति दे दी। चन्द्रहासने मुँहमेंसे शालग्रामजीकी मूर्ति निकालकर प्रेमसे आँसू बहाते हुए वनके फूल-पत्तोंसे भगवान्‌की पूजा की। तदनन्तर गद्गद कण्ठसे उसने गाया—

गहो आज हाथ नाथ शरण मैं तिहारी !
तात-मात बन्धु-भ्रात सुहृद सौख्यकारी !
एक तुम्ही सरवस मम प्रणत-दु:खहारी॥
दास जानि इच्छाधीन, इच्छित शुभकारी।
मृत्युमाँहि मोहन ! मोहि, मिलौ मोह टारी॥

वनस्थलीमें करुणारस छा गया। भगवान्‌ने यन्त्र घुमाया, घातककी आँखोंसे आँसूकी दो बूँदें टपक पड़ीं। उसका हृदय

पलट गया। उसने मन-ही-मन सोचा ऐसे हरिभक्त निर्दोष बालककी हत्यासे न मालूम मेरी क्या गति होगी? वध करनेका विचार त्याग दिया, परन्तु धृष्टबुद्धिके लिये कोई निशान चाहिये, वह इस चिन्तामें पड़ गया। चन्द्रहासके एक पैरमें छः अँगुलियाँ थीं। अकस्मात् घातककी दृष्टि उधर गयी। उसका चेहरा चमक उठा, उसने तुरन्त ही तलवारसे छठी अँगुली काट ली। अशुभ समयके नष्ट हो गया। चन्द्रहासको वहीं छोड़कर घातक लौट गया। धृष्टबुद्धिको अँगुली दिखा दी, जिससे उसके आनन्दका पार नहीं रहा। उसने समझा, आज मेरे बुद्धिकौशलसे मुनियोंकी अमोघ वाणी भी व्यर्थ हो गयी!

घोर अरण्यमें सुकुमार बालक अकेला पड़ा है, पैरमें पीड़ा रही है, परन्तु मुखसे वही कृष्णनामकी धुन लग रही है। इत उसने देखा, एक स्निग्ध नील ज्योति उसकी ओर बढ़ी आ रही है। उसी समय अकस्मात् जादूकी तरह उसकी वेदना नष्ट हो गयी। भूख-प्यास शान्त हो गयी, मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा, मन परम आनन्दसे भर गया। वनकी हरिणियाँ उसका पैर चाटने लगीं, पक्षियोंने छाया की, वृक्ष फल देने पृथ्वी कोमल हो गयी। बालक मुग्ध-चित्त और मधुर क...

नामध्वनि करने लगा। भीषण अरण्य हरिनाम-नादसे निनादित हो उठा, पशु-पक्षी परम आत्मीयकी तरह उसके साथ खेलने लगे।

× × × ×

कुन्तलपुरके अधीन चन्दनपुर नामक एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँके राजाका नाम था कुलिन्दक। राज्य छोटा होनेपर भी धर्म और धनधान्यसे पूर्ण था, अभाव था तो एक यही कि राजा पुत्रहीन था। प्रभुकी मायासे राजा कुलिन्दक किसी कार्यवश उसी वनसे जा रहा था, जिसमें चन्द्रहासको घातक छोड गया था। मधुर कीर्तनध्वनि सुनकर राजा उसके पास गया और बालककी मोहिनी मूर्ति देखते ही वह मुग्ध हो गया! राजाने लपककर बालकको गोदमें उठा लिया और अङ्गकी धूल झाड़कर उससे माता-पिताके नाम-धाम पूछने लगा। चन्द्रहासने कहा—

'मम मातापिता कृष्णस्तेनाहं परिपालित.।'

—मातपिता श्रीकृष्ण हमारे उनसे ही मैं पालित हूँ।

राजाने सोचा हरिने कृपाकर मेरे लिये ही इस वैष्णव देव-शिशुको यहाँ भेजा है। उसने चन्द्रहासको छातीसे लगाकर घोडेपर चढ़ा लिया और घर लौट गया। रानीकी गोद भर गयी। राजाने दत्तक-ग्रहणकी घोषणा कर दी, नगर-नगरमें आनन्द छा गया!

चन्द्रहासने पहले तो कुछ पढ़ना नहीं चाहा, गुरु जब पढ़ाते तभी वह कहता कि मेरी जीभ हरिनामके सिवा और कुछ उच्चारण

ही नहीं कर सकती। परन्तु यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके अनन्तर थोड़े ही कालमें वह चारों वेद और सभी विद्याओंमें निपुण हो गया! अपने सद्गुणोंसे वह शीघ्र ही सारे राजपरिवार और प्रजाका जीवनाधार बन गया! राज्यमें धार्मिकता छा गयी। हरि-गुण-गानसे छोटी-सी रियासत पूर्ण हो गयी। घर-घर हरिचर्चा होने लगी, सभी लोग एकादशीका व्रत और भगवान्की उपासना करने लगे। चन्द्रहासने प्रत्येक पाठशालामें हरि-गुण-गान अनिवार्य कर दिया। उसका सिद्धान्त था–

यस्मिञ्छास्त्रे पुराणे च हरिनाम न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

'जिस शास्त्र-पुराणमें हरिनाम न हो, वह ब्रह्मारचित होने भी श्रवण करने योग्य नहीं है।'

× × × ×

चन्दनपुर रियासतकी ओरसे कुन्तलपुरको वार्षिक दश हजार स्वर्णमुद्राएँ कर-स्वरूप दी जाती थीं। चन्द्रहासने उन स्वर्णमुद्राओंके साथ ही और भी बहुत-सा धन जो शत्रुराज्योंपर विजय करके उसने प्राप्त किया था–कुन्तलपुर भेज दिया!

धृष्टबुद्धिने सुना, चन्दनपुर-राज्य धन-ऐश्वर्यसे पूर्ण हो गया है, वीर युवराजने बड़े-बड़े राज्योंपर विजय पायी है, वहाँकी प्रजा सब प्रकारसे सुखी है, सारी रियासतमें हरि-ध्वनि

थकावट थी, घोड़ेको एक ओर बाँधकर वह वृक्षकी छायामें लेट गया। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुके स्पर्शसे उसे नींद आ गयी।

उसी समय राजकुमारी चम्पकमालिनी और मन्त्री-कन्या विषया सखियों सहित बागमें टहलने आयी थीं। नाना प्रकारसे आमोद-प्रमोद कर राजकुमारी और अन्यान्य सखियाँ तो चली गयीं। भगवत्-प्रेरणासे विषया वहीं रह गयी। अनङ्ग-मद-मोचन राजकुमार चन्द्रहासको देखते ही उसका मन मोहित हो गया, मन-ही-मन उसने राजकुमारको पतिरूपमें वरण कर लिया। उसने देखा, कुमारके हाथमें एक पत्र है। विषयाने धीरेसे पत्र खींच लिया। भाई मदनके नाम पिताजीके हस्ताक्षरयुक्त पत्र देखकर उसने कुतूहलवश खोल लिया, परन्तु पत्र पढ़ते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा, शरीर थर्रा गया, मुखपर विषाद छा गया! पत्रमें लिखा था—

'स्वस्ति श्री प्रिय पुत्र मदन! देखत यह पाती।
विष दे देना, जिससे हो मम शीतल छाती॥
कुल विद्या सौन्दर्य शूरता कुछ न देखना।
मदन शत्रु इस राजकुँअरको हृदय लेखना॥'

'विषयाने विचार किया, ऐसे सुन्दर सलोने सिंहशावक राजकुमारको पिताजी विष क्यों दिलवाने लगे? हो-न-हो, मेरे योग्य वाञ्छित वर देखकर आनन्द-विह्वलतामें उनसे लिखनेमें

भूल हो गयी है। वास्तवमें 'विष दे देना' की जगह 'विषया देना' लिखना चाहिये था। पिताजी छाती शीतल होनेकी बात लिखते हैं, ऐसे नरश्रेष्ठको विष देकर भला किसकी छाती शीतल होगी ? बड़े भाग्यसे ऐसे दामाद मिलते हैं, इसीसे पिताजीने कुल, विद्या आदि कुछ भी न देखकर 'मदन शत्रु' यानी सुन्दरतामें कामदेवको भी परास्त करनेवाले इस नयनाभिराम राजपुत्रके हाथ तुरन्त मुझे दे देना चाहा है। परमेश्वरने बड़ा अच्छा किया, जो यह पत्र पहले मेरे हाथ लग गया, कहीं भाई साहेब भ्रमसे विष दे डालते तो महान् अनर्थ हो जाता!' विषयाने तर्कसे ऐसा निश्चयकर तुरन्त 'विष दे देना' के बीचके 'दे' को मिटाकर उसकी जगह 'या' अक्षर 'विष' शब्दसे मिलाकर लिख दिया, जिससे 'विषया देना' स्पष्ट पढ़ा जाने लगा। 'मदन शत्रु' शब्द अलग-अलग थे, उन शब्दोंको भी जोड़ दिया। जिससे 'मदन शत्रु' की जगह 'मदनशत्रु' पढ़ा जाने लगा। तदनन्तर आमके गोंदसे पत्र ज्यों-का-त्यों बन्दकर राजकुमारके हाथमें रखकर वह दौड़कर कुछ दूर आगे जाती हुई सखियोंके दलमें जा मिली। राजकुमारी और सखियाँ उससे मीठी चुटकियाँ लेने लगीं!

× × × ×

थोड़ी ही देरमें चन्द्रहासकी आँखें खुलीं, सन्ध्या होने आयी थी। उसने तुरन्त ही जाकर मदनको पत्र दे दिया, पत्र पढ़कर मदनको बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसी दिन गोधूलि-लग्नमें

विषयाके साथ चन्द्रहासका विवाह बड़े समारोहके साथ हो गया ! मदनने याचकोंको मुक्तहस्तसे दान देकर सन्तुष्ट किया । कन्यादानके समय कुन्तलपुर-नरेश स्वयं पधारे थे । राजकुमारकी मनमोहिनी रूप-गुण-राशि देखकर राजाने विचार किया कि, 'न तो चम्पकमालिनीके लिये इससे अधिक योग्य कोई दूसरा वर ही मिल सकता है और न राज्यशासनके लिये ऐसा बल-वीर्य-बुद्धि और शील-सदाचार-सम्पन्न कोई उत्तराधिकारी ही !' राजाने उसी क्षण अपने मनमें धीर-वीर राजकुमार चन्द्रहासके हाथ राजपुत्रीसहित राज्य समर्पण करनेका निश्चय कर लिया !

तीन दिन बाद धृष्टबुद्धि लौटा । सर्वथा विपरीत दशा देखकर उसके दिलपर गहरी चोट लगी, परन्तु उसने अपने मनका कुभाव किसीपर प्रकट नहीं होने दिया । उसके द्वेष-हिंसा-पूर्ण मलिन अन्तःकरणने यही निश्चय किया कि 'कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रुका वध अवश्य करना होगा !' यही दुष्ट-हृदयकी पराकाष्ठा है !

नगरसे दूर वनमें पहाड़ीपर भवानीका मन्दिर था, धृष्टबुद्धिने वहाँ एक निर्दय घातकको यह समझाकर भेज दिया कि आज सन्ध्याके बाद जो कोई वहाँ जाय उसीका सिर उतार लेना । इधर चन्द्रहाससे कपटकी हँसी हँसते हुए उसने कहा, 'भवानी हमारी कुलदेवी हैं, किसी भी शुभकार्यके अनन्तर ही हमारे यहाँ भवानी

पूजनकी कुलरीति है, अतएव तुम आज ही सन्ध्याको वहाँ जाकर भवानीके भेंट चढ़ा आना ।'

श्वसुरकी आज्ञासे सरल हृदय चन्द्रहास सामग्री लेकर भवानीके स्थानकी ओर चला । मनुष्य मन-ही-मन कितनी ही कुटिल कामना करता हुआ नानाप्रकारसे शेखचिल्लीकी तरह महल बनाता है, पर *'करी गोपालकी सब होय ।'*

कुन्तलपुर-नरेशके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, उन्होंने आज ही राज्य त्यागकर परमात्मपद-प्राप्तिका साधन करनेके लिये वन जानेका निश्चय कर लिया, परन्तु जानेसे पूर्व राजकुमारीका विवाह करना और किसीको राज्यका उत्तराधिकारी बनाना, ये दो आवश्यक कार्य करने थे । राजाने पूर्वनिश्चयके अनुसार मन्त्रीपुत्र मदनको बुलाकर कहा—'बेटा ! मेरी आज ही वन जानेकी इच्छा है, चम्पकमालिनीका हाथ किसी योग्य राजपूत बालकको सौंपना चाहता हूँ, राज्यका उत्तराधिकार भी देना है । हम लोगोंके सौभाग्यसे भगवान्‌ने कृपाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दिया है । वह सब तरहसे योग्य है, तुम अभी जाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दो !'

राजाकी बात सुनकर सरल हृदय मदनके हर्षका पार न रहा, वह दौड़ा बहनोईको बुलाने । पिताकी बुरी नीयतका उसे

कुछ भी पता नहीं था। चन्द्रहास भवानीके मन्दिरकी ओर जाता हुआ उसे रास्तेमें मिला। उसने राजाज्ञा सुनाकर चन्द्रहासको राजमहलमें भेज दिया और उससे पूजाकी सामग्री लेकर स्वयं सीधा ही भवानीके मन्दिर चला गया। कहना नहीं होगा कि मन्दिरमें पहुँचते ही घातककी तीक्ष्णधार तलवारने उसके शरीरके दो टुकड़े कर दिये! चन्द्रहास बच गया—

'जाको राखै साँइयाँ, मार न सकिहैं कोय।
बार न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होय॥'

इधर कुन्तलपुरनरेशने चम्पकमालिनीका हाथ चन्द्रहासको पकड़ाकर आशीर्वाद दिया और उसी समय गालवमुनिकी आज्ञासे चन्द्रहासका राज्याभिषेक भी हो गया! चम्पकमालिनीके साथ चन्द्रहासने मुनिकी अनुमतिसे गान्धर्व विवाह कर लिया! राजा सब कुछ छोड़-छाड़कर मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समबुद्धि कर वनको चले गये—

'वनं जगाम सन्त्यज्य समलोष्टाश्मकाञ्चनः।'

धृष्टबुद्धिने सोचा था कुछ और; पर हुआ कुछ और ही—'*तेरे मन कछु और है कर्ताके कछु और*।' दूसरे दिन प्रातःकाल धृष्टबुद्धिने जब चन्द्रहासके साथ चम्पकमालिनीके विवाह और उसके राज्याभिषेक होने तथा प्रिय पुत्र मदनके घातकद्वारा मारे

जानेका समाचार सुना, तब तो उसके सिरपर वज्र ही टूट पड़ा ! सत्य है—'*परार्थे योऽवट कर्ता तस्मिन्सम्पतति ध्रुवम् ।*' दूसरोंके लिये खाई खोदनेवाला स्वयं निश्चय ही उसमें पडता है ।

धृष्टबुद्धि हतबुद्धि होकर भवानीके मन्दिरकी ओर दौडा । वहाँ पहुँचकर उसने देखा, कि प्राणाधिक पुत्रका शरीर दो टुकडे हुए पडा है, उसने शोकसे व्याकुल होकर नाना प्रकार विलाप करते हुए उसी समय तलवारसे आत्महत्या कर ली !

श्वसुर धृष्टबुद्धिको उन्मत्तकी तरह दौड़ते देखकर चन्द्रहास भी उसके पीछे-पीछे चला था । मन्दिरमें जाकर चन्द्रहासने देखा कि पिता-पुत्र दोनों मरे पड़े हैं । चन्द्रहासने इन दोनों जीवोंकी मृत्युमें अपनेको कारण समझकर स्वय मरना चाहा । ज्यों ही उसने तलवार म्यानसे निकाली, त्यों ही भवानीने साक्षात् प्रकट होकर उसका हाथ पकड लिया और उसे खींचकर अपनी गोदमें बैठा लिया ! जन्मसे मातृहीन चन्द्रहासको आज जगज्जननीकी गोदमें बैठनेसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई ।

माता बोली, 'मेरे लाल चन्द्रहास ! धृष्टबुद्धि बड़ा दुष्ट था, उसने तुझे मारनेके लिये बडे-बडे जाल रचे थे, अच्छा हुआ वह मारा गया । हाँ, यह मदन भक्त और तेरा प्रेमी था परन्तु इसने तेरे विवाहके समय धन-ऐश्वर्यके दानको पर्याप्त न समझकर

अपना शरीर तुझे अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतः आज यह भी उऋण हो गया। तू शोक छोड़कर राज्य कर। मैं प्रसन्न हूँ, इच्छित वर माँग !"

चन्द्रहासने कहा, 'जननी ! तुम वर देना चाहती हो, मुझपर प्रसन्न हो, तो पहला वर तो मुझे यह दो कि 'हरौ भक्तिः सदा भूयान्मम जन्मानि जन्मानि।' हरिमें मेरी जन्म-जन्ममें भक्ति सर्वदा बनी रहे और दूसरा वर यह दो कि 'मेरे लिये मरे हुए ये दोनों व्यक्ति इसी समय जी उठें, मेरे श्वसुर धृष्टबुद्धिने मुझे मारनेके लिये जो कुछ किया, उसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं है, मनुष्य अज्ञानवश यों किया ही करता है। माता ! इसे क्षमा करो, इसे सुबुद्धि दो, इसके पापोंका विनाश कर इसे भगवान्की विमल भक्ति प्रदान करो।'

भवानी प्रेमभरी वाणीसे 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गयीं ! दोनों पिता-पुत्र सोकर जगनेकी तरह उठ बैठे और उन्होंने चन्द्रहासको गले लगा लिया !

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

—

—

राजपूताने के जैनवीर

(सचित्र, ऐतिहासिक)

लेखक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय "दास"

भूमिका लेखक—

रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

प्रकाशक—

हिन्दी विद्या मन्दिर

पहाड़ी-धीरज, देहली.

प्रथमावृत्ति

चैत्र १९९० विक्रम
वीर नि० सं० २४५९
अप्रैल १९३३ ई०

मूल्य
दो रुपया

लेखक की रचनायें

क्र०	रचना	पृष्ठ	मूल्य
१	संगठन का बिगुल	पृ० ३२	मूल्य एक आना
२	दास पुष्पाञ्जली	,, ६४	,, चार आना
३	दास कुसमाञ्जली	,, १६	,, एक आना
४	उजलेपोश बदमाश	,, ३२	,, एक आना
५	अबलाओंके आँसू	,, ८०	,, चार आना
६	विश्वप्रेम और सेवा धर्म	,, ३२	,, एक आना
७	जैनवीरोंकाइतिहास और हमारापतन	१६०	,, चार आना
८	मौर्य साम्राज्य के जैन-वीर	पृ० १७६	,, छह आना
९	राजपूताने के जैन-वीर		,, दो रुपया
१०	गुजरात के जैन-वीर	अप्रकाशित	
११	दक्षिण के वीर	,,	
१२	सम्राट् खारवेल	,,	
१३	अहिंसा और कायरता	,,	
१४	हमारा उत्थान और पतन	,,	
१५	अग्रवाल जाति का विशाल इतिहास	,,	

हिन्दी विद्या मन्दिर

पहाड़ी-धीरज, देहली ।

गुरू यति ज्ञानचन्दजी
और
उनके शिष्य राजस्थान के अमर लेखक कर्नल जेम्स टॉड

विषय-सूची

चित्र-सूची

चित्र — पृ०

प्रत्येक सभ्य जाति में वीर पुरुषों का सदा से सम्मान होता चला आता है और आगे भी होता रहेगा। वीरता किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। भारत में प्रत्येक जाति में वीर पुरुष हुए हैं, परन्तु इतिहास के अभाव में उनमें से अधिकाँश के नाम तक लोग भूल गये हैं। राजपूताना सदा से वीरस्थल रहा है, उस के प्रत्येक भाग में वहाँ की वीर संतानों ने अपने देश व स्वाधीनता की रक्षा के लिये तथा परोपकार की वृत्ति से प्रेरित हो अनेकों वार अपना रक्त वहाया है, जिसकी स्मारक शिलाएँ जगह जगह पर खड़ी हुई हैं, जो उनकी वीर गाथाओं को प्रकट कर रही हैं। जैन-धर्म में दया प्रधान होते हुए भी वे लोग अन्य जातियों से पीछे नहीं रहे हैं। शताब्दियों से राजस्थान में मंत्री आदि उच्च पदों पर वहुधा जैनी रहे हैं और उन्होंने अपने दायित्वपूर्ण पद को निभाते हुए अनेकों कार्य ऐसे किये हैं, जिनसे इस देश की प्राचीन तक्षण कला की उत्तमता की रक्षा हुई है। उन्होंने देश की आपत्ति के समय महान् सेवाएँ की हैं, जिनका वर्णन इतिहास में मिलता है। उनमें से अनेकों के चरित्र तो अब तक मिले ही नहीं हैं और जो मिलते हैं वे भी अपूर्ण, जिनका इतिहास पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस अवस्था में जो कुछ सामग्री प्राप्त है, उस ही के आधार पर निर्भर रहना पड़ता है; क्योंकि अब तक जैन जगत् में शोध का अनुराग वहुत कम उत्पन्न हुआ है।

जिस प्रकार गुजरात के प्रसिद्ध जैन वीर विद्वान् और दानी

मंत्री वस्तुपाल के कई चरित्र ग्रन्थ संस्कृत मे मिलते हैं, वैसे राजपूताने के जैन-वीरों के नहीं मिलते, यदि मिलते हैं तो नाम मात्र के। राजपूताने मे यह नियम प्राचीन काल से ही चला आता है कि राजकर्मचारी चाहे जैन हो चाहे ब्राह्मण, तो भी उसको यथा अवसर युद्ध में भाग लेना पड़ता था। इसी से राजपूताने के कई जैन-वीरों ने युद्ध के अवसरों पर यथासाध्य अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है यह निर्विवाद है। उनके चरित्रों को एक ही स्थल पर संग्रह करना साधारण कार्य नहीं है। इसके लिये पुरातन शिलालेखों एवं प्राचीन पुस्तकों को पढ़कर उनका आशय जानना भी श्रम साध्य कार्य है, जिसका महत्त्व वे ही लोग जानते हैं, जिनको यह कार्य करना पड़ता है।

श्री० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय ने कतिपय छपी हुई पुस्तकें और कुछ इधर उधर जाकर अप्रकाशित पुस्तकों के आधार पर राजपूताने के कई जैन वीरों के चरित्रों को एकत्र कर यह पुस्तक तैयार की है। सामग्री का अभाव होने के कारण कई प्रसिद्ध जैन वीरों का उल्लेख ही नहीं हुआ है। तो भी गोयलीयजी का परिश्रम सराहनीय है। उन्होंने राजपूताने में जितने भी प्रसिद्ध जिनालय हैं, उनका यथासाध्य वर्णन किया है, जिससे जैन यात्री भी लाभ उठा सकेंगे। राजपूताना के लिये गोयलीयजी का यह प्रारम्भिक कार्य है। कार्य साधारण नहीं है, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि उन को परिश्रम भी बहुत करना पड़ा है। यह संग्रह आगे बढ़ने पर शिक्षाप्रद होकर जैन जगत् मे स्फूर्ति पैदा करेगा और इससे कई अज्ञात् जैन वीरों के चरित्र प्रकाश में आवेंगे।

प्रारम्भिक कार्य त्रुटियों से खाली नहीं होता। गोयलीयजी से भी कई स्थलों पर त्रुटियें होना स्वाभाविक है। जिनमे से कुछ का इन पद्यों पर उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। ये त्रुटियें दोष

दृष्टि से नहीं दिखलाई जातीं, प्रत्युत् इस भाव से कि आगामी संस्करण में ऐसी त्रुटियें न रहें।

(क) पृ० ८० में भारमल कावड़िया को महाराणा सांगा ने वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में अलवर से बुलवा कर रणथंभोर का क़िलेदार नियत करना लिखा है। परन्तु महाराणा साँगा का देहांत वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) में हो चुका था। ऐसी दशा में भारमल को वि० सं० १६१० में महाराणा सांगा का अलवर से बुलाकर रणथंभोर का क़िलेदार बनाना इतिहास से विरुद्ध है।

(ख) पृ० १९५ में लिखा है कि राठोड़ राव सीहाजी के पुत्र आस्थानजी ने सं० १२३७ में मारवाड़ आकर परगने मालानी के गांव के खेड़ में अपना राज्य स्थापित किया। प्रथम तो संवत् में ही भूल है। राव सीहाजी का देहांत वि० सं० १३३० में होना उनके मृत्यु स्मारक लेख से सिद्ध है, जो छप चुका है। फिर उनके पुत्र का वि० सं० १२३७ में राज्य पाना क्यों कर संभव हो सकता है? दूसरा आस्थानजी के लिये परगने मालानी के गांव के खेड़ में राज्य स्थापित करना लिखा। इसका कुछ भी अभिप्राय समझ में नहीं आता। यदि इस जगह खेड़ गांव या प्रदेश लिखा जाता तो ठीक होता और वास्तविक अभिप्राय भी निकल आता।

इस ही प्रकार कहीं कहीं उद्धृत किये हुए संस्कृत के शिलालेखों में भी असावधानी हुई है, जो खटकती हुई है। लेखक ने कहीं कहीं धार्मिक प्रवाह में बहकर खींचतान भी की है। इतना होते हुए भी पुस्तक उपादेय है। आशा है प्रत्येक जैनधर्मावलंबी इस पुस्तक को अपने पुस्तकालय में स्थान देकर लेखक के उत्साह को बढ़ावेंगे, ताकि इसके आगे के भाग भी प्रकाशित हो सकें।

[अजमेर, १२-४-३२] गौरीशंकर हीराचंद ओझा

वक्तव्य ।

नहीं मिन्नतकशे तावे शुनीदन दास्तां मेरी ।
ख़मोशी गुफ्तगू है बेजबानी है ज़बां मेरी ॥
मेरा रोना नहीं, रोना है यह सारे गुलिस्तां का ।
वह गुल हूँ मैं, ख़िज़ां हर गुलकी है गोया ख़िज़ां मेरी ॥

—"इकबाल"

अल्पवयस्क और अनुभवहीन होने के नाते मुझे इतिहास के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट करने का अधिकार नहीं, तो भी मैं मान्य रवीन्द्रनाथ के शब्दों में कहूँगा कि, "सब देशों के इतिहास एक ही ढङ्ग के होने चाहिये—यह कुसंस्कार है । इस कुसंस्कार को छोड़े बिना काम नहीं चल सकता । जो आदमी 'रथ चाइल्ड' का जीवन-चरित्र पढ़ चुका है, वह ईसा की जीवनी पढ़ते समय ईसा के हिसाब-किताब का खाता और डायरी तलब कर सकता है और यदि ईसा की जीवनी में उनके हिसाब-किताब का खाता तथा डायरी वह न पावेगा तो, उसे ईसा के प्रति अश्रद्धा होगी । वह कहेगा कि जिसके पास एक पैसे का भी सुभीता न था, उसकी जीवनी कैसी ? ठीक इसी तरह भारतवर्ष के राष्ट्रीय दफ्तर से इसके राजाओं की वंशमाला और जय-पराजय के कागज पत्र न पाकर लोग निराश हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि-

"जहाँ राजनीति नहीं, वहाँ इतिहास का क्या ज़िक्र ?" वे सचमुच ही धान के खेत में बैंगन ढूंडने जाते हैं और वहाँ बैंगन न पाकर धान की गिनती अन्न में ही नहीं करते । सब खेतों में एक ही चीज़ नहीं होती, यह समझकर जो लोग स्थान के अनुसार उपयुक्त खेत से उपयुक्त अन्न की आशा करते हैं, वे ही समझदार समझे जाते हैं † "।

"यह सर्वथा ठीक है कि आज कल इतिहास का जो अर्थ किया जाता है (अर्थात् दूसरों के साथ मुक़ाबिला तथा संग्रामों का वर्णन आदि) उस अर्थ में भारतवर्ष का इतिहास नहीं पाया जाता। प्राचीन काल में आर्यावर्त कभी इस प्रकार का देश न था, जो दूसरों से युद्ध करके अपनी उन्नति करता। भारतीयों की उन्नति की अपनी विशेष रेखा थी। यह निश्चय करने के पूर्व कि भारतवर्ष का कोई इतिहास है या नहीं, हमें यह जानना चाहिये कि भारतवर्ष के इतिहास की कौनसी रेखा है ? उस रेखा का निश्चय करके उस के अनुसार इतिहास लिखा जा सकता है " + ।

भारतवासी सदा से अध्यात्म-प्रेमी रहे हैं, यही कारण है कि उनके सम्बन्ध में मार-काट, खून-ख़राबे का वर्णन नहीं मिलता। उन्होंने इस रक्तरंजित पृष्ठ के लिखने में आवश्यकता से अधिक उपेक्षा रक्खी है। भारत में युद्ध न हुए हों, अथवा भारतवासी इस ढंग का इतिहास लिखना ही नहीं जानते थे; यह बात नहीं। भारत

---

† स्वदेश पृष्ठ २३।

+ भारतवर्ष का इतिहास पृ० २१।

याई भी अध्यात्म-प्रेमी रहे हैं । इनके यहाँ षट् द्रव्य (१ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म, ५ आकाश और ६ काल) का विषद् विवेचन मिलता है। जैन-आचार्यों ने जिस विषय पर भी लिखा है वह अपने ढंग का अनूठा और वेजोड़ है, पर अध्यात्म पर सबसे अधिक लिखा है। जैनाचार्यों ने युद्ध आदि रागात्मक विषयों के वर्णन में हिन्दू-ग्रन्थकारों की अपेक्षा और भी अधिक उदासीनता रक्खी है। पौराणिक काल को जाने दीजिये, अशोक का प्रतिद्वन्दी सम्राट् खारवेल जो कि प्रसिद्ध जैनधर्मी हुआ है, उसके सम्बन्ध में जैनग्रन्थों में एक शब्द भी नहीं मिलता। इसी प्रकार मान्यखेट का राठौड़-वंशी राजा अमोघवर्ष भी जैनी हुआ है और यह प्रसिद्ध ग्रन्थकार जिनसेनाचार्य का शिष्य था, फिर भी स्वयं जिनसेनाचार्य ने अथवा और किसी ने इसके विषय में कुछ नहीं लिखा । ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। यदि इन राजाओं के सम्बन्ध के शिलालेख आदि न मिलते तो आज इतिहास के पृष्ठों में इनका अस्तित्व तक न होता।

फिर भी जैनधर्म के शिलालेखों, स्थविरावलियों, पट्टावलियों और ग्रन्थों † में भारतवर्ष के इतिहास की सामग्री बिखरी हुई

† द्वाश्रयकाव्य, परिशिष्टपर्व, कीर्तिकौमुदी, वसन्तविलास, धर्माभ्युदय, वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति, सुकृतसंकीर्तन, हम्मीरमद मर्दन, कुमार विहार-प्रशस्ति, कुमारपाल-चरित्र, प्रभावक-चरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि, श्रीतीर्थकल्प, विचारश्रेणी, स्थविरावली, गच्छप्रबन्ध, महामोहपराजय नाटक, कुमुदचन्द्र प्रकरण, प्रबन्धकोष, तीर्थमालाप्रकरण, उपदेशसप्ततिका, गुर्वावलि, महावीर प्रशस्ति, पंचाशतिप्रबोध सम्बन्ध, सोमसौभाग्यकाव्य, गुणगणरत्नाकरकाव्य, प्रवचनपरीक्षा, जगद्गुरुकाव्य,

पड़ी है। पर आज हमे इससे सन्तोष नहीं हो सकता। अध्यात्म-वाद की जगह अब आधिभौतिकवाद (पुद्गलवाद) ने लेली है। अतएव आधिभौतिक वाद का मुकाबिला करने के लिए अथवा आधिभौतिक संसार मे इज्जत-आबरू से जीने के लिए हमे आधि-भौतिकवादियो जैसा इतिहास निर्माण करना ही होगा। यही समय का तकाज़ा है।

प्रस्तुत पुस्तक मे अधिकाश खून-खराबे और मार-काट का ही वर्णन पढ कर पाठक मुझे अशान्त, क्रूर-हृदय, युद्ध-प्रेमी समझेंगे, पर बात इससे बिल्कुल भिन्न है। मै पूर्णतया शान्ति, अहिंसा और विश्वप्रेम का उपासक हूँ। मै युद्ध मे होने वाले दुष्परिणामो से अनभिज्ञ नहीं, युद्ध सभ्य जाति और सभ्य देशो के लिये कलंक है, मै कभी देश के होनहार बालको के मस्तिष्क मे युद्ध सम्बन्धी संस्कार नही भरना चाहता। मेरी अभिलाषा है कि संसार से शस्त्रवाद का नाम ही उठजाय, आत्मिक-बल के आगे शारीरिक बल का प्रयोग करना ही लोग भूल जाय। पर, यह तभी हो सकता है, जब सबल राष्ट्र—बलवती जातियाँ—निर्बल राष्ट्रों—अल्प संख्यक जातियो—को हड़प जाने की दुरेच्छा का अन्त करदे।

[illegible]

हमारा धर्म शेर बनकर दूसरों को हड़प जाने की आज्ञा नहीं देता, परन्तु वह भेड़ बने रहने की शिक्षा का भी विरोधी है। शेर और भेड़ का कभी मेल हो ही नहीं सकता। भेड़ कितनी ही दया समानाधिकार, विश्वप्रेम आदि का रोना रोये, उसका जीवन सुरक्षित रह नहीं सकता। भेड़ जब तक भेड़ बनी रहेगी उसे खाने के लिये संसार में शेर पैदा होते ही रहेंगे। अतः दूसरों को हड़प जाने के लिये नहीं, अपितु अपनी आत्म-रक्षा के लिये सभी को सजग रहना चाहिये।

जैनियों पर उनके अहिंसा-प्रेमी होने के कारण, अनेक महापुरुषों (?) ने कायरता का दोष लगाया है और अब वह (जैनी) कायर कहलाते कहलाते वास्तव में कायर भी हो गये हैं ‡। उसी कायरता को हटाने के लिये मैंने "जैन-वीर-चरितावलि" के संकलन करने का प्रयत्न किया है। ताकि जैन समझ सकें कि हमारे पुरखा चुपचाप भेड़ों की तरह वध-स्थल में नहीं चले जाते थे,

---

‡ दूसरों के द्वारा अपनी निन्दा निरन्तर सुनते रहने से जातीय इतिहास में अनेक वीभत्स घटनाएँ उपस्थित होती देखी गई हैं। 'महाभारत की कथा में वर्णित है कि, कर्ण को बलहीन करने के लिये उसके सारथी पाण्डव-हितैषी, मद्र-नरेश शल्य ने उसकी बहुत निन्दा की थी। दूसरों के मुँह से रात-दिन अपनी निन्दा सुनते रहने से साधारणतः सब को आत्मग्लानि उपस्थित होती है, लोगों के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि हम अकर्मण्य और हीनशक्ति हैं। ऐसी भ्रान्ति बहुत दिनों तक स्थायी रहने से उन लोगों की बुद्धि नष्ट होने और चरित्र-बल घटने लगता है। इसी से अपनी जाति की निन्दा सुनना पाप अर्थात् अवनति जनक कहा जाता है।

बल्कि उन्हे भी आत्म-रक्षा करना आता था। वह भी धर्म और जाति की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये प्राणों का तुच्छ मोह छोड़ कर जूझ मरते थे।

जो बन्धु मेरे स्वतन्त्र और धार्मिक विचारों से परिचित हैं, संभव है वे मेरी इस "वीर-चरितावलि" मे जैन शब्द लगा हुआ देख कर चौंके और कहे कि "यह मजहबी दीवानगी कैसी ?" ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि जैनी भी संसार के एक अंग हैं उनका अंग भी यहीं की मिट्टी-पानी से बना है। उनके पुरखाओं ने भी अनेक लोक-हित कार्य किये हैं। पर, दुर्भाग्य से वर्तमान जैन अपने स्वरूप से परिचित नहीं तभी वह कर्तव्य-विमुख हो बैठे हैं। उनका भी इस समय कुछ कर्तव्य है, वह भी देश के एक अंग हैं। कोई शरीर कितना ही बलशाली क्यों न हो, जबतक उसका एक भी अंग दूषित रहेगा तब तक वह पूर्ण रूपेण सुखी नहीं बन सकता। इसी बात को लक्ष करके यह सब लिखा गया है। पर जहां तक मैं समझता हूँ मैंने इन निबन्धों में मजहबी दीवानगी को फटकने तक नहीं दिया है। जैन और जैनेतर दोनों ही इसका यकसां उपयोग कर सकते हैं। बकौल इकबाल साहब के मैंने इस बात का पूरा ध्यान रक्खा है —

मेरी जबान कलम से किसी का दिल न दुखे।

बौद्धों की सत्ता भारत से उठ गई है, बौद्ध भारत में नहीं होने के बराबर हैं, फिर भी उनके सम्बन्ध में थियेटरों, सिनेमाओं समाचार-पत्रों और पुस्तकों द्वारा काफी प्रकाश पड़ता है किन्तु

जैनी भारत में रहते हुये भी उनके सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं लिखता, उनके गौरव-प्रतिष्ठा आदि को जाने दीजिये, उनके अस्तित्त्व से भी बहुत कम परिचत हैं। इसके कई कारण हैं। बौद्ध संसार में सब से अधिक हैं, बलशाली भी खूब हैं और राज्य-सत्ता भी उनके हाथ में हैं, इस लिये उनकी ओर संसार का ध्यान आकर्षित होना ज़रूरी है। इसके विपरीत जैनसमाज राज्य-सत्ता खो बैठी है, अपने सहयोगियों—अनुयाइयों—को निरन्तर निकालते रहने के कारण अल्प संख्या में अपने जीवन के शेष दिन पूरे कर रही है‡। उसका स्वयं बाह्य आडम्बरों के सिवा इस ओर ध्यान ही नहीं है, तब ऐसी मरणोन्मुख साथही चिड़चिड़ी समाज के सम्बन्ध में कोई क्यों और कैसे लिख सकता है। अपने पास इतिहास के अनेक साधन रहते हुये भी उन्हें कंजूस के धन की तरह अनुपयोगी बना रक्खा है। जैन-समाज के श्रीमान् स्वर्गों के प्रलोभन और ज़रासी वाह-वाही के लिये करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष रथयात्रा, बिम्बप्रतिष्ठा, दीक्षा-महोत्सवों में व्यय करते हैं और साहित्य-निर्माण में इस लिये कुछ उत्साह नहीं रखते क्योंकि वह समझते हैं कि इस से परलोक में कोई लाभ नहीं। परलोक और पुण्य के प्रलोभन से किसी भी कार्य के करने का जैनधर्म में निषेध है और गीता में भी निष्काम—फल की इच्छा न रखते हुये—कार्य करने का उल्लेख है।

---

‡ फिरका बन्दी है कहीं और कहीं जातें हैं।
क्या ज़माने में पनपने की यही बातें हैं॥
—"इक़बाल"

इबादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना में।
इबादत तो नहीं है, इक तरह की वह तिजारत है॥

— अज्ञात

प्रतिष्ठा अथवा पुण्य-बन्ध के लालच को लेकर किसी कार्य के करने में समुचित फल की प्राप्ति नहीं होती। तो भी जो व्यक्ति तिजारत को ध्यान में रखते हुये धर्म कार्य करते हैं, उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि साहित्य के प्रचार का जैनधर्म ने सब से अधिक महत्व माना है। जैनधर्म में कथित आहारदान, औषधिदान, अभयदान का फल भोगने के लिये यह आत्मा किसी भी योनि में रहता हुआ अपने किये हुये दानों का फल प्राप्त कर सकता है पर "ज्ञानदान" का फल पाने के लिये उसे नियम से मनुष्य योनि में ही आना होगा, क्योंकि मनुष्य के सिवा और कोई जीव इसका उपयोग नहीं कर पाता। अतएव जैन-समाज के श्रीमानो! यदि तुम्हें सदैव मनुष्य बनना है—नारकी-पशु नहीं बनना है—तो सब आडम्बरों को छोड़ कर ज्ञान-दान करना सीखो, भविष्य सुधारने के लिये उत्तम साहित्य निर्माण करो, अन्यथा [illegible] "[illegible]" साहब—

मिटेगा दीन भी और आबरू भी जायगी।
तुम्हारे नाम से दुनिया को [illegible] आयगी॥

[illegible] मन्दिर आदि बनवाने को बुरा नहीं समझता [illegible] बहुत [illegible] में प्राचीन मन्दिरों का [illegible] से [illegible] किया है [illegible] इस समय उनकी ओर अधिक आवश्यकता नहीं [illegible]

कितने ही प्राचीन मन्दिर धराशायी हो रहे हैं, अनेक जगह मूर्ति की पूजन प्रक्षालन करने वाले मनुष्यों की जगह चूहे और नौल रह गये हैं, अनेक विशाल मन्दिर अपने सच्चे उपासकों का अभाव देखकर दहाड़ मारकर रो रहे हैं फिर भी, उनके करुण क्रन्दन को सुनते हुये अनावश्यक नये नये मन्दिर बनवाने, प्रतिमायें स्थापित करवाने में क्या लाभ है ? यह हमारे श्रीमानों के अंतरंग की बात सिवाय सर्वज्ञदेव के और कौन जान सकता है ?

इतिहास से नीच और कमीन लोगों को मुहब्बत नहीं होती-जिनके पुरखाओं ने कभी कोई आदर्श उपस्थित नहीं किये, वे कभी अपने पुरखाओं को याद नहीं करते। ऐसे ही लोग इतिहास से घृणा करते हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि जिनके पुरखाओं-बाप दादों-ने अनेक लोकोत्तर कार्य किये वह भी आज इस ओर से उदासीन हैं।

लोग कहते हैं, भूतकालीन बातों—गढ़े मुर्दों—को उखाड़ने से क्या लाभ ? भूत को छोड़कर वर्तमान की सुध लेना चाहिये। पर, मेरा विश्वास है कि हरएक क़ौम और देश का, वर्तमान और भविष्य भूत पर ही निर्भर है। जिसका भूत अन्धकार में है उसका वर्तमान और भविष्य कभी उज्ज्वल हो ही नहीं सकता। जिस मकान की नींव दृढ़ नहीं, वह बहुत दिनों तक गगन से बात नहीं कर सकता। इसीलिये भूतकालीन बातें सभी सुनना चाहते हैं। बालक बालिकायें, युवा-युवतियाँ, वृद्ध और वृद्धाएँ सभी फुर्सत के वक्त कहानी कहते और सुनते हैं। भूतकालीन बातें

मैंने पास तक नहीं फटकने दिया है जो भी कुछ लिखा है सत्य को लेकर लिखा है। संभव है मेरा यह प्रयास असफल रहा हो, फिर भी मैं इतना अवश्य कहूँगा कि—

मैंने लिक्खा है इसे खूने जिगर से अपने।

इसके संकलन करने में जो दुर्दिन देखने पड़े हैं, भगवान् करे मेरे सिवा वह दिन कोई और न देखे। दिल एक प्रकारसे टूट सा गया है †। अपने वचनानुसार ज्यों त्यों करके आज यह कृति मुझे पाठकों के कर कमलों में भेट करते हुए हर्ष होता है। यद्यपि इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं, मैं इसे जैसा चाहता था, वैसा न लिख सका। यदि विद्वान् पाठकों ने पुस्तक में रही हुई त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया और इसके लिये साहित्य सम्बन्धी साधन जुटाने की उदारता दिखाई तो संभवतया उनके सुधार का प्रयत्न किया जायगा।

अन्त में भावना है कि:—

हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुलादे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगादे॥

"इक़बाल"

राष्ट्रीय औषधालय
गली वरना, सदर-देहली।
२४-२-३३

दास—
अ. प्र. गोयलीय

---

† कैफ़ियत ऐसी है नाकामी की इस तसवीर में।
जो उतर सकती नहीं आईनये तहरीर में॥

—"इक़बाल"

राजपूताने के जैन-वीर

राजस्थान

जहाँ वीरता मूर्तिमन्त हो हरती थी भूतल का भार।
जहाँ धीरता हो पाती थी धर्म-धुरीण कण्ठ का हार॥

जहाँ जाति-हित वलि-वेदी पर सदा वीर होते बलिदान।
जहाँ देश का प्रेम वना था सुरपुर का सुखमय-सोपान॥

जिस अवनी के वाल-वृन्द ने काटे वलवानों के कान।
चमकी जहाँ वीर-वालाएँ रण-भू में करवाल समान॥

किए जहाँ के नृप-कुल-मण्डल ने कितने लोकोत्तर काम।
जिस लीलामय रङ्ग-अवनि में उपजे नाना लोक-ललाम॥

जिस के एक-एक रज-कण पर लगी राजपूती की छाप।
जिस का वातावरण समझता रण में पीठ दिखाना पाप॥

जिसके पत्ते मर्मर रव कर, रहे पढ़ाते प्रभुता-पाठ।
जिसके जीवन-संचारण से हरित हुआ था उकठा काठ॥

—"हरिऔध"

बने कागज़ पर लिखने की चीज़ नहीं। आज इस परतन्त्रता युग में भी, जब राजपूताने की अभूतपूर्व वीरता, धीरता, त्याग और शौर्य का वर्णन पढ़ते हैं तो आँखें मस्ती में नाचने लगती हैं, हृदय मारे स्वाभिमान के उछलने लगता है, छाती फूल उठती है, रोमाँच हो आते हैं और ऐसा भान होने लगता है कि हम भी सीना तान कर निकलने का अधिकार रखते हैं।

वर्तमान में इस इतिहास-प्रसिद्ध राजपूताने में १९ देशी रियासतें, लावा और कुशलगढ़ नामक दो खुदमुख्तियार ठिकाने तथा ब्रिटिश इलाक़ा—अजमेर (मेरवाड़ा) और आबू पहाड़ सम्मलित हैं। इसका क्षेत्रफल १, ३१, ६९८ वर्गमील है और इसमें क़रीब १॥ करोड़ लोग बसते हैं। निम्न लिखित तालिका में राजपूताने की सब रियासतों के नाम उनके क्षेत्रफल और वर्तमान शासकों की जाति का विवरण दिया जाता है।

संख्या	नाम रियासत	राजा की जाति	क्षेत्रफल	
१	जोधपुर (मारवाड़)	राठौड़ राजपूत	३५,०१६	वर्गमील
२	बीकानेर (जांगल)	,,	२३,३१५	,,
३	जैसलमेर (माड)	भाटी यादव	१६,०६२	,,
४	जयपुर (ढूंढाड)	कछवाहा	१५,५१९	,,
५	उदयपुर (मेवाड़)	गहलोत	१२,७५६	,,
६	कोटा (हाड़ोती)	हाडा चौहान	५,६८४	,,

बने कागज़ पर लिखने की चीज़ नहीं। आज इस परतन्त्रता युग मे भी, जब राजपूताने की अभूतपूर्व वीरता, धीरता, त्याग और शौर्य का वर्णन पढ़ते हैं तो आँखें मस्ती मे नाचने लगती हैं, हृदय मारे स्वाभिमान के उछलने लगता है, छाती फूल उठती है, रोमाँच हो आते हैं और ऐसा भान होने लगता है कि हम भी सीना तान कर निकलने का अधिकार रखते हैं।

वर्तमान मे इस इतिहास-प्रसिद्ध राजपूताने मे १९ देशी रियासते, लावा और कुशलगढ नामक दो खुदमुख्तियार ठिकाने तथा ब्रिटिश इलाका–अजमेर (मेरवाड़ा) और आबू पहाड सम्मलित हैं। इसका क्षेत्रफल १, ३१, ६९८ वर्गमील है और इसमे करीब १॥ करोड़ लोग बसते हैं। निम्न लिखित तालिका मे राजपूताने की सब रियासतों के नाम उनके क्षेत्रफल और वर्तमान शासको की जाति का विवरण दिया जाता है।

संख्या	नाम रियासत	राजा की जाति	क्षेत्रफल	
१	जोधपुर (मारवाड)	राठौड राजपूत	३५,०१६	वर्गमील
२	बीकानेर (जांगल)	,,	२३,३१५	,,
३	जैसलमेर (माड)	भाटी यादव	१६,०६२	,,
४	जयपुर (ढूंढाड)	कछवाहा	१५,५१९	,,
५	उदयपुर (मेवाड)	गहलोत	१२,७५६	,,
६	कोटा (हाड़ोती)	हाडा चौहान	५,६८४	,,

सम्पूर्ण इतिहास मे मेवाड़ (उदयपुर रियासत) का इतिहास सब से अधिक गौरवपूर्ण और प्रतिभाशाली है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक का श्रीगणेश इसी रियासत से प्रारम्भ किया जाता है।

१५ नवम्बर सन् ३२
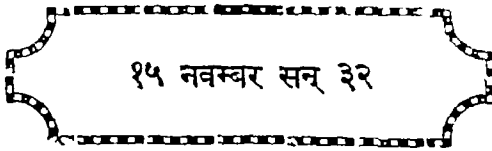
पवित्र-तीर्थ

अरे, फिरत कत, बावरे! भटकत तीरथ भूरि।
अज्यौं न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि॥
बसत सदा ता भूमि पै, तीरथ लाख करोर।
लरत मरत जहँ बाँकुरे, बिरझि बीर बर जोर॥
जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खङ्ग खुलि झूमि।
रँगा रुधिर सौं धूरि सो, धन्य धन्य रण-भूमि॥
तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग।
उठ्यौ सुबीर-कबन्ध जहँ तहँई पुण्य, प्रयाग॥
संगर-सोहैं सूरि जहँ, भये भिरत चक-चूरि।
बड़-भागन तैं मिलति वा रण-आँगन की धूरि॥

—श्री वियोगीहरि

पवित्र-तीर्थ

अरे, फिरत कत, बावरे! भटकत तीरथ भूरि।
क्यों न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि॥
बसत सदा ता भूमि पै, तीरथ लाख करोर।
लरत मरत जहँ बाकुँरे, बिरझि बीर बर जोर॥
जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खड्ग खुलि झूमि।
रँगा रुधिर सौं धूरि सो, धन्य धन्य रण-भूमि॥
तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग।
उठ्यौ सुबीर-कबन्ध जहँ तहँई पुण्य, प्रयाग॥
संगर-सोहैं सूरि जहँ, भये भिरत चक-चूरि।
बड़-भागन तैं मिलति वा रण-आँगन की धूरि॥

—श्री वियोगीहरि

मेवाड़-परिचय

उदयपुर रेजिडंसी या मेवाड़ में ४ राज्य हैं। उदयपुर, बाँसवाड़ा डूंगरपुर और परतापगढ़। इसकी चौहद्दी—उत्तर में अजमेर मेरवाड़ा और शाहपुर, उत्तर-पूर्व में जैपुर और बून्दी । पूर्व में कोटा, और टोंक, दक्षिण में मध्यभारत, पश्चिम में अरावली पहाड़। सन् १९०१ में यहाँ जैनी ६ फी सदी थे†।

❀ उदयपुर-राज्य ❀

"राजपूताने के दक्षिणी विभाग में २३°४९' से २५°२८' उत्तर अक्षांश और ७०°१' से ७५°४९' पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। उसका क्षेत्रफल १२६९१ वर्गमील है। उदयपुर-राज्य के उत्तर में अजमेर मेरवाड़ा और शाहपुरे (फूलिये) का इलाक़ा; पश्चिम में जोधपुर और सिरोही राज्य, नैऋत्य कोण में ईडर, दक्षिण में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्य, पूर्व में सिंधियों का परगना नीमच, टोंक का परगना, नींबाहेड़ा और बून्दी तथा कोटा राज्य हैं; और ईशान कोण में देवली के निकट जयपुर का इलाक़ा आ गया है। इस राज्य के भीतर ग्वालियर का परगना गंगापुर, जिसमें १० गाँव हैं और आगे पूर्व में इन्दौर का परगना नंदवास (नंदवाय) आ गय है, जिसमें २९ गाँव हैं।" ‡

---

† राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक पृ० १२८ ।

‡ राजपूताने का इतिहास पृ० ३०६ ।

मेवाड मे पर्वत-श्रेणियाँ अधिक है यह हरा भरा सुहावना प्रदेश है। साल भर बहने वाली मेवाड मे एक भी नदी नही है। यहाँ छोटी बड़ी झीले बहुत हैं। जिनमे कई अत्यन्त दर्शनीय और मन-मोहक है। मेवाड का जल-वायु सामान्य रीति से आरोग्यप्रद समझा जाता है। भूमि की ऊँचाई के कारण यहाँ सर्दी के दिनो में न तो अधिक सर्दी और उष्णकाल मे न अधिक गर्मी होती है। यहाँ की समतल भूमि पैदावारी के लिये बहुत अच्छी है। मेवाड के प्रसिद्ध किले चित्तौड़गढ, कुँभलगढ़ और माण्डलगढ हैं, इनके सिवा छोटे-मोटे गढ और गढियाँ भी अनेक हैं। बाम्बे-बड़ौदा एन्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेल्वे की अजमेर से खंडवा जानेवाली छोटी नाप वाली रेल की सड़क मेवाड मे होकर निकलती है और उस के रूपाहेली से लगाकर शंभुपुरा तक के स्टेशन इस राज्य मे है। चित्तौडगढ जंकशन से उदयपुर तक ६९ मील रेल की सडक उदयपुर राज्य की तरफ से बनाई गई है, जो उदयपुर-चित्तौडगढ रेल्वे कहलाती हैं। और दूसरी लाइन अभी हाल मे 'मावली' जंकशन से निकली है जो मारवाड जंकशन तक जायगी।

उदयपुर राज्य की जन संख्या सन् १९३१ (वि०सं० १९८७) मे १५६६९१० थी जिसमे जैनियों की संख्या ६६,००१ थी।

मेवाड प्राकृतिक दृश्य में अपने ढंग का निराला है। काश्मीर के बाद सुन्दरता में मेवाड का स्थान है। राजपूताने मे सब से अधिक चान्दी, ताम्बा, लोहा, ताम्बड़ा (रक्त मणि) अभरक आदि की खानें मेवाड में हैं।

चित्तौड़गढ़

मेवाड़ (उदयपुर-राज्य) की वर्तमान राजधानी उदयपुर में है किन्तु इससे पूर्व मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़गढ़ थी। "चित्तौड़गढ़ बॉम्बे बड़ौदा एण्ड सेंट्रल इण्डिया रेल्वे की अजमेर से खंडवा जानेवाली शाखा पर चित्तौड़गढ़ जंकशन से दो मील पूर्व में एक विलग पहाड़ी पर बना हुआ है। यह किला मौर्य-वंश के राजा चित्रांगद ने बनवाया था जिससे इसको चित्रकूट कहते हैं विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी के अन्त में मेवाड़ के गुहिल वंशी राजा बापा ने राजपूताने पर राज्य करने वाले मौर्यवंश के अन्तिम राजा मान से यह क़िला अपने हस्तगत किया। फिर मालवे के परमार राजा मुँज ने इसे गुहिलवंशियों से छीनकर अपने राज्य में मिलाया। वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के अंत में गुजरात के सोलंकी † राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने परमारों से मालवे को छीना, जिस के साथ ही यह दुर्ग भी सोलंकियों के अधिकार में गया। तदनन्तर जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के भतीजे अजयपाल को परास्त कर मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह ने वि०सं० १२३१ (ई० स० ११७४) के आसपास इस किले पर गुहिलवंशियों का आधिपत्य जमाया। उस समय से आज तक यह इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग प्रायः—यद्यपि बीच में कुछ वर्षों तक

---

† इन सोलंकी राजाओं का विस्तृत परिचय लेखक की "गुजरात के [illegible]" नामक पुस्तक में मिलेगा। जो शीघ्र छपेगी।

मुसलमानो के अधीन भी रहा था—गुहिलवंशियो (सीसोदियो) के ही अधिकार में चला आता है ‡।

"चित्तौड़गढ़ जंकशन से क़िले के ऊपर तक पक्की सडक बनी हुई है। स्टेशन से रवाना होकर अनुमान सवा मील जाने पर गम्भीरी नदी आती है। जिस पर अलाउद्दीनखिलजी के शाहज़ादे खिज़रखॉ का बनवाया हुआ पाषाण का एक सुदृढ़ पुल है। पुल से थोड़ी दूर जाने पर कोट से घिरा हुआ चित्तौड़ का क़स्बा आता है। जिसको तलहटी कहते हैं †।"

यहॉ की मनुष्य-सख्या सन् १९३१ मे ८०४१ थी। दिगम्बर जैनियों का एक शिखरबन्द मन्दिर एक चैत्यालय और श्वेताम्बर जैनो के दो मन्दिर यहॉं बने हुये हैं। क़स्बे मे ज़िले की कचहरी है जिसके पास से किले की चढ़ाई आरम्भ होती है। यहीं से क़िले पर जाने के लिये पास मिलता है।

"चित्तौड़ का दुर्ग समुद्र की सतह से १८५० फुट ऊँचाई वाली सवा तीन मील लम्बी और अनुमान आध मील चौडी उत्तर-दक्षिण-स्थित एक पहाडी पर बना हुआ है और तलहटी से क़िले की ऊॅचाई ५०० फुट है। पहाडी के ऊपरी भाग मे समान भूमि आ जाने के कारण वहॉ कई एक कुंड, तालाब, मन्दिर, महल आदि बने हुए हैं। और कुछ जलाशय तो दुष्काल मे भी नहीं सूखते। पहले इस दुर्ग पर आबादी बहुत थी, परन्तु अब तो

‡ राजपूताने का इ० पहली जि० पृ० ३४९-५०।

† राजपूताने का इ० प० जि० पृ० ३५०।
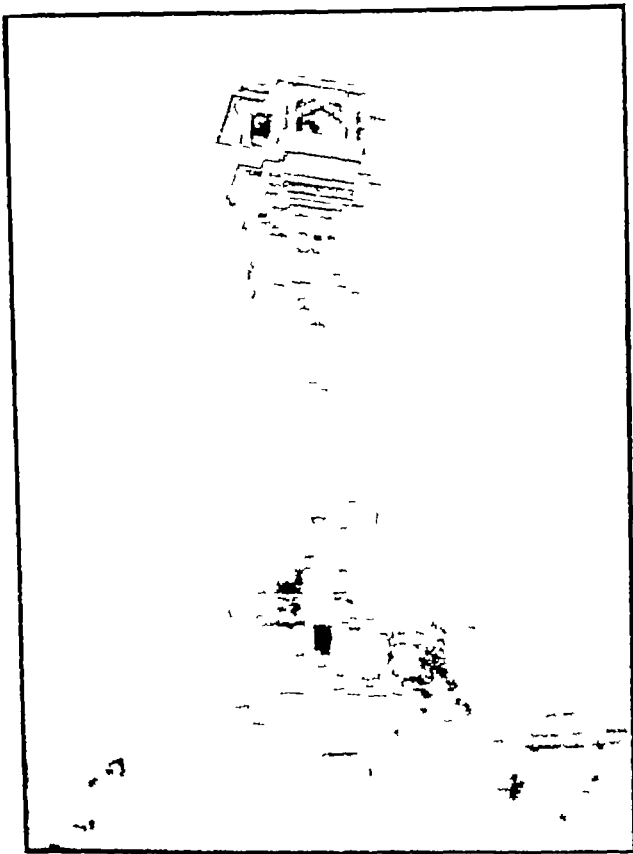
जैन-कीर्तिस्तम्भ, चित्तौड़दुर्ग

पहाड़ी के पश्चिमी सिरे के पास अनुमान २०० घरों की ही बस्ती रह गई है और शेष सब मकानों के गिर जाने से इस समय वहाँ खेती हुआ करती है" ‡। इस क़िले में कितनी ही प्राचीन इमारतें आज भी उस गौरवमयी अतीत काल की पवित्र स्मृति में खड़ी हुई हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण श्री ओझाजी कृत राजपूताने के इतिहास पहिली जिल्द से केवल जैन-स्थानों का परिचय दिया जाता है :—

१—जैनकीर्तिस्तम्भ—"चित्तौड़-दुर्ग पर सात मंजिल वाला जैन-कीर्तिस्तम्भ है। जिसको दिगम्बर सम्प्रदाय के बघेरवाल महाजन ने सा (साह सेठ) नाम के पुत्र जीजा ने वि०सं० की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनवाया था। यह कीर्तिस्तम्भ आदिनाथ का स्मारक है। इसके चारों पार्श्व पर आदिनाथ की एक-एक विशाल दिगम्बर (जैन) मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इस कीर्तिस्तम्भ के ऊपर की छत्री बिजली गिरने से टूट गई और स्तम्भ को बड़ी हानि पहुँची थी; परन्तु महाराणा फतह-सिंह ने अनुमान ८०००० रुपये लगाकर ठीक वैसी ही छत्री पीछे बनवादी जिससे स्तम्भ की भी मरम्मत हो गई है।

(पृ० ३५२)

२—महावीर स्वामी का मन्दिर—जैन कीर्तिस्तम्भ के पास ही महावीर स्वामी का मन्दिर है, जिसका जीर्णोद्धार महाराणा कुम्भा के समय वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में ओसवाल

---

‡ राजपूताने का इ० प० जि० पृ० ३५७।

महाजन गुणराज ने कराया था, इस समय यह मन्दिर टूटी-फूटी दशा मे पड़ा हुआ है।" (पृ० ३५२)

३—जैनमन्दिर—चित्तौडदुर्ग पर 'गोमुख' नाम का प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ दो दालानों में तीन जगह गोमुखो से शिव-लिंगों पर पानी गिरता है। इन दालानो के सामने ही 'गोमुख' नामक जल का सुविशाल कुँड है जहाँ लोग स्नान करते हैं। गोमुख के निकट महाराणा रायमल के समय का बना हुआ एक छोटा सा जैनमन्दिर है, जिसकी मूर्ति दक्षिण से यहाँ लाई गई थी, क्योंकि उस मूर्ति के ऊपर प्राचीन कनड़ी लिपि का लेख है और नीचे के भाग में उस मूर्ति की यहाँ प्रतिष्ठा किये जाने के सम्बन्ध मे वि० सं० १५४३ का लेख पीछे से नागरी लिपि में खोदा गया है। (पृ० ३५४)

४—सतवीस देवलां—चित्तौड़दुर्ग पर पुराने महलो का 'बड़ीपोल' नामक द्वार आता है। इस द्वार से पूर्व मे कई एक जैनमन्दिर टूटी फूटी दशा में खडे हैं और उनमें से 'सतवीस देवला' (सत्ताईस मन्दिर) नामक जिनालय मे खुदाई का काम बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इसी के पास आज कल महाराणा फतहसिंह के नये महल बने हुए हैं। (पृ०३५६)

५—शान्तिनाथ का मन्दिर—चित्तौड़ दुर्ग पर पुराने राजमहलो के निकट उत्तर की तरफ सुन्दर खुदाई के कामवाला एक छोटा सा मन्दिर है, जिसको श्रृंगारचँवरी कहते हैं। इसके मध्य मे एक छोटी सी वेदी पर चार स्तम्भ वाली छत्री बनी हुई है।

श्रीयुत ठाकुरप्रसादजी शर्मा ने चित्तौड़ की यात्रा करते हुये भावावेश में क्या खूब लिखा है :—

हिम पर्वत से अधिक उच्च है, गौरवयुत यह पर्वत ठाम ।
महा तुच्छ है इसके सन्मुख, स्वर्ण-मेरु कैलाश ललाम ॥१॥
सब से ऊपर वहाँ हमारी, कीर्ति-ध्वजा फहराती है ।
पग-पग पर पावन पृथिवी, वर-वीर-कथा बतलाती है ॥ २॥
पूर्वज-वीर-अस्थियो का है, यह अभेद्य गढ बना हुआ ।
है सर्वत्र प्रबल सिंहों के, उष्ण रक्त से सना हुआ ॥ ३ ॥
शुचि सबला रमणी-गण ने, निज जौहर यही दिखाया था ।
निज शरीर भस्मावशेष से, पावन इसे बनाया था ॥ ४ ॥
युद्ध-समय रमणी प्रियतम से, कहती यही वचन गम्भीर ।
"धर्म-विजय अथवा शूरों की, मृत्यु प्राप्त कर आना वीर ॥५॥
जो कायर हो, कार्य किये बिन, कहीं भाग तुम आओगे ।
तो प्रवेश उस अधम देह से, नाथ ! न गृह में पाओगे ॥६॥
इन सब पत्थर के टुकड़ों को, भक्ति सहित तुम करो प्रणाम ।
यही रुधिर सुरसरि में बहकर, बने राष्ट्र के सालिगराम॥७॥
तनिक कृपा कर हमें बताओ, हे इतिहास-निपुण देवेश !
चलते समय वीर जयमल ने, तुम्हें दिया था क्या सन्देश॥८॥
हे चित्तौड़ ! जगत में केवल, तू सर्वस्व हमारा है ।
दुखी, निराश्रित भारत का, बस तूही एक सहारा है ॥९॥
तेरे लिये सदा हम हैं, संसार छोड़ने को तैय्यार ।
तेरे बिना रसातल को, चला जायगा यह संसार ॥१०॥

अहो ! यह वही पूज्यस्थल है, जहाँ खड़े थे लाखों वीर।
गौरव-रक्षा हेतु हुये थे, पर्वत सम दृढ़ मनुज शरीर ॥ ११ ॥
शत्रु-सैन्य-सागर की लहरें, आईं इसे हटाने को।
झुका न वह पर चूर हुआ, चिरजीवित द्वीप बनाने को ॥१२॥
इसी धूल में यहाँ नहाकर, होऊँगा मैं महा पवित्र।
खुदा रहेगा सदा हृदय पर, पावन वीर-भूमि का चित्र ॥१३॥
शीश झुकाऊँगा मैं उसको, सायं प्रातः दोनों काल।
कठिन काल आने पर उसका, ध्यान करूँगा मैं तत्काल॥ १४॥
होकर यह स्वर्गीय चन्द्र-सम, सुखद किरण फैलाता है।
नीच कुटिलता पृथिवी पर, प्रबल प्रताप बढ़ाता है ॥ १५ ॥
निज कर्तव्य पूर्ण करने का, यह हम को देता उपदेश।
स्वार्थ-सिद्धि-हित आत्म-त्याग का, देता ईश्वरीय संदेश ॥१६॥
वीर देवियों की सुख-शैया, चिता हृदय में जलती है।
सिंह-मूर्ति अति प्रबल काल की, दृष्टि संग ही चलती है ॥१७॥
युद्ध-नाद सुस्पष्ट यहाँ पर, अभी सुनाई देता है।
मधुर गान का एक शब्द फिर, इन सब को ढक लेता है॥१८॥
हे! दृढ़ साहसयुक्त वीरगण! तुम्हें कोटिशः बार प्रणाम्।
कब फिर भारत में होंगे नर, तुमसे नीति-निपुण गुण-धाम॥१९॥
हम से कुटिल नीच पुरुषों को, है शतकोटि बार धिक्कार।
रक्षा होगी तभी हमारी जब, तुम फिर लोगे अवतार *॥२०॥

---

* श्री० गोविन्दसिंहजी पंचोली चित्तौड़ की कृपा से प्राप्त।

उदयपुर

"मेवाड़ की राजधानी पहिले चित्तौड़गढ़ थी, परन्तु वह गढ सुदृढ होने पर भी एक ऐसी लम्बी पहाड़ी पर वना हुआ है, जो अन्य पर्वत-श्रेणियों से पृथक् आगई है; अतएव शत्रु उसका घेरा डालकर किले वालों के पास वाहर से रसद आदि का पहुँचना सहज ही वन्द कर सकता है। यही कारण था कि यहाँ कई वार वड़ी-वड़ी लड़ाइयो मे किले के लोगों को भोजनादि सामग्री खतम हो जाने पर, विवश दुर्ग के द्वार खोल कर शत्रु-सेना से युद्ध करने के लिये वाहर आना पडा। इसी असुविधा का अनुभव करके महाराणा उदयसिंह ने चारो तरफ पर्वतों से घिरे हुये सुरक्षित स्थान में उदयपुर नगर वसाकर उसे मेवाड की राजधानी वनाया। उदयपुर शहर पीछोला तालाव के पूर्वी किनारे की उत्तर दक्षिण-स्थित पहाड़ी के दोनों पार्श्व पर वसा हुआ है। इसके पूर्व तथा उत्तर मे समान भूमि आगई है; जिधर नगर वढ़ता जाता है। शहर पुराने ढंग का वना हुआ है और एक वड़ी सडक को छोडकर वहुधा सब रास्ते व गलियाँ तंग हैं। इस की चारों तरफ शहर पनाह है, जिसमें स्थान-स्थान पर वुर्जे वनी हुई हैं। नगर के उत्तर तथा पूर्व में, जहाँ शहर पनाह पर्वतमाला से दूर है, एक चौडी खाई कोट के पास पास खुदी हुई है। शहर के दक्षिणी भाग में पहाडी की ऊँचाई पर पीछोले के किनारे पुराने राजमहल वडे ही सुन्दर और प्राचीन शैली के वने हुये हैं। पुराने महलो में

मुख्य छोटी चित्रशाली, सूरज चौपाड़, पीतमनिवास, मानिक-महल, मोती महल, चीनी की चित्रशाली, दिलखुशाल, बाड़ीमहल (अमरविलास) मुख्य हैं। पुराने महलों के आगे अंग्रेजी तर्ज का शंभु-निवास नाम का नया महल और उसके निकट महाराणा फतहसिंह का बनवाया हुआ शिवनिवास नामक सुविशाल महल लाखों रुपयों की लागत से तैयार हुआ है। राजमहल शहर के सब से ऊँचे स्थान पर बनाये जाने के कारण और इनके नीचे ही विस्तीर्ण सरोवर होने से इनकी प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ी चढ़ी है" +।

शहर में अनेक देखने योग्य स्थान हैं जिन्हें यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं लिखा जा सकता। यहाँ की मनुष्य-संख्या सन १९२१ में ४४०३५ के करीब थी। दिगम्बरों के ८ शिखरबन्द मंदिर तथा ५ चैत्यालय हैं और उन सब में ६८५ के करीब धर्मशास्त्र हैं †। श्वेताम्बरों के छोटे बड़े सब २५ मन्दिर हैं ‡। इन में कितने ही मन्दिर अत्यन्त सुन्दर बने हुए हैं।

उदयपुर राज्य में अनेक प्राचीन स्थान देखने योग्य हैं किन्तु यहाँ स्थानाभाव के कारण मान्य ओझाजी कृत राजपूताने के इतिहास से केवल प्राचीन जैनमन्दिरों का उल्लेख किया जाता है-

---

\+ राजपूताने का इ० पृ० ३३९।

† दि० जैन डिरेक्टरी पृ० ४६९।

‡ जैन तीर्थ गाइड पृ० १५९।

केशरियानाथ (ऋषभदेव)—

"उदयपुर से ३९ मील दक्षिण मे खैरवाडे की सड़क के निकट कोट से घिरे हुये धूलदेव नामक कस्बे में ऋषभदेव का प्रसिद्ध जैनमन्दिर है। यहाँ की मूर्ति पर केशर बहुत चढ़ाई जाती है †। जिससे इनको केसरियाजी या केसरियानाथ भी कहते हैं। मूर्ति काले पत्थर की होने के कारण भील लोग इनको कालाजी कहते हैं। ऋषभदेव विष्णु के २४ अवतारों में से आठवे अवतार होने से हिन्दुओं का भी यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। भारतवर्ष के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन एवं मारवाड़, मेवाड़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, ईडर आदि राज्यों के शैव, वैष्णव आदि यहाँ यात्रार्थ आते हैं। भील लोग कालाजी को अपना इष्टदेव मानते हैं और उन लोगों में इनकी भक्ति यहाँ तक है कि केसरियानाथ पर चढ़े हुये केसर को जल में घोलकर पी लेने पर वे—चाहे जितनी विपत्ति उनको सहन करनी पड़े—झूठ नहीं बोलते।"

"हिन्दुस्तान भर में यही एक ऐसा मन्दिर है, जहाँ दिगम्बर तथा श्वेताम्बर जैन और वैष्णव, शैव, भील एवं तमाम सच्छूद्र स्नान कर समान रूप से मूर्ति का पूजन करते हैं। प्रथम द्वार से, जिस पर नक्कारखाना बना है, प्रवेश करते ही बाहरी परिक्रमा का

---

† यहाँ पूजन की मुख्य सामग्री केसर ही है और प्रत्येक यात्री अपनी इच्छानुसार केसर चढ़ाता है। कोई कोई जैन तो अपने बच्चा आदि को केसर से तोलकर वह सारी केसर चढ़ा देते हैं। प्रातःकाल के पूजन मे जल प्रक्षालन, दुग्ध प्रक्षालन, अतर लेपन आदि होने के पीछे केसर का चढ़ना प्रारम्भ होकर एक बजे तक चढ़ती ही रहती है।

में लगे हुये शिलालेख से स्पष्ट है कि काष्टासंघ के नदीतट गच्छ और विद्यागण के भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति के समय में बघेरवाल जाति के गोवाल गोत्री संघवी (संघपति) आल्हा के पुत्र भोज के कुटुम्बियों ने यह मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा महोत्सव किया ‡। इस मन्दिर से आगे की देवकुलिका की दीवार में भी एक शिलालेख लगा हुआ है, जिस का आशय यह है कि वि० सं० १७५४ पौष वदि ५ को काष्ठासंघ के नदीतटगच्छ और विद्यागण के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के उपदेश से हूँबड़ जाति की वृद्ध शाखावाले विश्वेश्वर गोत्री साह आल्हा के वंशज सेठ भूपत के वंश वालों ने यह लघु प्रासाद बनवाया। इन चारों शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ऋषभदेव के मन्दिर तथा कुलिकाओं का अधिकांश काष्टासंघ के भट्टारकों के उपदेश से उनके दिगम्बरी अनुयाइयों ने बनवाया था। शेष सब देवकुलिकाएँ किसने बनवाई, इस विषय का कोई लेख नहीं मिला।"

"ऋषभदेव की वर्तमान मूर्ति बहुत प्राचीन होने से उसमें कई जगह खड्डे पड़ गये थे, जिससे उनमें कुछ पदार्थ भर कर उनको ऐसा बना दिया है कि वे मालूम नहीं होते। यह प्रतिमा डूंगरपुर राज्य की प्राचीन राजधानी बड़ौदे (वटपद्रक) के जैन-मन्दिर से लाकर यहाँ पधराई गई है। बड़ौदे का पुराना मन्दिर गिर गया है और उसके पत्थर वहाँ वटवृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर चुने हुये हैं। ऋषभदेव की प्रतिमा बड़ी भव्य और तेजस्वी है, इसके साथ

---

‡ यह शिलालेख प्राचीन जैन इतिहास के लिये बड़े काम का है, क्योंकि इसमें नदी तट गच्छ की उत्पत्ति तथा उक्त गच्छ के आचार्यों की परम्परा दी हुई है।

के विशाल परिकर मे इन्द्रादि देवता बने हैं और दोनों पार्श्व पर दो नग्न काउसगिये (कायोत्सर्ग स्थिति वाले पुरुष) खड़े हुये हैं। मूर्ति के चरणो के नीचे छोटी छोटी ९ मूर्तियाँ हैं, जिनको लोग 'नवग्रह' या 'नवनाथ' बतलाते हैं। नवग्रहों के नीचे १६ स्वप्ने खुदे हुये हैं; जिनके नीचे के भाग मे हाथी, सिंह, देवी आदि की मूर्तियाँ और उनके नीचे दो बैलो के बीच मे देवी की एक मूर्ति बनी हुई है। निजमन्दिर की बाहरी पार्श्व के उत्तर और दक्षिण के ताकों तथा देव कुलिकाओं के पृष्ठ भागो मे भी नग्न मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

मूलसंघ के बलात्कार गणवाले कमलेश्वर गोत्री गांधी विजय-चंद्र ने वि० सं० १८८३ (ई० स० १८०६) में इस मन्दिर के चौतरफ एक पक्का कोट बनवाया। वि०सं०१८८९ (ई०स०१८३२) में जैसलमेर (उस समय उदयपुर के) निवासी ओसवाल जाति की वृद्ध शाखावाले बाफणा गोत्री सेठ गुमानचन्द बहादुरमल के कुटुम्बियों ने प्रथम द्वार पर का नक्कारखाना बनवाकर वर्तमान ध्वजादंड चढाया।

इस मन्दिर के खेला मंडप में तीर्थंकरों की २२ और देवकु-लिकाओं में ५४ मूर्तियाँ विराजमान हैं । देवकुलिकाओं मे वि० सं० १७५६ की बनी हुई विजयसागर सूरि की मूर्ति भी है और पश्चिम की देवकुलिकाओं में से एक में अनुमान ६ फुट ऊँचा ठोस पत्थर का एक मन्दिर सा बना हुआ है, जिस पर तीर्थंकरों की बहुतसी छोटी छोटी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इसको लोग गिरनार

जी का बिम्ब कहते हैं। उपर्युक्त ७६ मूर्तियों में से १४ पर लेख नहीं है। लेखवाली मूर्तियों में से ३८ दिगम्बर सम्प्रदाय की और ११ श्वेताम्बरों की हैं। शेष पर लेख अस्पष्ट होने या चूना लग जाने के कारण उनका ठीक २ निश्चय नहीं हो सका। लेख वाली मूर्तियाँ वि० सं० १६११ से १८६३ तक की हैं और उन पर खुदे हुये लेख जैनों के इतिहास के लिये बड़े उपयोगी हैं।

नौचौकी-मंडप के दक्षिणी किनारे पर पाषाण का एक छोटासा स्तम्भ खड़ा है, जिसके चारों ओर तथा ऊपर नीचे छोटे छोटे १० ताक खुदे हैं। मुसलमान लोग इस स्तम्भ को मसजिद का चिन्ह मानते हैं और उसके नीचे की परिक्रमा में खड़े रहकर वे लोबान जलाते, शीरनी (मिठाई) चढ़ाते और धोक देते हैं †।

उदयपुर-राज्य के अधिकार में जो विष्णु-मन्दिर हैं, उनके समान यहाँ भी विष्णु के जन्माष्टमी, जलझूलनी, आदि त्योहार मन्दिर की तरफ से मनाये जाते हैं। चौमासे में इस मन्दिर में श्रीमद्भागवत की कथा होती है, जिसकी भेट के निमित्त राज्य की तरफ से ताम्रपत्र कर दिया गया है और ऋषभनाथजी के भोग के लिये एक गाँव भी भेट हुआ था। मन्दिर के प्रथम द्वार के पास खड़े हुये महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के शिलालेख में बेगार की मनाई करने, ऋषभदेवजी की रसोई का काम नाथजी

† मुसलमान लोग मन्दिरों को तोड़ देते हैं, जिससे उनके समय के बने हुये बड़े मन्दिरों आदि में उनका कोई पवित्र चिन्ह इस अभिप्राय से बना दिया जाता था कि उसको देखकर वे उनको न तोड़ें।

के सुपुर्द करने तथा उस सम्बन्ध का ताम्रपत्र अखेहजी नाथजी (भंडारी) के पास होने का उल्लेख है। पहिले अन्य विष्णु मंदिरों के समान यहाँ भी भोग लगता था और भोग तैयार होने के स्थान को 'रसोड़ा' कहते थे। अब तो इस मन्दिर मे पहले की तरह भोग नहीं लगता और भोग के स्थान मे भंडार की तरफ से होने वाले पूजा प्रत्ताल में फल और सूखे मेवे न्मादि के साथ कुछ मिठाई रखदी जाती है।

महाराणा साहब इस मन्दिर मे द्वितीय द्वार से नही, किन्तु वाहरी परिक्रमा के पिछले भाग मे वने हुये एक छोटे द्वार से प्रवेश करते हैं, क्योकि दूसरे द्वार के ऊपर की छत मे पाँच शरीर और एक सिर वाली एक मूर्ति खुदी हुई है, जिसको लोग 'छत्र-भंग' कहते हैं। इसी मूर्ति के कारण महाराणा साहब इसके नीचे होकर दूसरे द्वार से मन्दिर में प्रवेश नही करते।

मन्दिर का सारा काम पहले भंडारियो के अधिकार मे था और इसकी सारी आमद उनकी इच्छानुसार खर्च की जाती थी, परन्तु पीछे से राज्य ने मन्दिर की आय में से कुछ हिस्सा उनके लिये नियत कर बाकी के रुपयों की व्यवस्था करने के लिये एक जैन कमेटी ‡ बनादी है और देवस्थान के हाकिम का एक नायब मन्दिर के प्रबन्ध के लिये वहाँ रहता है।

मन्दिर मे पूजन करने वाले यात्रियों के लिये नहाने-धोने का अच्छा प्रबन्ध है। पूजन करते समय स्त्री-पुरुषों के पहनने के

‡ इसके सदस्य श्वेताम्बरी और दिगम्बरी दोनों होते हैं।—गोयलीय।

लिये शुद्ध वस्त्र भी वहाँ हर वक्त तैयार रहते हैं और जिन को आवश्यकता हो उनको वे मिल सकते हैं। मन्दिर एवं धनाढ्यों की तरफ़ से कई एक धर्मशालायें भी बन गई हैं। जिससे यात्रियों को धूलेव में ठहरने का बड़ा सुभीता रहता है।†

उदयपुर से ऋषभदेव तक का सारा मार्ग बहुधा भीलों ही की बस्ती वाले पहाड़ी प्रदेश में होकर निकलता है, परन्तु वहाँ पक्की सड़क बनी हुई है और महाराणा साहब ने यात्रियों के आराम के लिये ऋषभदेव के मार्ग पर काया, बारापाल तथा टिड़ीगांवों में पक्की धर्मशालाएँ बनवा दी हैं। परसाद में भी पुरानी पक्की धर्मशाला बनी हुई है। मार्ग निर्जन वन तथा पहाड़ियों के बीच होकर निकलता है तो भी रास्ते में स्थान स्थान पर भीलों की चौकियाँ बिठला देने से यात्रियों के लुट जाने का भय बिल्कुल नहीं रहा। प्रत्येक चौकी पर राज्य की तरफ से नियत किये हुवे कुछ पैसे देने पड़ते हैं। ऋषभदेव जाने के लिये उदयपुर में बैल-गाड़ियाँ तथा तांगे मिलते हैं और अब तो मोटरों का भी प्रबन्ध हो गया है। (पृ० २४४-४९)

ऋषभदेव का मन्दिर—

मांडलगढ़ क़िले में सागर और सागरी नाम के दो जलाशय हैं, जिनका जल दुष्काल में सूख जाया करता था, इस लिये वहां के अध्यक्ष (हाकिम) महता अगरचन्द्र ने सागर में दो कु-

† सरकारी हस्पताल और औषधालय है जहाँ दवा मुफ्त दी जाती है। [illegible] भी है। — सम्पादक।

खुदवा दिये, जिनमें जल कभी नहीं टूटता यहाँ एक ऋषभदेव का जैनमन्दिर है। (पृ० ३६१)

बीजोल्यां में जैनमंदिर—

बीजोल्याँ के कस्बे से अग्निकोण मे अनुमान एक मील के अंतर पर एक जैनमन्दिर है, जिसके चारो कोनो पर एक-एक छोटा मन्दिर और बना हुआ है। इन मन्दिरो को पंचायतन कहते हैं और ये पाँचों मन्दिर कोट से घिरे हुये हैं। इनमें से मध्य का अर्थात् मुख्य मन्दिर पार्श्वनाथ का है। मन्दिर के बाहर दो चतुरस्र स्तम्भ बने हुये हैं, जो भट्टारको की नसियाँ हैं। इन देवालयो से थोड़ी दूर पर जीर्ण-शीर्ण दशा मे 'रेवतीकुण्ड' हैं। पहले दिगम्बर सम्प्रदाय के पोरवाड़ महाजन लोलाक ने यहाँ पार्श्वनाथ का तथा सात अन्य मन्दिर बनवाये थे, जिनके टूट जाने पर ये पाँच मन्दिर बनाये गये हैं। यहाँ पर पुरातत्त्ववेताओं का ध्यान विशेप आकर्षित करने वाली दो वस्तुएँ हैं, जिनमे से एक तो लोलाक का खुदवाया हुआ अपने निर्माण कराये हुये देवालयो के सम्बन्ध का शिलालेख और दूसरा ' उन्नतिशिखरपुराण ' नामक दिगम्बर-जैनग्रन्थ है। बीजोल्या के निकिट भिन्न २ आकृति के चपटे कुदरती चट्टान अनेक जगह निकले हुए हैं। ऐसे ही कई चट्टान इन मन्दिरों के पास भी हैं, जिनमे से दो पर ये दोनों खुदवाये गये हैं। विक्रम संवत् १२२६ फाल्गुण वदि ३ का चौहान राजा सोमेश्वर के समय का लोलाक का खुदवाया हुआ शिलालेख इतिहास के लिये बडे महत्त्व का है, क्योंकि उसमे सामन्त

से लगाकर सोमेश्वर तक सांभर और अजमेर के चौहान राजाओं
की वंशावली तथा उनमें से किसी किसी का कुछ विवरण भी
दिया है। इस लेख में दी हुई चौहानों की वंशावली बहुत शुद्ध है
क्योंकि इसमें खुदे हुए नाम शेखावाटी के हर्षनाथ के मन्दिर में
लगी हुई वि० सं० १०३० की चौहान राजा सिंहराज के पुत्र
विग्रहराज के समय की प्रशस्ति, किनसरिया (जोधपुर राज्य में)
से मिले हुए सांभर के चौहान राजा दुर्लभराज के समय के वि०
सं० १०५६ के शिलालेख तथा 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य में
मिलने वाले नामों से ठीक मिल जाते हैं। उक्त लेख में लोलाक के
पूर्व पुरुषों का विस्तृत वर्णन और स्थान-स्थान पर बनवाये हुए
उनके मन्दिरादि का उल्लेख है। अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज
(दूसरे) ने मोराकुरीगाँव और सोमेश्वर ने रेवणागाँव पार्श्वनाथ
के उक्त मन्दिर के लिये भेंट किया था । "उन्नतिशिखरपुराण"
भी लोलाक ने उसी संवत् में यहाँ खुदवाया था और इस समय
इस पुराण की कोई लिखित प्रति कहीं विद्यमान नहीं है। बीजोल्यां
के राव कृष्णसिंह ने इन दोनों चट्टानों पर पक्के मकान बनवा कर
उनकी रक्षा का प्रशंसनीय कार्य किया है। (पृ० ३३३-३४)

देलवाड़ा के जैनमन्दिर

एकलिंगजी चार मील उत्तर में देलवाड़ा (देवकुल पाटक)
गाँव वहाँ के झाला सरदार की जागीर का मुख्य स्थान है। यहां
पहले बहुत से श्वेताम्बर-जैनमन्दिर थे, उनमें से तीन अब तक
विद्यमान हैं, जिनको वसही (वसति) कहते हैं। इनमें से एक

आदिनाथ का और दूसरा पार्श्वनाथ का है। इन मन्दिरों तथा इनके तहखानों मे रक्खी हुई भिन्न२ तीर्थंकरो, आचार्यों एवं उपाध्यायों की मूर्तियों के आसनो तथा पाषाण के भिन्न २ पट्टों आदि पर खुदे हुये लेख वि० सं० १४६४ से १६८९ तक के हैं। पहले यहाँ अच्छे धनाढ्य जैनो की आबादी थी और प्रसिद्ध सोमसुन्दरसूरि का जिनको 'वाचक' पदवी वि० सं० १४५० (ई० स० १३९३) में मिली थी, कई वार यहाँ आगमन हुआ, उनका यहाँ वहुत कुछ सम्मान हुआ और उनके यहा आने के प्रसंग पर उत्सव भी मनाये गये थे, ऐसा 'सोमसौभाग्य' काव्य से पाया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ के एक मन्दिर का जीर्णोद्धार करते समय मन्दिर के कोट के पीछे के खेत मे से १२२ जिन प्रतिमाएँ तथा दो एक पाषाण पट्ट निकले थे। ये प्रतिमाएँ मुसलमानो के चढ़ाइयों के समय मन्दिरो से उठाकर यहाँ गाड़ दी गई हों, ऐसा अनुमान होता है। महाराणा लाखा के समय से पूर्व का यहाँ कोई शिलालेख नहीं मिलता। महाराणा मोकल और कुम्भा के समय यह स्थान अधिक सम्पन्न रहा हो, ऐसा उनके समय की वनी हुई कई मूर्तियों के लेखो से अनुमान होता है। देलवाडे के बाहर एक कलाल के मकान के सामने के खेत में कई विशाल मूर्तियाँ गढी हुई हैं, ऐसी खवर मिलने पर मैंने वहाँ खुदवाया तो चार बड़ी २ मूर्तियाँ निकलीं, जो खंडित थी और उनमे से कोई भी महाराणा कुम्भा के समय से पूर्व की न थीं। (पृ०३६६-६७)।

करेड़ा का जैनमन्दिर—

उदयपुर-चित्तौड़गढ़-रेल्वे के करेड़ा स्टेशन के पास ही श्वेत पाषाण का बना हुआ पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर है । मन्दिर के मण्डप की दोनों तरफ छोटे २ मण्डप वाले दो और मन्दिर बने हुए हैं। उनमें से एक मंडप में अरबी का एक लेख है, जो पीछे से मरम्मत कराने के समय वहाँ लगा दिया गया हो, ऐसा अनुमान होता है। मंडप में जंजीर से लटकती हुई घंटियों की आकृतियाँ बनी हैं, जिस पर से लोगों ने यह प्रसिद्धि की है कि इस मन्दिर के बनाने में एक बनजारे ने सहायता दी थी, जिस ने उसके बैलों के गले में बान्धी जाने वाली जंजीर सहित घंटियों की आकृतियाँ यहाँ अंकित की गई हैं, परन्तु यह भी कल्पना मात्र है, क्योंकि जैन, शैव, वैष्णवों के अनेक प्राचीन मन्दिरों के खंभों पर ऐसी आकृतियाँ बनी हुई मिलती हैं। जो एक प्रकार की सुन्दरता का चिन्ह मात्र था। मंडप के ऊपरी भाग में एक ओर मसजिद की आकृति बनी हुई है जिसके विषय में लोग यह प्रसिद्ध करते हैं कि जब बादशाह अकबर यहाँ आया था, तब उसने इस मन्दिर में यह मसजिद की आकृति इस अभिप्राय से बनवाई थी कि भविष्य में मुसलमान इसे न तोड़ें, परन्तु वास्तव में मन्दिर के निर्माण कराने वालों ने मुसलमानों का यह पवित्र चिन्ह इसी विचार से बनाया है कि इसको देखकर वे मन्दिर को न तोड़ें, जैसा कि मुसलमानों के समय के बने हुए अन्य मन्दिरादि के सम्बन्ध में इधर उद्धृत किया गया है। मन्दिर में स्थान कई [illegible] की [illegible]

हुई पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है, जिस पर खुदे हुए लेख से पाया जाता है कि वह वि० सं० १६५६ मे वनी थी। लोग यह भी कहते हैं कि यहाँ मूर्ति के ठीक सामने के एक भाग में एक छिद्र था, जिसमें होकर पौष शुक्ला १० को सूर्य की किरणे इस प्रतिमा पर पड़ती थीं, उस समय यहाँ एक वड़ा भारी मेला भरता था, परन्तु महाराणा सरूपसिंह के समय से यह मेला वन्द हो गया। पीछे से जीर्णोद्धार कराते समय उधर की दीवार ऊँची वनाई गई, जिस से अव सूर्य की किरणें मूर्ति पर नहीं गिरतीं। थोड़े पूर्व इस मंदिर की फिर मरम्मत होकर सारे मन्दिर पर चूना पोत दिया गया जिससे इसके श्वेत पाषाण की शोभा नष्ट हो गई है। कई देशी एवं विदेशी श्वेताम्बर जैन यहाँ यात्रार्थ आते हैं और एक धर्मशाला भी यहाँ वन गई हैं।" (पृ० ३६७-६८)
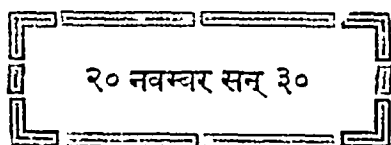
मेवाड़-गौरव

कुछ बात है जो हस्ती, मिटती नहीं हमारी ।
सदियों रहा है दुश्मन, दौरे जहाँ हमारा ॥

—"इकबाल"

विदेशीय—गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, पठान, और मुगल-वंश के बादशाहों ने अपने अपने समय में भारत पर आक्रमण करके साम्राज्य स्थापित किये। वह आन्धी की तरह समस्त भारत में फैल गये, अनेकों अनेकों सत्ताधीश उखाड़ कर फैंक दिये गये किन्तु मेवाड़ चट्टान के समान अचल बना रहा, उसने अनेक आपत्ति के प्रलयकारी झोंके सहन किये, तथापि वह अपनी मान-मर्यादा से तनिक भी विचलित नहीं हुआ । समस्त भारत में आतङ्क फैलाने वाले बादशाहों के साम्राज्य तो क्या, आज उनके वंशजों के पास गज भर जमीन भी नहीं है, पर मेवाड़ अपनी उसी मर्यादा पर आज भी विद्यमान है, जो आज से १३०० वर्ष

पूर्व था †। उसका एक एक अणु इस प्राचीन पद्य की साची दे रहा है कि—

'जो दृढ़ राखै धर्म को, तिहि राखे कर्तार'

राजपूताने के आधुनिक प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता श्री० ओझाजी लिखते हैं —

"इस छोटे से राज्य ने जितने वर्षों तक उस समय के सब से अधिक सम्पन्न साम्राज्य का वीरता पूर्वक मुकाबिला किया, वैसे उदाहरण सम्पूर्ण संसार के इतिहास मे बहुत कम मिलेंगे।

केवल राजपूताने की रियासतो के ही नहीं, परन्तु संसार के अन्य राज्यों के राजवंशों से भी उदयपुर का राजवंश अधिक प्राचीन है। उदयपुर का राजवंश वि० सं० ६२५ (ई० स०५६८) के आसपास से लगाकर आज तक समय के अनेक हेर फेर सहते हुये भी उसी प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है। १३५० से भी अधिक वर्ष तक एक ही प्रदेश पर राज्य करने वाला संसार

† उक़ाबी शान से झपटे थे, जो वे बालो-पर निकले।
सितारे शाम के खूने शफ़क मे डूब कर निकले॥
हुये मदफ़ून दरिया ज़ेर, दरिया तैरने वाले।
तमाचे मौज के खाते थे, जो बनकर गुहर निकले॥
गुबारे रहगुज़र हैं, कीमया पर नाज़ था जिनको।
जबीनें खाक पर रखते थे, जो अक्सीर गर निकले॥
हमारा नर्मरोकासिद पयामे ज़िन्दगी लाया।
ख़बर देती थी जिनको बिजलियाँ वह बेख़बर निकले॥
—"इकबाल"

में शायद ही कोई दूसरा राजवंश होगा । प्रसिद्ध ऐतिहासिक-फरिश्ता ने इस वंश की प्राचीनता के विषय में लिखा है :—

"राजा विक्रमादित्य (उज्जैन वाले) के बाद राजपूतों ने उन्नति की । मुसलमानों के भारतवर्ष में आगमन से पूर्व यहाँ पर बहुत से स्वतंत्र राजा थे, परन्तु सुलतान महमूद गज़नवी तथा उसके वंशजों ने बहुतों को अपने आधीन किया । तदनन्तर शहाबुद्दीन गौरी ने अजमेर और दिल्ली के राजाओं को जीता । बाकी के बचे को तैमूर के वंशजों ने अपने आधीन किया । यहाँ तक कि विक्रमादित्य के समय से जहाँगीर तक कोई पुराना राजवंश न रहा ; परन्तु राणा ही ऐसे राजा हैं, जो मुसलमान धर्म की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे और आज तक राज्य करते हैं । [illegible]

प्राचीनता में ही नहीं, अन्य बहुत सी बातों के कारण मेवाड़ (उदयपुर) का इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है । मेवाड़ का इतिहास अधिकांश में स्वतंत्रता का इतिहास है । जब तत्कालीन सभी हिन्दू राजा मुगल-साम्राज्य की शासन-सत्ता के सामने अपनी स्वतंत्रता स्थिर न रख सके और उन्होंने अपने सिर झुका लिये, तब भी नाना प्रकार के कष्ट और अनेक आपत्तियाँ सहते हुये भी मेवाड़ ने ही सांसारिक सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य का त्याग करके भी अपनी स्वतंत्रता और कुल-गौरव की रक्षा की । यही कारण है कि आज भी मेवाड़ (उदयपुर) के महाराणा 'हिन्दुआ सूरज'

अपनी आन और मान पर स्थिर रहने वाले जिस मेवाड़ ने लगातार ८०० वर्ष तक विदेशीय बादशाहो से युद्ध करके लोहा लिया और समस्त संसार मे अपना आसन ऊँचा किया है। उसी मेवाड़ के मंत्री, कोपाध्यक्ष दण्ड-नायक आदि जैसे जिम्मेदारी के पदों पर अनेक जैनधर्मावलम्बी प्रतिष्ठित होते रहे हैं । जब कि उस युद्ध-काल के समय मे अच्छे २ कुलीन राजपूत नरेश, बादशाहों की ओर मिल रहे थे, विश्वासघात और षड्यन्त्रो का बाज़ार गर्म था। भाई को भाई निगल जाने की ताक में लगा हुआ था, सगे से सगे पर भी विश्वास करने के लिये दिल नहीं ठुकता था । तब ऐसी नाजुक परिस्थिति में ऐसे प्रतिष्ठित और जोखिमदारी के पदो पर पुश्त दर पुश्त आसीन होते रहना क्या कुछ कम गौरव और ईमानदारी का प्रमाण है ?

राजपूताने में जहाँ आठसौ वर्ष तक प्रलयकारी युद्ध होता रहा, पल-पल मे मान-मर्यादा के चले जाने का भय बना रहता था ज़रा से प्रलोभन मे आजाने या दाव चूक जाने से सर्वस्व नष्ट हो जाने की सम्भावना बनी रहती थी, तब वहाँ इन नर-रत्नों ने कैसे२ आदर्श, वीरता, त्याग आदि के उदाहरण दिखाये, वह आज संसार-सागर में विलीन हैं। इसका कारण यही है कि आज से कुछ दिन पूर्व हमारे यहाँ केवल राजाओ और बादशाहों के जीवन-चरित्र लिखने की परिपाटी थी । सर्व साधारण में कोई कितना ही वीर, सदाचारी प्रतिष्ठित और महान् क्यों न होता, पर, उसके जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के लिखने की कोई आवश्य-

कता महसूस ही नहीं करता था। यही कारण है कि आज तक भारत के अनेक नर-रत्नों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक मतभेद चला आता है—जैसा चाहिये वैसा उनका परिचय ही नहीं मिलता। यही हाल राजपूताने के जैन-वीरों के सम्बन्ध में है। ये बिचारे प्रधान, मंत्री, कोषाध्यक्ष, दण्डनायक आदि सब कुछ रहे, अनेक महान् कार्य किये, फिर भी इनके सम्बन्ध में कुछ लिखा नहीं मिलता। अस्तु

प्रसंगवश जहाँ कहीं थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है, उस से ही पूर्वापर सम्बन्ध मिलाकर पाठक जान सकेंगे कि इन्होंने क्या कुछ कार्य किये।

मेवाड़ के वीर

राणी जयतल्लदेवी

मेवाड़ का राज्यवंश शैव है इस शिशोदयावंश मे शिव की उपासना होती रही है किन्तु कुछ उल्लेख ऐसे भी मिले हैं जिन से प्रकट होता है कि इस राज्यवंश में जैनधर्म के प्रति भी आदर रहा है। यहाँ तक कि कुछ राणा और राणियाँ तो जैनधर्म के उपासक प्रकट रूप में भी रहे है। एक वार रा० रा० वासुदेव गोविन्द आपटे वी.ए. ने अपने व्याख्यान में कहा था—"कर्नल टॉड साहव के राजस्थानीय इतिहास में उदयपुर के घराने के विषय में ऐसा लिखा गया है कि कोई भी जैनयति उक्त संस्थान मे जव शुभागमन करता है, तो रानी साहिवा उसे आदरपूर्वक लाकर योग्य सत्कार प्रवन्ध करती हैं, इस विनय प्रवन्ध की प्रथा वहाँ अव तक जारी है †।" उक्त विद्वान् का कथन सर्वथा सत्य है।

---

† जैनधर्म का महत्व प्र० भा० पृ० ०२ ।

इस गये गुज़रे ज़माने में भी जब कि जैनियों का कोई विशेष प्रभाव नहीं है, महाराणा फतहसिंह (प्रताप के सुयोग्य वंशधर जिनका दो वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो गया है) ने श्रीकेशरिया के मंदिर में क़रीब ढाई लाख की भेंट दी थी, उसी समय का श्री ऋषभनाथ को नमस्कार करते हुये युवराज भूपालसिंह (वर्तमान महाराणा) सहित चित्र भी मिलता है प्रसिद्ध वक्ता मुनि चौथमल के उपदेश से अपने यहाँ कुछ पशुवध पर प्रतिबन्ध भी लगाया था।

लिखने का तात्पर्य्य केवल इतना है कि शैवधर्म की इस वंश में मान्यता होते हुये भी जैन-धर्म को भी इस राज्यघराने में काफ़ी आदर मिला है। यही कारण है कि उक्त राज्य में प्रायः जैनधर्मी ही मुख्यता से मंत्री और कोषाध्यक्ष रहे हैं, जैन यतियों ने प्रश-स्तियाँ लिखी हैं और कितने ही इस घराने की ओर से जैन मन्दिर निर्माण हुये हैं।

जो प्रकटरूप से जैनधर्मी हुये हैं यहाँ उन्हीं का उल्लेख किया जायगा। राणी जयतल्लदेवी महाराणा तेजसिंह (वि० सं० १३२२ ई० सन् १२६५) की पटरानी और वीरकेसरी समरसिंह की माता थी। इसकी जैनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा थी। इसने अनेक जैन-मन्दिर बनवाये। श्री० ओझाजी लिखते हैं:—"तेजसिंह की राणी जयत-ल्लदेवी ने जो समरसिंह की माता थी, चित्तौड़ पर श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था।"[1] "ऑंचलगच्छ की पट्टावलि से पाया जाता है कि उक्त गच्छ के आचार्य अमितसिंह सूरि के उपदेश से

---

[1] राजपूताने का इ० पृ० ४७२ ।

रावल समरसिंह ने अपने राज्य में जीव-हिंसा रोक दी थी। समरसिंह की माता जयतल्लदेवी की जैनधर्म पर श्रद्धा थी, अत उसके आग्रह से या उक्त सूरी के उपदेश से उसने ऐसा किया हो, यह सम्भव है।" ‡

उक्त दो अवतरणों से प्रकट है कि राणी जयतल्लदेवी जैनधर्मावलम्बनी थी, उसने समरसिंह जैसे शूरवीर को प्रसव किया था, जो ऐतिहासिक क्षेत्र में अपनी वीरता के लिये काफी प्रसिद्ध है।

[२० अक्तूबर सन् ३२]

कर्माशाह

मेवाड़-नरेश राणा संग्रामसिंह के पराक्रमकारी पुत्र रत्नसिंह के मंत्री कर्माशाह (कर्मसिंह) ने अपने जीवन में क्या क्या लोकोत्तर कार्य किये, इस का कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। केवल "एपिग्राफिआ इण्डिका"-२। ४२-४७ में उस के सम्बन्ध का शत्रुंजयतीर्थ (काठियावाड़ मे पालीताणा के पास) पर से मिला हुआ एक शिलालेख प्रकट हुआ था। जिसको कि मुनि जिनविजयजी ने अपने "प्राचीन जैन-लेख-संग्रह" (द्वितीय भाग) पृ० १-७ में अंकित किया है। यह लेख शत्रुञ्जय पर्वत के ऊपर बने हुये मुख्य मन्दिर के द्वार के बांई ओर एक स्थम्भ पर मोटी शिला पर संस्कृत लिपि में खुदा हुआ है। इस लेख में

‡ राजपूताने का इ० पृ० ४७७

* वंश वृक्ष *

सारणदेव
|
रामदेव
|
लक्ष्मीसिंह
|
भुवनपाल
|
श्रीभोजराज
|
ठकरसिंह
|
खेता
|
नरसिंह
|
तोलाशाह

(स्त्री तारादे उपनाम लीलू)

रत्नाशाह	पोमाशाह	गणाशाह	दशरथ	भोजशाह	कर्माशाह	सूहवि (पुत्री)
रजमलदे	पद्मादे	गउरादे	देवलदे	भावलदे	कमलदे	
स्त्री	पाटमदे	गारवदे	दूरमदे	हर्षमदे	कपूरदे	
श्रीरंग	माणिक, हीरा	देवा	कोल्हा	मंडन		

कर्माशाह की संतान: भीखजी, सोभाबाई, सोनाबाई, मनाबाई, पनाबाई

कर्माशाह का पिता तोलाशाह महाराणा सॉगा का परम मित्र था। महाराणा ने उसे अपना अमात्य बनाना चाहा परन्तु उसने आदर पूर्वक उसका निषेध कर केवल श्रेष्ठी पद ही स्वीकार किया वह बड़ा न्यायी, विनयी, दाता, ज्ञाता, मानी और धनी था। याचकों को हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण आदि बहुमूल्य चीजें दे देकर कल्पवृक्ष की तरह उनका दारिद्र नष्ट कर देता था। जैनधर्म का पूर्ण अनुरागी था।

धर्मरत्नसूरि संघ के सहित यात्रा करते करते जब चित्रकूट में आये तब सूरिजी का आगमन सुनकर महाराणा सॉगा अपने हाथी, घोड़े, सैन्य और वादित्र वगैरह लेकर उनके सन्मुख गये। सूरिजी को प्रणाम कर उनका सदुपदेश श्रवण किया। बाद में बहुत आडम्बर के साथ संघ का प्रवेशोत्सव किया और यथायोग्य सब संघजनों को निवास करने के लिए वासस्थान दिये। तोला शाह भी अपने पुत्रों के साथ संघ की यथेष्ट भक्ति करता हुआ सूरिजी की निरन्तर धर्म देशना सुनने लगा। राणा भी सूरिजी के पास आते थे और धर्मोपदेश सुना करते थे। सूरिजी के उपदेश से संतुष्ट होकर राणा (सॉगा) ने पाप के मूल भूत शिकार आदि दुर्व्यसनों को त्याग दिया।

वहाँ पर एक पुरुषोत्तम नामक ब्राह्मण था जो बड़ा गर्विष्ठ विद्वान और दूसरों के प्रति असहिष्णुता रखने वाला था। सूरिजी ने उसके साथ राजसभा में सात दिन तक वादविवाद कर उसे

पराजित किया इस बात का उल्लेख एक दूसरी प्रशस्ति में भी किया हुआ है। यथा—

कीर्त्या च वादेन जितो महीपान द्विधा द्विजो पै रिह चित्रकूटे।
जितत्रिकूटे नृपतेः समन्न महोभिरहयान तुरङ्ग संख्यैः ॥

कर्माशाह मंत्री होने से पूर्व कपड़े का व्यापार करता था। वंगाल और चीन वगैरह देशों से करोड़ों रुपयों का माल उस की दुकान पर आता जाता था। इस व्यापार में उसने अपरिमित रूप में द्रव्य की प्राप्ति की थी। शाहजादा वहादुरखान ने भी कर्माशाह की दुकान से वहुतसा कपड़ा खरीदा था। जो पीछे से वहादुर शाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शाहजादे की अवस्था में जब वह उधर आया तो आवश्यकता होने पर कर्माशाह ने एक लाख रुपये विना किसी शर्त के दिये। ...... इसी उपकार के वदले में उसने जव वादशाह हुआ शत्रुञ्जय के उद्धार करने की तथा मंदिर वनाने की इजाज़त दी। कर्माशाह ने करोड़ों रुपये इसमें खर्च किये जिसका वर्णन प्रशस्ति में मिलता है।

शिलालेखों एवं प्रशस्तियों में कर्माशाह का नाम कर्मसिंह भी मिलता है। इसके पूर्वजों के नाम भी सिहान्तक हैं।

लिखने का अभिप्राय यह है कि जव से क्षत्रियों के नाम सिहान्तक इतिहास में पाये जाते हैं तव ही से जैन क्षत्रियों (महाजनों) के भी मिलते हैं।

पं० गौरीशंकरजी ने कर्मसिंह को महाराणा रत्नसिंह का मंत्री लिखा है। वह समय लड़ाइयों का था अतएव वह अवश्य वीर

वश सहित मेरा संहार कर डालेगा। मुझ मे इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसका सामना करूँ।" इसके उपरान्त पन्ना देवल को छोड़ कर डूगरपुर नामक स्थान मे गई और वहाँ के रावल ऐशकर्ण (यशकर्ण) के पास राजकुमार को रखना चाहा, परन्तु उसने भी भय के मारे राजकुमार को नही रक्खा। तदुपरान्त विश्वासी और हितकारी भीलो के द्वारा रक्षित हो आरावली के दुर्गम पहाड़ और ईडर के कूट मार्गों को लॉघ कर, कुमार को साथ लिये हुये पन्ना कुँभलमेरु-दुर्ग में पहुँची। यहॉ पर पन्ना की बुद्धिमानी से काम हो गया। देपुरा गोत्र-कुल मे उत्पन्न हुआ आशाशाह देपरा नामक एक जैन उस समय कुंभलमेरु में किलेदार था, पन्ना ने उससे मिलना चाहा; आशाशाह ने प्रार्थना स्वीकार करके विश्राम-गृह में पन्ना को बुलाया। वहॉ पहुँचते ही धात्री ने बालक उदय-सिह को आशाशाह की गोद में बिठाकर कहा— 'आपने राजा के प्राण बचाइये' परन्तु आशाशाह ने अप्रसन्न और भीत होकर कुमार को गोद से उतारना चाहा, आशा की माता भी वहीं पर थी, पुत्र की ऐसी कायरता देखकर उसको फटकारते हुए उपदेश पूर्ण शब्दों मे बोली ‡।'

"आशा! क्या तू मेरा पुत्र नही है? क्या मैंने तुझे व्यर्थ मे पालपोस कर इतना बड़ा किया है? धिक्कार है तेरे जीवन को! क्या ही अच्छा होता जो तू मेरे उर से जन्म ही न लेता, तेरे भार मे पृथ्वी बोझों मरती है। जो मनुष्य विपत्ति में किसी के काम नहीं

‡ टाड् राजस्थान द्वि० खं० अ० १ पृ० २८५–८६।

स्वभाव होता है। वह कर्तव्य-विमुख पुत्र या पति का मुँह देखना नहीं चाहतीं, किन्तु कर्तव्य-परायण की वह बलैयाँ लेती हैं, उनके लिये मिट जाती हैं।"

वीर आशाशाह ने कुमार उदयसिंह को अपना भतीजा कहके प्रसिद्ध किया और युवा होने पर आशाशाह ने उदयसिंह को अन्य सामन्तों की सहायता से चित्तौड़ का सिंहासन दिला दिया। जबकि मेवाड़ के बड़े-बड़े सामन्त, राज्य से बड़ी-बड़ी जागीर पाने वाले चित्तौड़के यथार्थ उत्तराधिकारी कुमार उदयसिंह को शरण न दे सके, तब एक जैन-कुलोत्पन्न महिला ने जो कार्य किया वह अवश्य ही सराहने योग्य है। आज भी इस सभ्यता के युग में जब कि हर-प्रकार की शिकायतों के लिये न्यायालय खुले हुए हैं राजद्रोही को शरण देने वाला दण्डनीय होता है। तब उस ज़माने मे जब कि राजा ही सर्वे-सर्वा होता था, वह बिना किसी अदालत के अपनी इच्छानुसार मनुष्यों के प्राण हरण कर सकता था, तब ऐसे संकटके समय में भी उस महिलारत्न ने जो कार्य कर दिखाया था, वह आदर्श है। यदि इसी प्रकार आज भी जैन-माताएँ अपने पुत्रों को सत्यासत्य कर्तव्य का बोध कराती रहें तो शीघ्र ही इस दुखिया भारत का बेड़ा पार हो जाये।

अभयदान पै वारिये; अमित यज्ञ को दान।

—श्रीवियोगिहरि

[२४ अक्टूबर सन् ३२]

नोट—यह लेख जैनप्रकाश दिसम्बर सन् २८ में प्रकाशित होचुका है अब कुछ परिवर्तन करके पुन लिखा गया है।

भामाशाह का घराना

भारमल

भारमल कावड़िया गोत्रोत्पन्न ओसवाल जाति का महाजन था। मेवाड़ के प्रसिद्ध शूरवीर महाराणा साँगा ने इसको वि० सं० १६१० ई० स० १५५३ में अलवर से बुलाकर रणथम्भोर का क़िलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल बून्दीवाला वहाँ का क़िलेदार नियत हुआ, उस समय भी रणथम्भोर का बहुत सा काम इसी के हाथ में था†। राणा उदयसिंह के शासन-काल में यह उनके प्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुआ। इसके सम्बन्ध की युद्ध-घटनाओं का अभी तक कोई विवरण उपलब्ध नहीं हुआ है। फिर भी महाराणा संग्रामसिंह जैसे प्रसिद्ध-युद्ध-प्रिय व्यक्ति द्वारा इसका अलवर से बुलाया जाना, रणथम्भोर जैसे क़िले का क़िलेदार नियत होना और फिर क़िलेदार से एकदम राणा उदयसिंह का मंत्री होना ही इसके वीरत्व और राज्य-नीतिज्ञ होने के काफ़ी प्रमाण हैं। इसी को मेवाड़ोद्धारक भामाशाह और ताराचन्द्र के भाग्यशाली पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ था।

> सूर-सुतहिं जग जन्म-संग, सहज जंग जागीर।
> समर-मरण में सब मिल्यौ, अरु खिताब रण-धीर॥
>
> — वियोगिहरि

[२५ अक्टूबर सन् ३२]

---

† राजपूताने का इ० तीο ख० पृ ७४३।

ताराचंद

खण्ड-खण्ड है जाय वरु, देतु न पाछे पेंड़।
लरत सूरमा खेत को मरत न छांड़तु मेड़ ॥
—वियोगिहरि

वीर ताराचन्द राणा उदयसिंह के प्रधान भारमल का सुयोग्य पुत्र और मेवाड़ोद्धारक भामाशाह का भाई था। यह स्वभाव से ही वीर प्रकृति का मनुष्य था। हल्दी-घाटी का युद्ध कैसा भयानक हुआ ? इसकी साक्षी इतिहास के पृष्ठ पुकार २ कर दे रहे हैं †। २१ हज़ार राजपूतों ने मेवाड़ की स्वतंत्रता के

---

† इस इतिहास प्रसिद्ध हल्दीघाटी के प्रति श्री० सोहनलाल द्विवेदी ने लिखा है —

वैरागिनि-सी बीहड़ वन में, कहाँ छिपी बैठी एकान्त।
मात आज तुम्हारे दर्शन को, मैं हूँ व्याकुल उद्भ्रान्त ॥
तपस्विनी, नीरव निर्जन में, कौन साधना में तल्लीन।
बीते दिन की मधुरस्मृति में, क्या तुम रहती हो लवलीन ॥
जगतीतल की समरभूमि में, तुम पावन हो लाखों में।
दर्शन दो, तव चरण-धूलि, ले लूँ मस्तक में, आँखों में ॥
तुम में ही हो गये वतन के लिए अनेकों वीर शहीद।
तुम-सा तीर्थस्थान कौन, हम मतवालों के लिए पुनीत ॥
आज़ादी के दीवानों को, क्या जग के उपकरणों में।
मन्दिर मसजिद गिरजा सब तो, बसे तुम्हारे चरणों में ॥

लिए—भारतीय आन के लिये अपने प्राणों की आहुति दे दी; किन्तु देश का दुर्भाग्य कि वह इसे स्वतंत्र न कर सके। हो भी कैसे? जब कि राजपूत-कुलंगार शक्तसिंह (राणा प्रताप के भाई) और आमेराधिपति मानसिंह जैसे शत्रु का पक्ष लेकर अपने देश-वासियों से लड़ रहे थे। इसी संसार-प्रसिद्ध युद्ध में वीर ताराचंद भी राणा प्रताप के साथ था ‡। और प्राणों के तुच्छ मोह को

कहाँ तुम्हारे आँगन में खेला था वह माई का लाल।
वह माई का लाल, जिसे पा करके तुम हो गई निहाल॥

वह माई का लाल, जिसे दुनिया कहती है वीर प्रताप।
कहाँ तुम्हारे आँगन में, उसके पवित्र चरणों की छाप॥
उसके पद-रज की क़ीमत क्या हो सकता है यह जीवन।
स्वीकृत है वरदान मिले, लो चढ़ा रहा अपना कण॥

तुमने स्वतन्त्रता के स्वर में, गाया प्रथम-प्रथम रण-गान।
दौड़ पड़े रजपूत बाँकुरे, सुन-सुन कर आतुर आह्वान॥

हल्दी घाटी, मचा तुम्हारे आँगन में भीषण संग्राम।
रज में लीन हो गये, पल में अगणित राजमुकुट अभिराम॥
युग-युग बीत गये, तब तुमने खेला था अद्भुत रणरंग।
एक बार फिर भरो, हमारे—हृदयों में, माँ वही उमंग॥

गाओ, माँ, फिर एक बार तुम, वे मरने के मीठे गान।
हम मतवाले हों स्वदेश के—चरणों में हँस-हँस बलिदान॥

‡ राजपूताने का इ० ख० ती० पृ० ७४३।

छोड कर अपने प्रतिद्वन्दियों से जूझकर अत्यन्त वीरता पूर्वक युद्ध किया। हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् यह मालवे की ओर चला गया। वहाँ शाहवाजखाँ ने जा घेरा, उसके साथ युद्ध करता हुआ बसी के पास जा पहुँचा और वहाँ घायल होने के कारण बेहोश होकर गिर पडा। बसी के राव सांईदास देवड़ा, घायल ताराचन्द को उठाकर अपने क़िले मे ले गया और वहाँ उस की अच्छी परिचर्य्या की। ताराचन्द गोड़वाड प्रदेश का हाकिम (गवर्नर) भी रहा था और हल्दी घाटी के युद्ध से पूर्व वह सादडी मे रहता था। उसने सादड़ी के वाहर एक वारहदरी और वावड़ी बनवाई, उसके पास ही ताराचन्द उसकी चार स्त्रियाँ एक खवास छ गायनें एक गवैया और उस गवैये की औरत की मूर्तियाँ पत्थरो पर खुदी हुई हैं‡।

[२५ अक्टूबर सन ३२]

भामाशाह

कहत महादानी उन्हें चाटुकार मतिकूर।
पीठहु कौ नहि देत जे, कृपणदान रण-सूर॥
—वियोगिहरि

स्वाधीनता की लीलास्थली वीर-प्रसवा मेवाड-भूमि के इतिहास मे भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। हल्दीघाटी का युद्ध कैसा भयानक हुआ, यह पाठकों ने

‡ रा० पू० म रा० ती० ख० पृ० ७४३।

मेवाड़ के इतिहास में पढ़ा होगा † इसी युद्ध में राणा प्रताप की ओर से वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लड़ा था ‡ २१ हजार राजपूतों ने असंख्य यवन-सेना के साथ युद्ध करके स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाड़ को यवनों द्वारा पद्दलित होने से न बचा सके। समस्त मेवाड़ पर यवनों का आतङ्क छा गया। युद्ध-परित्याग करने पर राणा प्रताप मेवाड़ का पुनरुद्धार करने की प्रबल आकांक्षा को लिये हुये वीरान जंगलो में भटकते फिरते थे। उनके ऐशोआराम में पलने योग्य बच्चे, भोजन के लिये उनके चारों तरफ रोते रहते थे। उनके रहने के लिये कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुग़लों के आक्रमणों के कारण बना बनाया भोजन राणाजी को पाँचबार छोड़ना पड़ा था। इतने पर भी आन पर मिटने वाले समर-केसरी प्रताप विचलित नहीं हुये। वह अपने पुत्रों और सम्बन्धियों को

---

† हल्दीघाटी का यह विख्यात युद्ध १८ जून सन् १५७६ ईस्वी को एक घड़ी दिन चढ़े आरम्भ हुआ था और उसी दिन सायंकाल तक समाप्त होगया था। (चान्द वर्ष ११ पूर्ण संख्या १२२ पृ० ११८) और अब हर्ष है कि कुछ वर्षों से ज्येष्ठ शुक्ला ७ का इस स्वतन्त्रता बलिदान दिवस की पवित्र स्मृति में कुछ कर्म-वीरों ने वहाँ मेले का आयोजन करके किसी कवि के निम्न उद्गारों की पूर्ति की है—

शहीदों के मज़ारों पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतनपर मरने वालों का यही बाक़ी निशां होगा॥

‡ राजपूताने का इतिहास तीसरा खण्ड पृ० ७८२।

प्रसन्नता पूर्वक रणक्षेत्र मे अपने साथ रहते हुये देखकर यही कहा करते थे कि "राजपूतो का जन्म ही इसलिये होता है।" परन्तु उस पर्वत जैसे स्थिर मनुष्य को भी आपत्तियो के प्रलय-कारी झोकों ने विचलित कर दिया। एक दफा जंगली अन्न के आटे की रोटियाँ बनाई गईं और प्रत्येक के भाग मे एक एक रोटी—आधी सुबह और आधी शाम के लिये—आई। राणा प्रताप राजनैतिक पेचीदा उलझनो के सुलझाने मे व्यस्त थे, वे मातृ-भूमि की परतंत्रता से दुखी होकर गर्म निश्वास छोड़ रहे थे कि, इतने में लड़की के हृदय-भेदी चीत्कार ने उन्हे चौंका दिया। बात यह हुई कि एक जंगली बिल्ली छोटी लड़की के हाथ मे से रोटी को छीन कर लेगई, जिससे कि वह मारे भूख के चिल्लाने लगी। ऐसी ऐसी अनेक आपत्तियो से घिरे हुये, शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण, वीर चूड़ामणि प्रताप मेवाड़ छोड़ने को जब उद्यत हुए तब भामाशाह राणाजी के स्वदेश-निर्वासन के विचार को सुनकर रो उठा। इस करुण दृश्य को कविवर लोचनप्रसादजी पाण्डेय ने (खंडवा से प्रकाशित ५ जून सन् १९१३ की प्रभा मे) इस प्रकार चित्रित किया था —

(१)

"राणा मेवाड़-स्वामी अहह! कर रहे आज हैं देश त्याग,
वंश, ख्याति, प्रतिष्ठा-हित दुख वन के, ले रहे सानुराग।"
पाते ही वृद्ध मंत्री वह वणिक, अहो! वृत्त ऐसा दुरन्त,
घोड़े पै हो सवार प्रखर गति चला शाहभामा तुरन्त॥

(२)

जाते-जाते उठे यों, वणिक-हृदय में आप ही भाव नाना—
क्यों जाते हैं, कहाँ हो विवश? पड़ गये लोभ में तो न राणा?
आशा तो है न होगी, इस तरह उन्हें हीनता से विरक्ति।
है आर्यों की प्रतिष्ठा अविचल उनकी आत्मदा आत्मशक्ति॥

(३)

"हा! अर्थाभाव ही के हित नृप तजना चाहते हैं स्वदेश!"
ऐसा मैंने किसी को उसदिन कहते था सुना हाय क्लेश!
हिन्दु-सूर्य प्रतापी प्रखरतर कहाँ, शक्तिशाली प्रताप?
पीड़ा-व्रीड़ा प्रपूर्ण प्रबल अति कहाँ निन्द्य अर्थान्नताप॥

(४)

जो ऐसी ही अवस्था इस समय हुई प्राप्त, आगे कदापि;
तो तू स्वाभाविकी रे! वणिक, कृपणता चित्त लाना न पापी!
हे हे मेवाड़-माता! बल अनुपम तू दे मुझे आज ऐसा,
सेवा में त्याग-युक्त प्रकट कर सकूँ वीर सत्पुत्र जैसा॥

(५)

जो तू आधीन होके यवन-नृपति के क्लेश नाना सहेगी,
तो क्या आधीनता का अनल न हमको नित्य ही माँ! दहेगी?
खोके स्वातंत्र्य रूपी मणि हम दुःख के, घोर काली निशा में,
जावेंगे क्या न हा! हा! तज कुल-गरिमा, मृत्यु ही की दिशा में!!

(६)

जो श्री-मेवाड़-भू के शुचितर कुल के गर्व का कीर्ति-केतु-
जावेगा टूट, तो क्या फिर धन जन तू सोच हो, लाभ हेतु।
ले लेंगे क्रूरता से हर कर रिपु जो सौख्य की वस्तु सारी,
मारे मारे फिरेंगे, तब हम, मधु की मक्षिका ज्यों दुखारी॥

(७)

जावेगी मातृ-भू, जो निकल कर सभी हाथ से, हा ! हमारे,
तो क्या निर्जीव प्राणी हम सब हैं व्यर्थ ही प्राण धारे ?
ऐसा होने न देंगे प्रण कर अपने प्राण का दान देके,
होंगे सेवा चुकाते, अमर निहत हो युद्ध मे कीर्ति लेके ॥

(८)

आवेगा काम तेरा, कब यह धन हा ! रे ! कृतघ्नी कठोर,
भामा ! धिक्कार लाखों तव धन बल को निन्द्य रे नीच घोर !"
भामा ने यों स्वयं ही कटु वचन कहे खेद पाके अपार,
आँखों से छूटने त्यों अहह ! फिर लगी रक्त-पूर्णाश्रुधार ॥

(९)

स्वामी को शीघ्रता से, वन-वन फिरता ढूंढता शाह भामा,
पाता अत्यन्त पीड़ा, लख गति नृप के कर्म की हाय ! वामा ।
सिन्धु-प्रान्तस्थ सीमा पर जब पहुँचा तो वहाँ दूर ही से,
देखा कौटुम्बियों के युत, नरवर को खिन्नता त्याग जी से ॥

(१०)

घोड़े से भूमि पै आ, धर कर हय की राम मंत्री चला यों,
माता मेवाड़-भू ने स्वसुत निकट है दूत भेजा भला ज्यों !
जाके, मेवाड़-मौर प्रभुवर-पद पै शीश मंत्री झुकाके-
बोला यों नम्रता से नयन-युगल से शोक-आँसू बहा के :—

(११)

"हो जावेगी अनाथा प्रभुवर ! जननी, जन्म-भूमि प्रसिद्ध,
त्यागेंगे आप यों, जो कुसमय उसको, हो विपत्यास्त्र-विद्ध ॥
राणा के चित्त मे, यों विषम विषमयी, क्यों हुई आत्म-ग्लानी ?
घेरे संसार को आ जलद पटल तो सूर्य की कौन हानी ?

(१२)

योद्धा थे साथ में, थे धन जन, न रहा साधनों का अभाव
मंत्री ! मैंने दिखाये तब तक अपने क्षात्र-शक्ति प्रभाव।
हो कैसे, भोजनों का दुख जब हम को सालता रोज हाय!
रक्षा वंश-प्रतिष्ठा तब अब अपनी, है कहो, क्या उपाय ?

(१३)

रोते हैं राजपुत्र, क्षुधित दुखित हो, अम्ब की ओह देख !
छाती जाती फटी है तब इस शठ की हाय ! रे कर्म-रेख !!
ऐसी दीन दशा में कबतक रिपु से युद्ध हा हा ! करूँगा ?
क्या श्री स्वाधीनता को अकबर-कर में सौंप, स्वाहा करूँगा ?

(१४)

पीछे पीछे सदा ही अहह ! फिर रही शत्रु-सेना हमारे।
धीरे धीरे कुटुम्बी सुभट हत हुये युद्ध में हाय सारे ॥
सामग्री एक भी है, समर-हित नहीं पास में और शेष,
भागी भागी प्रजा भी, समय फिर रही, भोगती घोर क्लेश !!

(१५)

हे मंत्री ! सामना मैं कर अब सकता शत्रुओं का न और,
जाता हूँ मातृ-भू को तजकर, इस से दुःख में अन्य ठौर।
मेरी प्यारी प्रजा को अमित दुःख मिले नित्य मेरे निमित्त,
तौभी स्वातंत्र्यरूपी, वह अहह नहीं पासकी श्रेष्ठ वित्त !!

(१६)

क्या ही निश्चिन्तता से भय तज रिपु का सिन्धु के पार जाके-
हे हे मंत्री ! रहूँगा सुख सहित नया रक्षित स्थान पाके।
मेवाड़ोद्धार हेतु प्रमुदित करके राज्य की स्थापना में,
भीलों की सैन्य लूंगा अगणित धन के साथ ही मैं वना मैं ॥

जिस धन के लिये केकई ने राम को १४ वर्ष के लिये वनवास भेजा, जिस धन के लिये पाण्डव और कौरवों ने २० अक्षौहणी सेना कटवा डाली, जिस धन के लिये बनवीर ने बालक उदयसिंह की हत्या करने की असफल चेष्टा की, जिस धन के लिये मारवाड़ के कई राजाओं ने अपने पिता और भाइयोंका संहार किया, जिस धन के लिये लोगों ने मान बेचा, धर्म बेचा, कुल-गौरव बेचा साथ ही देश की स्वतंत्रता बेची; वही धन भामाशाह ने देशोद्धार के लिये प्रतापको अर्पण कर दिया। भामाशाहका यह अनोखा त्याग धनलोलुपी मनुष्यों की बलात् आँखें खोल कर उन्हें देशभक्ति का पाठ पढ़ाता है।

भारमल के स्वर्गवास होने पर राणा प्रताप ने भामाशाह को अपना मंत्री नियत किया था। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब भामाशाह मालवे की ओर चला गया था तब उसकी अनुपस्थिति में रामा सहाणी महाराणाके प्रधान का कार्य करने लगा था। भामाशाह के आने पर रामा से प्रधान का कार्य-भार लेकर पुनः भामाशाह को सौंप दिया गया उसी समय किसी कविका कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है:—

भामो परधानो करे रामो कीधो रद्द * ।

भामाशाह के दिये हुये रुपयों का सहारा पाकर राणा प्रताप ने फिर बिखरी हुई शक्ति को बटोर कर रण-भेरी बजादी। जिसे सुनते ही शत्रुओं के हृदय दहल गए, कायरों के प्राण-पखेरू उड़

*—राजपूताने का इतिहास तीo खo पृ ७८२।

फेर अथवा कालचक्र की महिमा से भामाशाह के वंशज आज मेवाड़ के दीवानपद पर नहीं हैं और न धन का वल ही उनके पास रह गया है। इसलिये धन की पूजा के इस दुर्घट समय में उनकी प्रधानता, धन-शक्ति सम्पन्न उनकी जाति विरादरी के अन्य लोगों को अखरती है। किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाह के नाम का गौरव ही ढाल वनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाह के वंशजों की परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये संवत् १९१२ में तत्सामयिक उदयपुराधीश महाराणा सरुप-सिंह को एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था, जिसकी नक़ल ज्यों की त्यों इस प्रकार है:—

"श्री रामोजयति

श्रीगनेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाले का निशान

[सही]

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरुपसिंघजी आदेशात् कावड्या जेचन्द कुनणों वीरचन्दकस्य अप्रं थारा वड़ा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे साम ध्रमासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठेठसूं य्या है म्हाजना की जातम्हे वावनी त्था चौका को जीमण वा सीग पूजा होवे जीम्हे पहेली तलक थारे होतो हो सो अगला नगर सेठ वेणीदास करसो कर्यो अर वेदर्याफत तलक थारे न्हीं करवा दीदो अवारू थारी सालसी दीखी सो नगे कर सेठ पेमचन्द ने हुक़म की दो सो वी भी अरज करी

अर न्यात म्हे हकसर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुर के थे थारो कराव्या जाजो आगासु थारा वंस को होवेगा जो के तलक हुवा जावेगा पंचाने वी हुकुम करदीय्यो है सौ पेलीतलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १९१२ जेठसुद १५बुधे।" ×

इसका अभिप्राय यही है कि-"भामाशाह के मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही कि, जब महाजनों में समस्त जाति-समुदाय का भोजन आदि होता, तब सब से प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछे से महाजनों ने उसके वंश वालों के तिलक करना, वन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरुपसिंह ने उसके कुल की अच्छी सेवा का स्मरण कर इस विषय की जाच कराई और आज्ञा दी कि—महाजनों की जाति में वावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा मे पहले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर के ही किया जाय। इस विषय का परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५को जयचंद कुनणा वीरचन्द कावड़िया के नाम कर दिया, तब से भामाशाह के मुख्य वंशधर के तिलक होने लगा।"

फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन न किया, जिससे महाराणा फतहसिंह के समय वि०सं०१९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकदमा होकर उसके तिलक किये जाने की आज्ञा दी गई"।

× हिन्दुस्तान दीपावली अङ्क कार्तिक [illegible] वि०

— राजपूताने का इ० [illegible]

वीर भामाशाह ! तुम धन्य हो !! आज प्रायः साढ़े तीनसौ वर्ष से तुम इस संसार में नहीं हो परन्तु यहाँ के बच्चे२ की ज़बान पर तुम्हारे पवित्र नाम की छाप लगी हुई है †। जिस देश के लिये तुमने इतना बड़ा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है। परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुण गान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्ति से स्वयं को ही नहीं किन्तु समस्त जैन-जातिका मस्तक ऊँचा कर दिया है।

---

† मेवाड़ का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न "वीरविनोद" में जिसको कि मुझे सौभाग्य से मान्य ओझाजी के यहाँ देखने का ज़रा सा अवसर मिल गया था पृ० २५१ पर लिखा है कि:—

भामाशाह बड़ी जुरअत का आदमीथा। यह महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के २॥ तथा ३ वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी बड़ी लड़ाइयों में हज़ारों आदमियों का ख़र्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००९। सा० ९ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी) को ५१ वर्ष और ७ महीने की उमर में परलोक को सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ़ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादि युल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवार को हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्री को एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के खज़ाने का कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक्त तकलीफ़ हो यह बही उन महाराणा की नज़्र करना। यह ख़ैरख्वाह प्रधान इस बही के लिखे कुल खज़ाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक ख़र्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधान पद दिया था। वह भी ख़ैरख्वाह आदमी था। लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था।

वीर भामाशाह ! तुम धन्य हो !! आज प्रायः साढ़े तीनसौ वर्ष से तुम इस संसार में नहीं हो परन्तु यहाँ के बच्चे२ की ज़बान पर तुम्हारे पवित्र नाम की छाप लगी हुई है †। जिस देशके लिये तुमने इतना बड़ा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है। परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुण गान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्ति से स्वयं को ही नहीं किन्तु समस्त जैन-जातिका मस्तक ऊँचा कर दिया है।

---

† मेवाड़ का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न "वीरविनोद" में जिसको कि मुझे सौभाग्य से मान्य ओझाजी के यहाँ देखने का ज़रा सा अवसर मिल गया था पृ० २५१ पर लिखा है कि:—

भामाशाह बड़ी जुरअत का आदमीथा। यह महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के २॥ तथा ३ वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी बड़ी लड़ाइयों में हज़ारों आदमियों का ख़र्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००९। सा० ९ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी) को ५१ वर्ष और ७ महीने की उमर में परलोक को सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ़ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादि युल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवार को हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्री को एक वही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के खज़ाने का कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक़ तकलीफ़ हो यह वही उन महाराणा की नज़्र करना। यह ख़ैरख्वाह प्रधान इस वही के लिखे कुल खज़ाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक ख़र्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधान पद दिया था। वह भी ख़ैरख्वाह आदमी था। लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था।

निःसन्देह वह दिन धन्य होगा, जिस दिन भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिये जैन-समाज के धन-कुबेरों में भामाशाह जैसे सद्भावों का उदय होगा।

× × ×

जिस नररत्न का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदि के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों की चिरकाल से यही धारणा रही है। किन्तु हाल में रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने अपने राजपूताने के इतिहास तीसरे खण्ड में "महाराणा प्रताप की सम्पत्ति शीर्षक के नीचे महाराणा के निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर लड़ाई के लिये तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना को असत्य ठहराया है।

इस विषय में आपकी युक्ति का सार 'त्यागभूमि' के शब्दों में इस प्रकार है --

"महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीर से सन्धि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता? आगे आने वाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक वृहत-व्यय-साध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इस लिये उस समय भामाशाह ने अपनी तरफ से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित स्था-

कोषों से रुपया लाकर दिया।"

इस पर 'त्यागभूमि' के विद्वान् समालोचक श्रीहंस जी ने लिखा है:—

"निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अपने खज़ानों का ज्ञान न हो, यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इङ्कार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों की ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझाजी ने पृ० ७८८ पर किया है ‡, हमें बहुत संभव नहीं दीखता। एक खजांची का यह तो साधारण सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कोष से रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्र से उसके वंशधरों की यह प्रतिष्ठा (महाजनों के जाति-भोज के अवसर पर पहले उसको तिलक किया जाय) प्रारंभ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-संगत मालूम नहीं होता †।"

इस आलोचना में श्रद्धेय ओझाजी की युक्तिके विरुद्ध जो कल्पना की गई है, वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय,

---

‡ सम्मान की वह बात इसी लेख में पृ० ९४–९५ में उक्त इतिहास से उद्धृत कर दी गई है।

† त्यागभूमि वर्ष २ अङ्क ४ पृ० ४४५।

नाम से प्रसिद्ध है।

पूजा के योग्य तू है, वणिक सजिव श्री शक्ति की मूर्ति तू है।
है आहा! धन्य तेरा, वह धन, जननी भक्ति की मूर्ति तू है॥
तुझ से स्वामी-भक्ति चतुर मंत्री वर आत्मा-त्यागी वीर।
भारत में क्या दुर्लभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर।

—श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय

जीवाशाह

"महाराणा प्रतापसिंह का प्रधान मंत्री भामाशाह था। महाराणा अमरसिंह के समय तीन वर्ष तक वही प्रधान बना रहा। वि० सं० १६५६ माघ सुदी ११ (ई० स० १२०० ता० १६ जनवरी) को भामाशाह का देहान्त हुआ। उसके पीछे महाराणा ने उसके पुत्र जीवाशाह को अपना प्रधान बनाया। सुलह होने पर कुँवर कर्णसिंह जब बादशाह जहाँगीर के पास अजमेर गया, उस समय यह राजभक्त प्रधान जीवाशाह भी उसके साथ था।" †

†— रा० पू० इ० स० ती० पृ० ७८७

अक्षयराज

जीवाशाह के स्वर्गासीन होने पर उसका पुत्र अक्षयराज महाराणा कर्णसिंह का मंत्री नियत हुआ।[1] और राणा कर्णसिंह के परलोकगत होने पर राणा जगतसिंह का प्रधान भी यही रहा। "राणा प्रताप के समय से ही डूंगरपुर बादशाही अधीनता मे चला गया था, जिससे वहाँ के रावल उदयपुर की अधीनता नहीं मानते थे। इसलिये महाराणा ने अपने मंत्री, अक्षयराज को सेना देकर रावल पर (जो उस समय डूंगरपुर का स्वामी था) भेजा। उसके वहाँ पहुँचने पर रावल पहाडो मे चला गया।[2] ओझाजी लिखते हैं कि —

इस प्रकार चार पीढियो तक स्वामिभक्त भामाशाह के घराने मे प्रधान पद रहा। इस घराने के सभी पुरुष राज्य के शुभचिन्तक रहे। भामाशाह का नाम मेवाड़ मे वैसा ही प्रसिद्ध है जैसा कि गुजरात में वस्तुपाल तेजपाल का।"[3]

[1] रा० पू० इ० ख० ती० पृ० ७८७।

[2] रा० पू० का इ० ती० ख० पृ० ८३२।

[3] रा० पू० इ० ख० ती० पृ० ७८७।

संघवी दयालदास

तो देखत तुव भगिनि के, खैंचत पामर केस।
जानि परत, या वाहु में, रह्यौ न वलको लेस॥
निज चोटी-वेटीन की सकैं राखि नहिं लाज।
धिक-धिक ठाढ़ी मूँछ ए, धिक धिक डाढ़ी आज॥
—वियोगीहरि

शान्ति और सब्र की भी कोई सीमा है। घर में अन्न नहीं व्रत करो, जेव में पैसा नहीं सन्तोष करो, हाथ में शक्ति नहीं, इस लिये क्षमा करो, कुछ कर नहीं सकते, इस लिये शान्त रहो यह आदर्श भीरु, अकर्मण्य कापुरुषों का होसकता है; किन्तु जिनके मुँह पर मूँछ और छाती पर वाल हैं अथवा जिनके पहलू में दिल और दिल में तड़प, मस्तक में आँख और आँखों में ग़ैरत का अंश वाक़ी है, उनका यह आदर्श कभी नहीं हो सकता।

दण्ड देने की सामर्थ्य रखते हुए भी अपराधी के अपराध क्षमा करना, ऊँचा आदर्श है किन्तु नेत्रों के सामने होते हुये अत्याचार और अन्याय देख कर भी निश्चेष्ठ वैठे रहना महान् दुष्कर्म है ‡। इसी लिये तो कहा है, कि क्षमा, शान्ति और सब्र की भी कोई सीमा है। दारुण दुःख जब शरीर में प्रवेश कर हृदय

‡ जव तू देखे या सुने, होते अत्याचार।
जव तेरा चुप वैठना, है यह पापाचार॥

को जलाने लगता है, तव नेत्रो की राह से कोई चीज़ आँसू रूप मे निकल कर उसे बुझा देती है। सूर्य संसार को तप्त कर के उसे तड़पता हुआ देखकर जब हँसने लगता है, तव उसके इस गर्वीले अट्टहास को नष्ट करने के लिए पृथ्वी और आकाश साधन जुटा ही लेते हैं।

प्रकृति का कुछ नियम ही ऐसा है। अत्याचार के विरुद्ध एक न एक रोज़ आवाज़ उठती है ‡ और अत्याचारी का गर्व खर्व करने को कोई न कोई युक्ति निकल ही आती है। अत्याचार जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाते हैं, तब अत्याचार सहन करने वाला कैसा ही शान्त महात्मा क्यों न हो, उसके हृदय में भी प्रतिहिंसा की आग भड़क ही उठती है। यह बात पुराण और इतिहास ढोल पीट कर कह रहे हैं। अत्याचारों से ही ऊब कर योगी कृष्ण ने अपने मामा कंस का वध कर डाला, अत्याचार से ही तो ऊब कर धर्मराज युधिष्ठिर जैसे शान्त-स्वभावी अपने सगे सम्बन्धियों से युद्ध करने को विवश हुये, अत्याचार से ही ऊब कर विभीषण ने अपने सगे भाई रावण का एक अपरिचित राम से वध करा डाला और इसी अत्याचार प्रतिहिंसा की प्यास

‡ जब धर्म की संसार में हो जाती है हानी।
बदकार किया करते हैं जब जुल्मोरसानी॥
फिरजाता है नेकों की भलाई पे जब पानी।
कुदरत के वहीं खिलते हैं इसरार निहानी॥
— नाम नैन

बुझाने के लिये भीम ने दुर्योधन का रक्त-पान किया—संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। यहाँ भी एक ऐसे ही प्रतिहिंसा से उन्मत्त वीर-वर दयालदास का उल्लेख करना है।

लगभग ३०० वर्ष की बात है। जब इस अभागे भारतवर्ष के वक्षस्थल पर यवनों के अनेक राक्षसी अत्याचार हो रहे थे। प्रजा की गाढ़ कमाई हम्माम, मक़बरे और संगमरमर की नहरें बनवाने में खर्च की जा रही थी। शराब के दौर चलते थे, हूरें नाचती थीं, किसी के लिये यह भारत जन्नत और किसी के लिये यह दोज़ख बना हुआ था; तब औरंगजेब अपने भाइयों को क़त्ल कर के और वृद्ध पिता शाहजहाँ को क़ैद कर उसी के बनवाये हुए तीन करोड़ के मयूर-सिंहासन पर बैठ कर निरीह प्रजा की किस्मत का फैसला करता था। वह धर्मान्ध मुसलमान था। उस के कठोर शासन और अनर्थकारी धर्मान्धता से हिन्दू त्राहि-त्राहि कर उठे थे। अबलाओं, मासूमों और बेकसों पर दिन दहाड़े अत्याचार होते थे, धार्मिक मन्दिर जमीदोज़ किये जाते थे, मस्तक पर लगा हुआ तिलक जबान से चाट लिया जाता था, बलपूर्वक चोटी काट ली जाती थी।

महात्मा टॉड् साहब लिखते हैं कि:-"औरंगजेब ने अपने इष्ट मित्रों को बुलाय इस भयंकर आज्ञा का प्रचार करने के लिये कहा कि "हमारे राज्य के सम्पूर्ण हिन्दुओं को मुसलमान होना पड़ेगा, जो लोग इस आज्ञा को नहीं मानेंगे उनको बलात्कार इस धर्म पर चलाया जायगा।" इस महा भयंकर दुःखदाई आज्ञा का प्रचार

होते ही सारे राज्य में हा हा कार शब्द की ध्वनि सुनाई आने लगी, सहायता और आश्रय-हीन हिन्दुगण भय के मारे इधर-उधर भागने लगे। आज सनातन धर्म की रक्षा का कोई उपाय न रहा, बहुत हिन्दु लोग मुगल-राज्य को छोड व्याकुल हो अति शीघ्र दक्षिण की ओर चले गये अनेक हिन्दु सन्तान शाही अहलकारों के अत्याचारों से पीड़ित हो, वहाँ से भागने का कोई उपाय न देख कर उन्मत्त हो अपने हाथ से ही अपने हृदय को छेदन करने लगे, जो स्त्री, पुत्र और परिवार अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी वस्तु है, नि सहाय हिन्दुगण पहले अपने हाथ से उनको मारकर फिर उसी कटारी तथा छुरी से भयकर शोकानल में अपनी आहुति देने लगे। सारा राज्य बिना राजा के समान हो गया चारों ओर से हाहाकार शब्द सुनाई आने लगा, उन दुःखित हुये हिन्दुओं का आर्तनाद, उन निरुपाय और नि सहाय हिन्दुओं के हृदय को विदीर्ण करने वाला शोक ही पल पल में सुनाई पडता था। हिन्दुओं का मान और मर्यादा जाती है, कुल-धर्म और जाति-गौरव पाताल को चला चाहता है आज भारतवर्ष में प्रलय का समय आ पहुँचा है, कौन इस प्रलय के समय में इन अनाथ हिन्दुओं को यमराज के हाथ से बचावेगा ? कौन इस कुटुम्ब-दमन दानव के हाथ से सहाय-हीन भारत-सन्तानों का उद्धार करेगा कोई भी नहीं ? जो रक्षा करने वाला है, यदि वही भक्षण करने वाला हो जाय, जिसके ऊपर प्रजा की मान-मर्यादा है, जाति-धर्म का विचार स्थित है, यदि वही अपने पराये का विचार कर सन्तान

और विजाति के मनुष्यों को अलग-अलग नेत्रों से देखकर अपने हृदय में पत्थर को बान्धे और अपनी प्रजा तथा आश्रितों को पीडित करे, तो वह निःसहाय प्रजा किसके सामने खड़ी होगी ? किसके निकट जाकर सहारा लेगी ? अपना और पराया सजाति और विजाति को न विचार कर सब को बराबर नेत्रों से देखना राजा का आवश्यकीय कर्तव्य है और जो इन कार्यों के पालन करने से विमुख है वह राजा नाम के योग्य नहीं, राज-सिंहासन उसके छूने से भी कलंकित होता है, राज-सिंहासन पर बैठकर जो हिताहित का विचार नहीं करता और गर्व, मोह, क्रोध तथा अहंकार जिसके हृदय में भरा हुआ है और जो अपनी विवेक-शक्ति को खोकर क्रूर धर्म की बुद्धि से परिचालित होता है, वह राजा नहीं है वरन् राजा के नाम को लजाने वाला है, वह प्रजा के सुख रूपी सूर्य्य का हरण करनेवाला राहू है, देश के भाग्याकाश को घेरने वाला प्रचंड धूमकेतु है। उसके असंख्य पापों से उसका राज्य शीघ्र ही पाताल को चला जाता है, विधाता के सूक्ष्मदर्शन से उस अत्याचारी पापी के मस्तक पर कठोर यमराज का दण्ड गिरता है।"

"मुग़ल कुलपांसन पाखंडी औरंगज़ेब के कठोर अत्याचार से सम्पूर्ण राज्य में अराजकता उत्पन्न होगई, पीड़ित हुये हिन्दुओं का भागना और आत्म-हत्या करने से नगर, ग्राम और सम्पूर्ण बाज़ार एक साथ ही सूने होगये। तथा सब स्थान श्मशान के समान दिखाई देने लगे। बनियों के न होने से सब बाज़ार सूने

दिखाई देने लगे, किसानो के चले जाने से खेती वन के समान होगई, इस भयंकर उपद्रव के समय मे बादशाह ने देखा, राज्य अनेक प्रकार से हीन अवस्था युक्त होगया है, खज़ाना खाली हो गया अब राजकर्मचारी लोग कर दे नहीं सकते। जिसके पास जाकर मांगे जिसके पास जॉय उसी को अधमरा पावें,—तस्करो के अत्याचार से घर सूने हो गये। जब उस पापी ने धन-उपार्जन करने का कोई उपाय न देखा तो भारतवर्ष की सम्पूर्ण हिन्दू-प्रजा के ऊपर मुण्डकर (जज़िया) लगाने का विचार किया। इस भयंकर अत्याचार की सूचना होते ही सम्पूर्ण भारतवर्ष के ऊपर मानों वज्र टूट पड़ा, कौनसा उपाय करने से भयंकर विपत्ति मे छुटकारा मिलेगा, इसको कोई भी स्थिर न कर सका, सब ही हताश, निरुत्साह और चेष्टा रहित होकर हाहाकार करने लगे, उस हृदय को विदीर्ण करने वाले हाहाकार शब्दो से उस पापी बादशाह का हृदय किंचित भी भयवीत न हुआ, अभागे हिन्दुओ की शोचनीय अवस्था को वह अपने नेत्रो से देखता रहा। उसके कठोर हृदय मे किंचित भी दया का संचार न हुआ †।

ऐसे संकट के समय मे मेवाड़ के सिंहासन पर राणा राजसिंह सिंहासनारूढ थे। इनमें अपने पूर्वजो के सभी गुण विद्यमान थे, भला ये प्रताप का वंशज अपने नेत्रो से ऐसे अत्याचार होते हुये कब देख सकता था, उसकी नसो मे पवित्र सूर्यवंश का रक्त दौड़ रहा था, उसने बहुत कुछ सोच विचार के बाद औरंगज़ेब को

† टाड राजस्थान [illegible] १२ पृ० [illegible] ।

ऐसे घृणित कार्य न करने के लिये पत्र लिखा । किन्तु व्यर्थ ? जिस प्रकार शुद्ध शान्त समीर से आग भड़क उठती है, उसी प्रकार राणा के पत्र से औरंगजेब का क्रोधानल और भी बढ़ गया । उस ने अपनी असंख्य सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। श्री० ओझाजी लिखते हैं :—

"औरंगजेब बादशाह ने हि० स० १०९० ता० ७ शाबान (वि० सं०१७३६ भाद्रपद सुदी ८ ई० स० १६७९ ता०३ सितम्बर) को महाराणा से लड़ने के लिये बड़ी सेना के साथ दिल्ली से अजमेर की ओर प्रस्थान किया। ········· महाराणा ने बादशाह के दिल्ली से मेवाड़ पर चढ़ने की खबर पाते ही अपने कुँवरों, सरदारों आदि को दरबार में बुलाकर सलाह की, कि बादशाह से कहाँ और किस प्रकार लड़ना चाहिये ।··· उस समय मंत्री दयालदास भी उपस्थित थे‡ ।

यह युद्ध कैसा भयंकर हुआ ? राजपूत वीर कैसे खुल कर खेले ? और औरंगजेब को कैसी गहरी हार खानी पड़ी, इस का रोमाँचकारी वर्णन मान्य टॉड् साहब ने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है । जब महाराणा पर्वतों में जाकर मुगलसेना पर आक्रमण कर रहे थे, तब मंत्री दयालदास भी उनके कन्धे बकन्धे साथ था । रणस्थल में हिन्दुधर्म-द्रोही औरंगजेब को पराजित करके भी हिन्दुओं के प्रति किये गये उसके राक्षसी अत्याचार दयालदास के नेत्रों के सामने नाचने लगे । उसके समस्त शरीर में एक प्रकार

‡ राजपूताने का इ० ती० खं० पृ० ८६५–६६ ।

की बिजली सी दौड़ गई। कमर मे लटकी हुई तलवार आततायियो का रक्त चाटने के लिए अधीर हो उठी। उसकी भवे तन गई, वह मस्ती में झूम कर गुनगुनाया—

"क्या अबलाओ की आबरू उतरते देखना धर्म है? क्या मासूम बच्चों, दीन, दुर्बल मनुष्यो को रक्षा करो—रक्षा करो" चिल्लाते हुऐ देखना धर्म है? क्या धार्मिक स्थानों को धराशायी होते हुये देखना धर्म है? क्या पवित्र मातृभूमि को म्लेच्छो से पददलित होते देखना धर्म है? क्या अपमानित होकर भी जीना धर्म है? यदि नहीं, तब क्या अत्याचारी को बार २ क्षमा करके उसे उत्साहित करना, यह धर्म है? अत्याचारियों के सदैव जूते खाते रहो, क्या इसी लिए हमारे ऋषियो ने "क्षमावीरस्य भूषणम्" सूत्र की रचना की है? नहीं वे तो स्पष्ट लिख गये हैं कि —"शठं प्रति शाठ्यं" फिर यह जानते हुये भी पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को बार-बार क्षमा क्यो किया? यह उसकी उदारता नहीं, मूर्खता थी। आज उसी मूर्खता का कटु-फल भारतवासी भुगत रहे हैं। अपराधी को क्षमा करना हमारे यहाँ का पुराना आदर्श है। पर, एक ही आदर्श सब जगह और सब समय पर लागू नहीं हो सकता। जो घी बलवान मनुष्य के लिये लाभदायक है, वही घी १० रोज़ के लंघन किये हुये मनुष्य के लिये घातक है। एक ही बात को एक ही तरह मान लेना यही दुराग्रह है। गाना अच्छी चीज़ है किन्तु, घर मे आग लगी हो या मृत्यु हुई हो, तो वही गाना उस समय कर्णकटु प्रतीत होने लगता है। भ्रूण-हत्या सब से अधिक निन्द-

नीय मानी गई है, परन्तु जब बच्चा पेटमें टेढ़ा होकर अटक जाता है, तब उसको काटकर निकालना ही धर्म हो जाता है। वस्तु के प्रत्येक पहलू का देश, काल, पात्र, अपात्र की योग्यता से विचार करना पड़ता है। जो आदर्श महात्माओं को उत्तरोत्तर उन्नति-शिखिर पर चढ़ाने वाला है, वही आदर्श साधारण व्यक्तियों को अपने ध्येय से औंधे मुँह नीचे पटक देने वाला है ......"

कहते कहते वीर दयालदास क्रोध से तमतमा उठा और वह गर्म निश्वास छोड़ने लगा। मानों समस्त पीड़ितो की मर्मभेदी आहें उसके ही शरीर में आर्तनाद कर रहीं थीं। दयालदास ने अपनी भुजाओं को तोला, तलवार को गौर से देखा और घोड़े पर सवार होकर जननी जन्मभूमि के ऋण से उऋण होने के लिये प्रस्थान कर दिया। वीर दयालदास की इस रण-यात्रा का वृतान्त मान्य टॉड्साहब के शब्दों में पढ़िये:—

"राणाजी के दयालदास नामक एक अत्यन्त साहसी और कार्य-चतुर दीवान थे; मुगलों से बदला लेने की प्यास उनके हृदय में सर्वदा प्रज्वलित रहती थी, उन्होंने शीघ्र चलने वाली घुड़सवार सेना को साथ लेकर नर्मदा और वितवा नदी तक फैले हुए मालवा राज्य को लूट लिया, उनकी प्रचंड भुजाओं के बल के सामने कोई भी खड़ा नहीं रह सकता था, सारंगपुर, देवास, सरोज, माँडू, उज्जैन और चन्देरी इन सब नगरों को इन्होंने बाहु-बल से जीत लिया, विजयी दयालदास ने इन नगरों को लूट कर वहाँ पर जितनी यवन सेना थी, उसमें से बहुतसों को मार डाला;

इस प्रकार से बहुत से नगर और गाँव इनके हाथ से उजाड़े गये। इनके भय से नगर-निवासी यवन इतने व्याकुल हो गये थे, कि किसी को भी अपने बन्धु-बान्धव के प्रति प्रेम न रहा, अधिक क्या कहें, वे लोग अपनी प्यारी स्त्री तथा पुत्रों को भी छोड़-छोड़ कर अपनी अपनी रक्षा के लिये भागने लगे, जिन सम्पूर्ण साम-ग्रियों के ले जाने का कोई उपाय दृष्टि न आया अन्त में उनमें अग्नि लगाकर चले गये। अत्याचारी औरंगजेब हृदय में पत्थर को बान्धकर निराश्रय राजपूतों के ऊपर पशुओं के समान आच-रण करता था, आज उन लोगों ने ऐसे सुअवसर को पाकर उस दुष्ट को उचित प्रतिफल देने में कुछ भी कसर नहीं की, अधिक क्या कहें? हिन्दु धर्म से वैर करने वाले बादशाह के धर्म से भी पल्टा लिया। काजियों के हाथ पैरों को बान्ध कर उनकी दाढी मूँछों को मुंडा और उनके कुरानों को कुए में फैंक दिया। दयाल-दास का हृदय इतना कठोर हो गया था कि उसने अपनी सामर्थ्य के अनुसार किसी मुसलमान को भी क्षमा नहीं किया। तथा मुसलमानों के मालवा राज्य को तो एक ना मरुभूमि के समान कर दिया, इस प्रकार देशों को लूटने और पीडित करने से जो विपुल धन इकट्ठा किया, वह अपने स्वामी के धनागार में दे दिया और अपने देश की अनेक प्रकार से वृद्धि की थी।

"विजय के उत्साह से उत्साहित होकर तेजस्वी दयालदास ने राजकुमार जयसिंह के साथ मिलकर चित्तौड के अ नत्त ती निकट बादशाह के पुत्र अजीम के साथ मेलकर युद्ध करना आरम्भ

किया। इस भयंकर युद्ध में मेवाड़ के वीरों के सहकारी राठौर और खीची वीरों की अनुकूलता से तथा उत्साह के साथ उनके सम्मलित होने से अज़ीमकी सेना को भयंकररूप से वीरवर दयालदास ने दलित करके अन्त में परास्त कर दिया,पराजित अज़ीम प्राण बचाने के लिये रणथम्बोर को भागा। परन्तु इस नगर में आने से पहिले ही उसकी बहुत हानि हुई थी। कारण कि विजयी राजपूतों ने उसका पीछा करके बहुत सी सेना को मार डाला। जिस अज़ीम ने पहले वर्ष चित्तौड़ नगरी का स्वामी बनकर अकस्मात् उसको अपने हाथ में कर लिया था, आज उसको उसका उचित फल दिया गया †।"

वीरवर दयालदास के सम्बन्ध का एक संस्कृत-लेख बड़ौदा के पास छाणी नामक ग्राम के जैन-मन्दिर में एक विशाल पाषाण प्रतिमा पर खुदा हुआ मिला है, जो कि मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित "प्राचीन जैन-लेख-संग्रह" द्वितीय भाग पृ० ३२६–२७ में उद्धृत हुआ है। जिसका भाव यह है कि संवत् १७३२ शाके १५८७ वैशाख शुक्ल सप्तमी को मेवाड़-नरेश राणा राजसिंह के मंत्री ओसवाल वंशीय सीसोदिया गोत्रोत्पन्न संघवी दयालदास ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई। इस शिलालेख में दयालदास के वंश-वृक्ष का इस प्रकार उल्लेख मिलता है :—

---

† टाड्राजस्थान हि० अ० १२ पृ० २०७–०८।

संघवी श्रीतेजाजी

(भार्या नायकदे)

संघवी गजूजी

(भार्या गौरांदे)

संघवी राजाजी

(भार्या रयणदे)

सं० श्रीउदाजी	सं० डुदाजी	सं० देदाजी	स० दयालदासजी
भार्या मालवदे	भा० १ दाडिमदे	भा० १ सिंहरदे	भा० १ सूर्यदे
	,, २ जगरूपदे	,, २ कर्मारदे	,, २ पाटमदे
स० सुदरदासजी	सं० वपूजी	सं० सुरताणजी,	सं० सावलदासजी
भा० १ सोभागदे	भा० १ पारमदे	भा० सुणारमदे	भा० मृगादे
,, २ अमृतदे	,, २ वहुरंगदे		

श्री ओझाजी लिखते हैं —

"दयालदास के पूर्व पुरुष सीसोदिये क्षत्रिय थे, परन्तु जब से उन्होंने जैन-धर्म स्वीकार किया, तब से उनकी गणना ओसवालों में हुई। इस के अतिरिक्त उसके पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

दयालदास पहिले उदयपुर के एक ब्राह्मण पुरोहित के यहाँ नौकर था, उसकी उन्नति के बारे में यह प्रसिद्ध है कि महाराणा

राजसिंह की एक राणी ने जिससे कुँवर सरदारसिंह का जन्म हुआ था, ज्येष्ठ कुँवर सुलतानसिंह को मरवाने और अपने पुत्र को राज्य दिलाने का प्रपंच रचा। उसके शक दिलाने पर महाराणा ने कुँवर सुलतानसिंह को मारडाला। फिर उसी राणी ने महाराणा को विष दिलाने के लिये, उसी पुरोहित को, जिस के यहाँ दयालदास नौकर था, पत्र लिखा, जो उसने अपने कटार के खीसे में रख लिया। संयोग वश एक दिन किसी त्योहार के अवसर पर दयालदास ने अपने ससुराल देवाली नामक ग्राम में जाते समय रात्रि होजाने से पुरोहित से अपनी रक्षा के लिये कोई शस्त्र मांगा पुरोहित ने भूलकर वह कटार उसे दे दिया, जिसके खीसे में उपर्युक्त पत्र था। दयालदास कटार लेकर वहाँ से रवाना हुआ, घर जाने पर उस कटार के खीसे में कोई कागज़ होता दीख पड़ा और आश्चर्य के साथ वह उस कागज़ को निकाल कर पढ़ने लगा। जब उसे उस पत्र से महाराणा की जान का भय दीख पड़ा, तब उसने तत्काल महाराणा के पास पहुँच कर वह पत्र उसे बतलाया, इसपर उक्त महाराणा ने राणी और पुरोहित को मार डाला। जब इस घटना का हाल कुँवर सरदारसिंह ने सुना, तब उसने भी विष खाकर आत्मघात कर लिया।

दयालदास की उक्त सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे अपनी सेवा में रखा और बढ़ते बढ़ते वह उसका प्रधान (मंत्री) होगया। ... उसने राजसमन्द की पाल के समीप पर संगमर्मर का आदिनाथ का एक विशाल चतुर्मुख जैन-मन्दिर बड़ी लागत

मे बनवाया जो उसकी कीर्ति का स्मारक है। उसका पुत्र सांवलदास हुआ, पीछे से इस वंश मे कोई प्रसिद्ध पुरुष हुआ हो ऐसा पाया नहीं जाता † ।

महात्मा टॉड साहब ने दयालदास के हस्ताक्षरो का राणा राजसिंह के एक आज्ञा-पत्र को अपने अंगरेजी राजस्थान जि० १ का अपडिक्स नं ५ पृ० ६९६ और ६९७ मे अंकित किया है जिसका हिन्दी अनुवाद बा० बनारसीदासजी एम ए एल-एल बी एम आर. ए एस कृत जैन इतिहास सीरीज न० १ पृ० ६३ मे उद्धृत किया जाता है —

आज्ञापत्र

महाराणा श्रीराजसिंह मेवाड़ के दश हजार ग्रामो के सरदार, मंत्री और पटेलो को आज्ञा देता है, सब अपने २ पद के अनुसार पढ़े ।

(१) प्रचीन काल से जैनियो के मन्दिर और स्थानो को अधिकार मिला हुआ है, इस कारण कोई मनुष्य उनकी सीमा (हद) मे जीववध न करे, यह उनका पुराना हक है ।

(२) जो जीव नर हो या मादा, वध होने के अभिप्राय से उनके स्थान मे गुजरता है, वह अमर हो जाता है (अर्थात उसका जीव बच जाता है)

(३) राजद्रोही, लुटेरे और कारागृह से भागे हुये महापराधी को जो जैनियों के उपासरे में शरण लें, राज-कर्मचारी नहीं पकड़ेंगे।

(४) फ़सल में कूँची (मुट्ठी), कराना की मुट्ठी, दान करी हुई भूमि धरती और अनेक नगरों में उनके बनाये हुये उपासरे क़ायम, रहेंगे।

(५) यह फरमान यति मान की प्रार्थना करने पर जारी किया गया है, जिसको १५ वीघे धान की भूमि के और २५ मलेटी के दान किये गये हैं। नीमच और निम्बहीर के प्रत्येक परगने में भी हरएक जाति को इतनी ही पृथ्वी दी गई है अर्थात् तीनों परगनों में धान के कुल ४५ वीघे और मलेटी के ७५ वीघे।

इस फरमान के देखते ही पृथ्वी नाप दी जाय और देदी जाय और कोई मनुष्य जातियों को दुःख नहीं दे, बल्कि उनके हकों की रक्षा करे। उस मनुष्य को धिक्कार है जो, उनके हकों को उलंघन करता है। हिन्दु को गौ और मुसलमान को सूअर और मुदारी की क़सम है।

(आज्ञा से)

संवत् १७४९ महा सुदी ५ वीं ईस्वी० सन् १६९३

शाह दयाल (मंत्री)
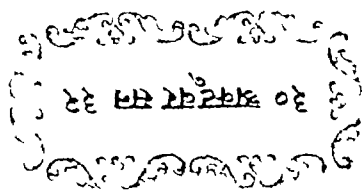
समरकेशरी दयालदास ने कितने युद्ध किये और वह कब वीर-गति को प्राप्त हुआ, इसका कोई पता नहीं चलता। राणा राजसिंह जैसे समर-विशारद, जिनका कि समस्त जीवन क्रूर और सबल बादशाह औरंगजेब से मोर्चा लेने मे व्यतीत हुआ हो, तब उनका मन्त्री दयालदास भी कैसा पराक्रमकारी नीतिनिपुण और युद्ध-प्रेय होगा, सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। महाराणा राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जयसिंह गद्दी पर बैठे। औरंगजेब के पुत्र (अकबर द्वितीय) ने जब औरंगजेब के प्रति बगावत की थी, तब अकबर का पक्ष उदयपुर वालों ने लिया था। उस समय भी मंत्री दयालदास ने एक भयकर युद्ध किया था[१]। ऐसे ही शूर-वीरों को लक्ष करके शायद वियोगीहरिजी ने लिखा है,—

खल-खण्डन मण्डन-सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक।
गुण-गंभीर, रण-सूरमा, मिलतु लाख मे एक॥

[१] राजपूताने का इ० तीसरा ख० पृष्ठ ८८०।

कोठारी भीमसी

जिनकी आंखनतें रहे बरसत ओज अंगार।
तिनके वंशज झेंपतें दृग झांपत सुकुमार ॥
रहे रँगत रिपु रुधिर सों समर-केस निरवारि।
तिनके कुल अब हीजरे काढ़त मांग सँवारि ॥

—वियोगीहरि

समय की गति बड़ी विचित्र है और प्रकृति के खेल भी बड़े अनूठे हैं। जो बात किसी के ध्यान में नहीं आती, जिस बात को लोग असम्भव समझते रहते हैं, वही समय पाकर सम्भव हो जाती है। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। सिंहों के बच्चे भेड़ों का आचरण करें, हंसों के बालक चील-कौओं के साथ खेलें, चातक और हारिल-वंश अपनी आन छोड़ें—यह असम्भव प्रतीत होता है, पर सब कुछ हो रहा है। उक्त पशु-पक्षियों की बात जाने दीजिये, उनमें विवेक नहीं, सम्भव है उन्हें अपने कुल की मान-मर्यादा याद न रहे, पर यहाँ तो उन महाजन-पुत्रों की ओर संकेत है जो विद्या-बुद्धि के ठेकेदार हैं।

वे अपनी मर्यादा को भूलकर महाजन की जगह बनिये बक्काल कहलाने लगे हैं। उनकी आँखों का पानी मारा गया है, न में गैरत है न स्वाभिमान, वे अपनी आँखों के सामने अपनी

बहन-बेटियों पर होते अत्याचार नित्यप्रति देखते हैं, किन्तु महसूस नहीं करते। वे स्वयं हर जगह और हर समय अपमानित होते हैं, पर वे इनकी तनिक भी पर्वाह नहीं करते हैं। उनके स्वाभिमान का नशा विलासिता-तुर्शी ने उतार दिया है।

न अब उनकी आँखों में गौरव का खुमार है और न मर्दानगी का लाल डोरा। वे जान बूझकर मर्द से शिखंडी बने हैं। मुख निस्तेज आँखें अन्दर घुसी हुई, पेट आगे निकला हुआ, नाक पर पत्थर की लालटैन लगी हुई, दान्त आबड़-खूबड़, पर पान में रंगीन, हाथ में पतली छड़ी, विदेशी वस्त्रों से ढके बने ठने महाजन पुत्रों की अब यही पहचान है‡। जिन युवकों की ओर देश और समाज सतृष्ण दृष्टि से देख रहे हैं, वे युवक सुरमा, मिस्सी, कंघा,

---

| जला सब तेल दीया बुझ गया है अब जलेगा क्या।
बना जब पेड़ उकटा काठ तब फूले फलेगा क्या ॥१॥
रहा जिसमें न दम जिसके लहू पर पड़ा गया पाला।
उसे पिटना पछड़ना ठोकरें खाना खलेगा क्या ॥२॥
भले ही बेटियाँ-बहनें लुटें बरबाद हो बिगडें।
कलेजा जब कि पत्थर बन गया है तब गलेगा क्या॥३॥

‡ नफासत भरी है तबियत में उनकी।
नज़ाकत सी दाखिल है आदत में उनकी।
दवाओं में मुश्क उनकी उठता है ढेरा।
धर पोशाक ने इत्र मलते हैं सेरा ॥

—हाली

चोटी, चटक-मटक में तल्लीन हैं; इश्तहार बाज़ों से प्रमेह-उपदंश आदि की दवाएँ ले रहे हैं। वे क्या हैं ? देश के प्रति उनका क्या कर्तव्य है ? इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। वे विलासिता के दास और जोरुओं के गुलाम बने हुये हैं। हर समय और हर घड़ी अपने सूखे और रूखे बदन को वेश्याओं की तरह सजाना, प्रेम कथा सुनना, हर वक्त किसी लैला पर मजनू बने रहना, यही उनका धर्म और यही उनके जीवन का ध्येय बना हुआ है। जब चटक-मटक से ही अवकाश नहीं तब वे क्यों और कब वीरता का पाठ पढ़ें और मर्दों की सुहबत में बैठें—वे क्यों तलवार और लाठी के हाथ सीखें ? वे तो अपने जी बहलाव के लिये, तबले बजाएँगे, नाटकों में पार्ट करेंगे, ज़नखों से अदायें सीखेंगे। दुनियाँ हँसती है हँसने दीजिये, लोग थूकते हैं थूकने दीजिये, कोई बकता है बकने दीजिये, देश रसातल को जारहा है जाने दीजिये, क़ौम मिटी जा रही है मिटने दीजिये। वे अपने रंग में भंग क्यों डालें ? उनकी वही टेढ़ी माँग और वही लचकीली चाल रहेगी, दुनियाँ इधर से उधर होजाय, पर वे न बदलेंगे। और बदलें भी क्यों ? काफ़ी बदल लिये, मर्द से ज़नाने और ज़नाने से शिखंडी महाजन से वैश्य, वैश्य से बनिये और बनिये से बक्काल हुये, क्या अब भी सन्तोष नहीं होता ? बमुश्किल चैन मिला है, यह सुहावना लिबास अब उनसे न उतारा जायगा। उनके पुर्खा क्या थे ? उन्हें सब मालूम है, उनकी तारीफ़ मत करो। एकदम लम्बे तडंगे, छाती चौड़ी, आँखें ^ कलाई लोहे जैसी कठोर; न नज़ाकत न कोई अदा बात चीत

का शऊर नहीं, वज़्मे अदब मे बैठने का सलीका नही क्षमा नाम मात्र को नहीं, एक दम उजड्ड, ज़रा किसी ने अपमान किया कि बिगड़ बैठे, विचारे का भाजना झाड़ दिया। अब वह ज़माना नहीं, यह बीसवी सदी है। आज कल की वज़्मेअदब और इल्मेमजलिसी में जाने के लिये ही उन्होंने यह सब कुछ सीखा है।

यहाँ तो केवल इन छैल छबीले बने ठने महाजन पुत्रो के एक बुजुर्ग का—(जिन्हें यह उजड्ड और गँवार समझते हैं) उल्लेख किया जाता है संभव है भविष्य में इन मर्दनुमॉ औरतो का भी चरित्र-चित्रण इसी लेखनी को करना पडे।

मान्य ओझाजी लिखते हैं —"महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय से युद्ध करने के लिये, जब मुगल-सेना लेकर रणबाजखां मेवाड़ पर आया, तब महाराणा की ओरसे भी देवीसिंह मेवावत (बेगू का) वगैरह कितने ही सरदार युद्ध-क्षेत्र मे भेजे गये। ऐसी प्रसिद्ध है कि बेगू का रावत देवीसिंह किसी कारण से युद्ध मे न जा सका, इस लिये उसने अपने कोठारी भीमसी महाजन को अध्यक्षता मे अपनी सैन्य भेजी। राजपूत सरदारो ने उपहास के तौर पर उससे कहा —"कोठारीजी। यहाँ आटा नहीं तोलना है'। उत्तर मे कोठारीजी ने कहा —' मै दोनो हाथो से आटा तोलूं, उस समय देखना"। युद्ध के प्रारम्भ मे ही उसने घोडे की लगाम कमर से बांध ली और दोनो हाथो मे तलवार लेकर कहा— सरदारो! अब मेरा आटा तोलना देखो।' इतना कहते ही वह अश्वारोहियों पर अपना घोडा दौड़ाकर दोनो हाथो से प्रहार करता हुआ आगे बढा

और बड़ी वीरता-पूर्वक लड़कर मारा गया। उसके लड़ने के विषय का हमें एक प्राचीन गीत मिला है, जिससे पाया जाता है कि उसने कई शत्रुओं को मार कर वीर-गति प्राप्त की और अपना तथा अपने स्वामी का नाम उज्वल किया † ''। मालूम होता है ऐसे ही वीर-रत्नों से प्रभावित होकर श्री वियोगी हरि जी ने लिखा है:—

धन्य वैश्य-वर वीर जे मेलि रुण्ड रण-कुण्ड।
खड्ग-तुला पै मत्त है, रखि तोले खल-मुण्ड॥
धन्य बनिक जो लै तुला, बैठ्यो समर-बज़ार।
अरि-मुण्डन कौ धर्म सों, कियौ बनिज व्योपार॥

† रा. पू. का. इ. ती. स. पृ० ५५२।

भामाशाह की पुत्री का घराना

अथवा

कर्मचन्द बच्छावत का वर्तमान वंश

महता अगरचन्द

बच्छावतों के उत्थान और पतन का शोकोत्पादक साथ ही गौरवास्पद वर्णन पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक के जांगल (बीकानेर-राज्य) नामक खण्ड मे मिलेगा, जब कर्मचन्द बच्छावत के पुत्र वीरता पूर्वक लड़ाई मे मारे गये, तब कर्मचन्द की स्त्री अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर मे थी जिससे उसका वही वंश बचने पाया। आगे मान्य ओझाजी लिखते है—

"भाण का पुत्र जीवराज, उसका लालचन्द और उस (लालचन्द) का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। उसके दो पुत्र अगरचन्द और हंसराज हुए, जो राज्य के बड़े पदो पर रहे। महाराणा अरिसिंह ने अगरचन्द को माडलगढ़ का किलेदार तथा उक्त ज़िले का

हाकिम नियत किया। तब से माँडलगढ़ की क़िलेदारी उसके वंशजों में बराबर चली आ रही है। वह उक्त महाराणा का सलाहकार था और फिर मंत्री बनाया गया। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की उज्जैन की माधवराव सिंधया के साथ की लड़ाई में वह (अगरचन्द) लड़ा और घायल होने के बाद क़ैद हुआ परन्तु रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के बावरी लोग उसको हिकमत से निकाल लाये। जब माधवराव सिंधया ने उदयपुर पर घेरा डाला और लड़ाई शुरू हुई, उस समय महाराणा ने उसको अपने साथ रक्खा। टोपलमगरी और गंगार के पास की महापुरुषों के साथ की लड़ाईयों में भी वह महाराणा की सेना के साथ रह कर लड़ा।

महाराणा हमीरसिंह (दूसरे) के समय की मेवाड़ की विकट स्थिति सम्भालने में वह बड़वा अमरचन्द का सहायक रहा। जब शक्तावतों और चूंडावतों के झगड़ों के बाद आंबाजी इंगलिया की आज्ञानुसार उसके नायब गणेशपन्त ने शक्तावतों का पक्ष करना छोड़ दिया और प्रधान सतीदास तथा सोमचन्द गान्धी का पुत्र जयचन्द क़ैद कर लिए गये, उस समय महाराणा भीमसिंह ने फिर अगरचन्द मेहता को अपना प्रधान बनाया। जब सिन्धिया के सैनिक लकवा दादा और आंबाजी इंगलिया प्रतिनिधि गणेशपन्त के बीच मेवाड़ में लड़ाइयाँ हुई और उस गणेशपन्त ने भाग कर शरण ली, तो लकवा उसका पीछा करता हुआ वहाँ भी जा पहुँचा। लकवा की सहायता के लिए महाराणा ने कई सर-

दारों को भेजा, जिनके साथ अगरचन्द भी था।

वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) के पौष महीने मे मांडलगढ़ में अगरचन्द का देहान्त हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय से लगाकर महाराणा भीमसिंह तक उसने स्वामिभक्त रह कर उदयपुर-राज्य की बहुत कुछ सेवा की, और कई लड़ाइयों मे वह लड़ा। उसने अपने अन्तिम समय अपने वंशजो के लिये राज्य की सेवा मे रहते हुए किस प्रकार रहना, क्या करना, और क्या न करना, इत्यादि के सम्बन्ध में जो उपदेश लिखवाया है, वह वास्तव मे उसकी दूर-दर्शिता, सच्ची स्वामीभक्ति और प्रकाण्ड अनुभव का सूचक है ‡।

महता अगरचन्द के पुत्र देवीचन्द ने अपने रहने के लिये एक महल बनवा लिया था। यह बात मेहता अगरचन्द को बुरी लगी, उसे भय हुआ कि कहीं मेरा पुत्र महलों मे रहकर आराम-तलब न हो जाय। योद्धा की ऐशो-आराम मे पड़ने से वही गति होती है, जो आग में पड़ने से घी की। अतएव मेहता अगरचन्द ने तत्काल अपने पुत्र को एक उपदेश पूर्ण पत्र लिखा जिसका आशय यही था कि "पुत्र! सच्चे शूरवीर तो रणस्थल मे क्रीडा किया करते है और वहीं शयन करते हैं, फिर तुमने यह विपरीत पथ क्यों स्वीकार किया? क्या तुम्हारे हृदय मे अपने पूर्वजों की भांति जीने और मरने की हविस नहीं है। यदि अपने पूर्वजों का अनुकरण करना और मेवाड की प्रतिष्ठा चाहते हो, तो इन

‡ [illegible]

महल को छोड़ कर ज़ीन पर सोना और घोड़े की पीठ पर बैठे ही बैठे रोटी खाना सीखो, तब कहीं अपनी कीर्ति रख सकोगे। हमारे पुरुषाओं का यह पुराना रिवाज रहा है।"

युवराज अमरसिंह की भी ऐसी ही एक बात देख कर राणा प्रताप दुखी थे। इस घटना को लेकर जून सन् १९२९ में एक कहानी लिखी थी। यद्यपि उस कहानी में वर्णित व्यक्ति जैन न होने से प्रस्तुत पुस्तक से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी शिक्षाप्रद और प्रसंगवश उस कहानी को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

सेवक का कर्तव्य

मेवाड़-केसरी महाराणा प्रताप मौत के शिकंजे में जकड़े हुये थे। वह लोहे के कटघरे में फसे हुये शेर की भान्ति रुग्ण-शैय्या पर पड़े हुये छटपटा रहे थे। अस्फुट वेदना के चिन्ह उनके मुखमंडल पर भली भान्ति प्रगट हो रहे थे। आँखों के कोने में छुपे हुये आंसू मान-वेदना का सन्देश दे रहे थे। वीर-चूड़ामणि महाराणा प्रताप ने पूर्वजो की बनाई हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओं को छोड़ कर पीछोला सरोवर के किनारे पर कई एक झोपड़ियाँ बनवाई थीं। उन्हीं कुटियों में अपने समस्त सरदारों के साथ राणाजी अपना राजर्षि-जीवन व्यतीत करते थे। आज अन्तकाल के समय भी उन्हीं में से एक साधारण कुटी में रुग्ण-शैय्या पर लेटे हुये क्रूर-काल की बाट जोह रहे थे। इतने में ही प्रचण्ड-वेग से शरीर को कम्पायमान करती हुई एक साँस राणाजी के मुँह से निकली। समीप में बैठे हुये उनके जीवन के सखा मेवाड के सामन्त और सरदार उनकी इस मर्मान्तिक वेदना को देख कर [illegible] उठे। शालुम्ब्रा-सरदार कातर होकर रुंधे हुये स्वर से बोले "अन्नदाता" इस अन्तिम समय में आपको ऐसी क्या चिंता है? जिस दारुण दुख के कारण आप छटपटा रहे हैं। आपका यह [illegible] निश्वास हमारे हृदय में तीर की तरह लगा है। यदि [illegible] है तो कृपा करके कहिये, हम सब आपकी इस [illegible] को अन्त समय तक अवश्य पूर्ण करेंगे।"

मेवाड़ का वह टिमटिमाता हुआ दीपक शालुम्ब्रा सरदार के आश्वासन रूपी तेल को पाकर फिर प्रज्वलित हो उठा। महाराणा प्रताप अपने शरीर की पूर्ण शक्ति लगाकर बड़े कष्ट से बोलेः— "प्यारे सखा! पूछते हो मुझ से, क्या कष्ट है? मेरे भोले सरदार! इतने भोलेपन का प्रश्न! मेरी मातृ-भूमि चित्तौड़ जो मेरे पूर्वजों की क्रीड़ास्थली थी। जिसके लिये मुस्कराते हुये उन्होंने अपने प्राणों की आहुतियाँ दी। उसे मैं यवनों के चंगुल से नहीं छुड़ा सका, मैं अपने प्यारे देशवासियों को चित्तौड़ की पवित्र-भूमि पर स्वतंत्र विचरते हुये न देख सका; यह क्या कम कष्ट है! यही दारुण-वेदना मेरे प्राणों को रोके हुये है।"

शालुम्ब्रा-सरदार मस्तक झुकाकर बोले—"श्रीमान् आपकी यह पवित्र अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करके एकाग्रचित्त से भगवान् का स्मरण करिये......"

शालुम्ब्रा-सरदार के वाक्य पूर्ण होने तक महाराणा प्रताप का विषाद पूर्ण पीला मुँह गम्भीर हो गया, वह बीच में ही बात काट कर बोलेः—

"ओह! शालुम्ब्रा-सरदार मुझे वाक्य-पटुता में न फंसाओ। मुझे इस समय धर्मोपदेश की आवश्यकता नहीं। देश परतंत्र रहे और मैं इस अन्त समय में भगवान् का स्मरण करके परलोक सुधारूं? छिः कैसी वाक्य-विडम्बना है! मेरे मित्र! याद रक्खो; जो इस लोक में परतंत्र हैं, वह परलोक में भी परतंत्र रहेंगे। जो व्यक्ति अपने देशवासियों को दुख-सागर में बिलखते देखकर अकेला

मोक्ष जाना चाहता है, वह न तो मोक्ष पहुँचता है न पहुंच ही सकता है। त्रिशंकु की तरह उसको बीच में ही लटकना पड़ता है। यदि मेरे नर्क में रहने से भी मेरा देश स्वतंत्र हो सकता है, तो मैं नर्क की दु.सह वेदना सहन करने को प्रस्तुत हूँ। बोलो, बोलो क्या कहते हो, शपथ करो कि इन विदेशियो का विध्वन्स करके मातृ-भूमि को स्वतंत्र कर देंगे।"

सामन्त और सरदार व्यग्र हो उठे, राणाजी की यह अभिलाषा क्योंकर पूर्ण होगी ? जीवन भर लड़ते हुये भी जिसे अपना न कर सके, उसे अब कैसे स्वतंत्र कर सकेंगे ? तब भी सन्तोष के लिये आश्वासन देते हुये बोले—"भारत-सम्राट्! आपकी यह अभिलाषा वीरोचित है। आप विश्वास रखिये श्री बापजी राव (युवराज अमरसिंह) आपकी इस अंतिम कामना को श्री एकलिंग जी की कृपा से अवश्य पूर्ण करेंगे।"

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप चुटीले साप की तरह फुंफकार कर बोले—"अमर चितौड को तो क्या स्वतंत्र करेगा ? वह तो उलटे मेवाड के गौरव को भी खो बैठेगा। उसके आगे मेवाड की पवित्र भूमि म्लेच्छ के पाद-प्रहार से कुचली जायगी।"

समस्त सरदार एक स्वर से बोल उठे "अन्नदाता' ऐसा कभी न होगा।"

दीप निर्वाण होने के पूर्व एक बार प्रज्वलित हो उठता है। एक बार राणाजी शक्ति न रखते हुये भी आवेश में कहने लगे—"मै कहता हूँ ऐसा अवश्य होगा। युवराज अमरसिंह हमारे बि

पुरुषों के गौरव की रक्षा नहीं कर सकेगा। वह यवनों से युद्ध करके मेवाड़ की कीर्ति रूपी स्वच्छ चादर पर विलासिता स्याह धव्वा लगा देगा ......"

कहते कहते उनका गला रुंध गया, सरदार के दो घूंट पानी पिलाने के पश्चात् वह क्षीण स्वर से बोले:—"एक समय कुमार अमरसिंह उस नीची कुटी में प्रवेश करने के समय सिर की पगड़ी उतारना भूल गया था। इस कारण सिर की पगड़ी द्वार के निकले हुये बाँस में लगकर नीचे गिर पड़ी। अमरसिंह ने इसको कु भी न समझा और दूसरे दिन मुझ से कहा कि "यहाँ पर बड़े महल वनवा दीजिये !"

युवराज अमरसिंह की वाल्यकाल की गाथा कहते हुये राणाजी का पीतमुख और भी गम्भीर होगया उन्होंने फिर एक लम्बी सांस ली और कहा—"इन कुटियों के वदले यहाँ रमणीय महल वनेंगे। मेवाड़ की दुरावस्था भूलकर "अमर" यहाँ पर अनेक प्रकार के भोग-विलास करेगा। उससे इस कठोर व्रतका पालन नहीं होगा ! हा ! अमरसिंह के विलासी होने पर वह गौरव और मातृभूमि की वह स्वाधीनता भी जाती रहेगी; जिसके लिये मैंने वरावर २५ व तक वन और पर्वत पर्वत पर घूमकर वनवासका कठोर व्रत धार किया। जिसको अचल रखने के लिये सब भांति की सुख-सम्प को छोड़ा। शोक है कि अमरसिंह से इस गौरव की रक्षा न हो वह अपने सुख के लिये उस स्वाधीनता के गौरवको छोड़ देगा तुम लोग, सब उसके अनर्थकारी उदाहरण का अनुसरण

मेवाड के पवित्र और श्वेतयश मे कलंक लगा दोगे।"

महाराणा का वाक्य पूरा होते ही समस्त सरदार मिलकर बोले.—
[illegible]णा-अन्नदाता, महाराज! हम लोग बप्पारावल के पवित्र सिंहा-
[illegible] की शपथ खाकर कहते हैं कि "जब तक हममे से एक भी
[illegible]वित रहेगा, उस दिन तक कोई तुरक मेवाड़ की भूमि पर अधि-
[illegible]र नहीं पा सकेगा। जब तक मेवाड़-भूमि की स्वाधीनता पूर्ण भाव
[illegible] प्राप्त न कर लेंगे, तब तक इन्हीं कुटियो मे हम लोग रहेंगे।"

सरदारो की वीरोचित शपथ सुनकर हिन्दु-कुल-भूषण वीर-
चूड़ामणि राणा प्रताप के नयन झरोखो से आनंदाश्रु झलकने
लगे। वह नेत्र विस्फारित करके मुस्कराते हुये "भारत माता की
जय" "मेवाड भूमि की जय" इतना ही कह पाये थे, कि उनकी
आत्मा स्वर्गासीन हो गई। मेवाडवासी दहाड़ मारकर रोने लगे,
मेवाड़ अनाथ हो गया।

× × ×

वीर-केसरी प्रताप के स्वर्गासीन होने पर युवराज अमरसिंह को
[illegible]वंशीय सूर्यकुल-भूषण बप्पारावल के पवित्र सिंहासन पर
[illegible]ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराणा अमरसिंह मे असाधा-
[illegible] गुण थे। उन्होंने अपने शासन-काल मे मेवाड मे कई आदर्श
[illegible] किये। किन्तु, स्वेच्छाचारिता और विलासिता दो ऐसे
[illegible] हैं जो मनुष्य के अन्य उत्तम गुणो पर भी पर्दा डाल
[illegible]। दुर्भाग्य से राणा अमरसिंह भी प्लेग, हैजे के समान
[illegible] करने वाली विलासिता रूपी बीमारी से न बच सके। वे

दिन-रात आमोद-प्रमोद में रहने लगे। उनके पूर्वज क्या थे? इस समय मातृ-भूमि कैसे संकट में हैं, भारतीय आर्य ललनाओं की कैसी दुरावस्था है? इस बात की न तो उन्हें कुछ खबर ही थी, और न कुछ चिन्ता। वे दिन-रात महलों में पड़े हुये चापलूसों के साथ अनेक क्रीड़ा किया करते। जो झूठ बोलने में, बात बनाने में, मायाचारी करने में जितना सिद्धहस्त होता, वही उनका प्रेम-पात्र बन सकता था। सच्चे देश-भक्त, वीर, और आन पर मर मिटने वाले उनके यहाँ घमण्डी और पागल समझे जाने लगे। संसार में क्या हो रहा है, इसकी उनको तनिक भी पर्वाह नहीं थी। ऐसे ही दुर्दिनों में उचित अवसर जान जहाँगीर ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। मातृ-भूमि पर संकट आया देख, कुछ वीर-सैनिकों का हृदय धक-धक करने लगा। उनके नेत्रों के सामने भविष्य में आने वाले संकट बाइस्कोप के चित्र के समान मूर्ति ब[illegible] कर नाचने लगे। ऐसे संकट के समय भी राणाजी विलासिता डूबे हुये, अपने चापलूस मित्रों के साथ आमोद-प्रमोद में मस्त हैं, मेवाड़-रक्षक आज भी कायरों की भांति जनाने में घुसे हुये हैं। इन्हीं बातों को देखकर वह मुट्ठीभर राजपूत विकल हो उठे। उनकी हृदय-तन्त्री कर्तव्य-पालन करने के लिये बार२ प्रेरित करने लगी। शालुम्ब्रा सरदार वीर चुण्डावत को राणा प्रताप की कही हुई बात इस समय बिल्कुल ठीक जँचने लगी। इसी समय उसे अकस्मात प्रताप के सामने की हुई प्रतिज्ञा याद हो आई वह मेवाड़के वीर-सैनिकोंकी एक टोली बनाकर राणाजी के महल

में जा पहुँचे। चुण्डावत सरदार की उग्र मूर्ति देखकर राणाजी सहम गये, तब भी वे हँस कर बोले—"कहिये शालुम्ब्रा सरदार! इस समय कैसे पधारे?" राणा अमरसिंह के इस व्यंग भरे प्रश्न से चुण्डावत सरदार कुछ कट से गये, वह कड़क कर बोले :—

देश पर आपत्ति की घनघोर घटा छाई हुई है, यवनेश अपनी असंख्य सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया है, फिर भी आप पूछते हैं कि "इस समय कैसे पधारे?" विजेताओं के अत्याचार से लाखों युवतियाँ विधवा हो जायँगी, उनका बलपूर्वक शील नष्ट किया जायगा। हमारे धार्मिक मन्दिर पृथ्वी में समतल कर दिये जायँगे। मेवाड़ की कीर्ति लुप्त हो जायगी। सब कुछ जानते हुये भी मेवाड़-नरेश! यह अनभिज्ञता कैसी"?

चुण्डावत-सरदार के यह मर्मान्तक वाक्य राणाजी के हृदय में लगे तो, किन्तु व्यर्थ। उनकी काम-वासना ने, विद्वता, वीरता, स्वाभिमान, मनुष्यता सभी पर पर्दा डाल रक्खा था। वे सरदार को टालने की गरज से बोले—"तब मैं क्या करूँ"?

"आप क्या करें! राणा संग्रामसिंह ने क्या किया था? राणा लक्ष्मणसिंह के बारह पुत्रों ने क्या किया था? वीर जयमल और पत्ते ने क्या किया था? और आपके यशस्वी पिता ने क्या किया था? जो उन्होंने किया वही आप कीजिये। जिस पथ का अवलम्बन उन्होंने किया, उसी का अनुसरण आप भी कीजिये"।

"मैं व्यर्थ का रक्त-पात करके अपने हाथों को कलंकित नहीं करना चाहता"।

"अच्छा आप रक्त-पात न कीजिये, परन्तु अपना रक्त ही बहाइये"।

"इसका तात्पर्य्य"!

"यही कि आपकी विलासिता और अकर्मण्यता से जो मेवाड़वासी अनुत्साही होगये हैं—उनके हृदय की वीरता शुष्क हो गई है—वह आपके रक्त-संचार से फिर हरे भरे हो जाँयगे"!

"तो क्या मैं मर जाऊँ"?

"हाँ जो युद्ध नहीं करना चाहता—अहिंसक है—वह मात्र-भूमि के ऋण से उऋण होने के लिये स्वयं उसकी वेदी पर बलि हो जाय"।

"कोई आवश्यकता नहीं, चुण्डावत सरदार! इस समय तुम यहाँ से चले जाओ"।

"मैं नहीं जासकता, इतना कहकर क्रोध में भरे हुये चुण्डावत सरदार ने सामने लगे हुये विल्लोरी आइने को पत्थर मार कर तोड़ डाला और सैनिकों को आज्ञा दी कि कर्तव्य-विमुख राणाजी को घोड़े पर विठाओ! आज हम फिर एकवार लोहा वजाकर अपनी मात्र-भूमि का मुख उज्ज्वल करेंगे! राणा प्रताप के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा आज सार्थक करेंगे"।

सैनिकों ने राणाजी को वलपूर्वक घोड़े पर विठा दिया। राणा जी क्रोध के आवेश में चण्डावत सरदार को राजद्रोही, विश्वास-घाती, उद्दण्ड, आदि अनेक उपाधियाँ वितरण करने लगे। सैनिकों और सरदारों का इस ओर ध्यान ही नहीं था। वे सब बड़े चाव

से झूमते हुये राणाजी को घेरे हुये रण-क्षेत्र की ओर चल दिये। मार्ग में चलते हुये राणाजी की मोह निद्रा दूर हुई। उन्हें चुण्डावत सरदार का यह कार्य उचित जान पड़ा। उन्हे अपनी अकर्मण्यता पर पश्चाताप होने लगा। वे सरदार को सम्बोधन करके बोले — 'शालुम्ब्रा सरदार! वास्तव में आज तुमने वह वीरोचित कार्य किया है, जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। तुमने मुझे विलासिता के अँधेरे कूप में से निकाल कर मेवाड़ का मुख उज्वल किया है। इसके लिये मेवाड़ तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा। अब तुम देखोगे, प्रताप का पुत्र, बप्पारावल का वंशधर कहलाने योग्य है अथवा नहीं? आज रण क्षेत्र में इसकी परीक्षा होगी"

शालुम्ब्रा सरदार हाथ जोड़ कर बोले—"राणाजी! यदि कुछ अपराध हुआ है तो क्षमा कीजिये। स्वामी को कुपथ से निकाल कर सुमार्ग पर लाना सेवक का कर्तव्य है, मैंने कोई नया कार्य नहीं किया, केवल सेवक ने अपना कर्तव्य-पालन किया है"।

\+ \+ ×

राणा अमरसिंह अपने वीर सैनिकों को लेकर जहांगीर की सेना पर बाज की तरह झपट पड़े और अपने अतुल पराक्रम से जहांगीर का मान मर्दन कर दिया। थोड़े दिनों बाद अमरसिंह ने चित्तौड़गढ़ को मुग़ल बादशाह की पराधीनता से मुक्त कर लिया। इस प्रकार राणा प्रताप की अंतिम अभिलाषा पूर्ण हुई।

मेहता देवीचन्द

"अगरचन्द के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द मंत्री बना और जहाज़पुर का क़िला उसके अधिकार में रखा गया। थोड़े ही दिनों पीछे देवीचन्द के स्थान पर मौजीराम प्रधान बनाया गया और उसके पीछे सतीदास। उन दिनों आंबाजी इंगलिया का भाई बालेराव शक्तावतों तथा सतीदास प्रधान से मिलगया और उसने महाराणा के भूतपूर्व मंत्री देवीचन्द को चूंडावतों का तरफ़दार समझ कर क़ैद करलिया, परन्तु थोड़े ही दिनों में महाराणा ने उस को छुड़ा लिया। झाला ज़ालिमसिंह ने बालेराव आदि को महाराणा की क़ैद से छुड़ाने के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसके ख़र्च में उसने जहाज़पुर का परगना अपने अधिकार में कर लिया और मेवाड़ का क़िला भी वह अपने हस्तगत करना चाहता था। महाराणा (भीमसिंह) ने उसके दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उसके नाम लिखा तो दिया, परन्तु तुरन्त ही एक सवार को ढाल तलवार देकर मेहता देवीचन्द के पास मांडलगढ़ भेजदिया। देवीचन्द ने ढाल तलवार अपने पास भेजे जाने से अनुमान करलिया कि महाराणा ने ज़ालिमसिंह के दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उस (ज़ालिमसिंह) को सौंपने की आज्ञा दी है, परन्तु ढाल और तलवार भेजकर मुझे लड़ाई करने का आदेश दिया है। इस पर उसने क़िले की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया और वह लड़ने को सज्जित हो गया। जिससे ज़ालिमसिंह की अभिलाषा पूरी न हो सकी। कर्नल टॉड ने उदयपुर जाकर राज्य-व्यवस्था ठीक की, उस

समय देवीचन्द पुन. प्रधान वनाया गया, परन्तु उसने शीघ्र ही इस्तीफा दे दिया, क्योंकि उस दुहरी हुकूमत से प्रवन्ध मे गड़वड़ी होती थी ‡।”

महता शेरसिंह—

अगरचन्द के तीसरे पुत्र सीताराम का वेटा शेरसिंह हुआ। महाराणा जवानसिंह के समय सरकार इंग्रेजी खिराज के रु० ५०००० चढ़ गये, जिससे महाराणा ने मेहता रामसिंह के स्थान पर मेहता शेरसिंह को अपना प्रधान वनाया। शेरसिंह इमानदार और सच्चा तो अवश्य वतलाया जाता था, परन्तु वैसा प्रवन्ध-कुशल नहीं था, जिससे थोड़े ही दिनो में राज्य पर कर्जा पहले से अधिक हो गया, अतएव महाराणा ने एक ही वर्ष वाद उसे अलग कर रामसिंह को पीछे प्रधान वनाया। वि० स० १८८८ (ई० स० १८३१) में शेरसिंह को फिर दुवारा प्रधान वनाया। महाराणा सरदारसिंह ने गद्दी पर वैठते ही मेहता शेरसिंह को कैद कर मेहता रामसिंह को प्रधान वनाया। शेरसिंह पर यह दोषारोपण किया गया कि महाराणा जवानसिंह के पीछे वह (शेरसिंह) महाराणा सरदारसिंह के पुत्र के छोटे भाई शार्दूलसिंह को महाराणा वनाना चाहता था। कैद की हालत में शेरसिंह पर जब सख्ती होने लगी तो पोलिटिकिल एजेण्ट ने महाराणा से उसकी सिफारिश की, किन्तु उसके विरोधियों ने महाराणा को फिर वहकाया कि सरकार इंग्रेजी की हिमायत से

‡ ओझा-इ० आ० ना० पृ० ... —१६।

वह आपको डराना चाहता है। अन्त में दस लाख रुपये देने का वायदा कर वह (शेरसिंह) क़ैद से मुक्त हुआ, परन्तु उसके शत्रु उसे मरवा डालने के उद्योग में लगे, जिस से अपने प्राणों का भय जानकर वह मारवाड़ को ओर भाग गया।

जब महाराणा सरूपसिंह को राज्य की आमद-ख़र्च का ठीक प्रबन्ध करने का विचार हुआ, और प्रीतिभाजन प्रधान रामसिंह पर अविश्वास हुआ, तब उसने मेहता शेरसिंह को मारवाड़ से बुलाकर वि० सं० १९०१ (ई० स०१८४४) में उसको फिर अपना प्रधान बनाया। महाराणा अपने सरदारों की छटूंद चाकरी का मामला तै करना चाहता था, इस लिये उसने मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ऐबिन्सन से संवत् १९०१ में एक नया कौलनामा तैयार करवाया, जिस पर कई उमरावों ने दस्तख़त किये। महाराणा की आज्ञा से मेहता शेरसिंह ने भी उस पर हस्ताक्षर किये।

प्रधान का पद मिलते ही उसने महाराणा की इच्छानुसार राज्य-कार्य में सुव्यवस्था की और कर्ज़दारों के भी, महाराणा की मर्ज़ी के मुआफ़िक़ फैसले कराने में उसने बड़ा प्रयत्न किया।

लावे (सरदारगढ़) के दुर्ग पर महाराणा भीमसिंह के समय से शक्तावतों ने डोडियों से क़िला छीन कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया था। महाराणा सरूपसिंह के समय वहाँ के शक्तावत रावत चतरसिंह के काका सालिमसिंह ने राठौड़ मानसिंह को मार डाला, तो उक्त महाराणा ने उसका कुदेई गाँव ज़ब्त

कर, चतरसिह को आज्ञा दी कि वह सालिमसिह को गिरफ्तार करे। चतरसिह ने महाराणा के हुकम की तामील न कर सालिमसिह को पनाह दी, इस पर महाराणा ने वि० स० १९०४ (ई० सन १८४७) मे शेरसिह के दूसरे पुत्र जालिमसिह † को ससैन्य लावे पर अधिकार करने को भेजा, उसने लावे के गढ पर हमला किया, किन्तु राज्य के ५०–६० सैनिक मारे जाने पर भी गढ की मजबूती के कारण वह टूट नहीं सका। तब महाराणा ने [illegible] शेरसिह को वहाँ पर भेजा। उसने लावे पर अधिकार कर लिया और चतरसिह को लाकर महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत किया। महाराणा ने शेरसिह की सेवा से प्रसन्न हो पुरस्कार में [illegible] खिलअत, सीख के वक्त बीड़ा देने और ताज़ीम की इज्जत [illegible] करना चाहा, परन्तु उस शेरसिह ने खिलअत और बीड़ा लेना [illegible] स्वीकार किया और ताज़ीम के लिये इन्कार किया।

जब महाराणा सरूपसिह ने सरूपसाही रुपया चलाने का विचार किया, उस समय महाराणा की आज्ञानुसार शेरसिह ने कर्नल रॉबिन्सन से लिखा पढ़ी कर गवर्नमेन्ट की स्वीकृति प्राप्त की, जिससे सरूपसाही रुपया बनने लगा।

वि० सं० १९०७ (ई० स० १८५०) में बीलख आदि की पालों के भीलों और वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में पश्चिमी प्रान्त के काली वास आदि के भीलों को सज़ा देने के लिये शेर-सिंह का ज्येष्ठ पुत्र मेहता सवाईसिंह भेजा गया, जिसने उनको सख़्त सज़ा देकर सीधा किया।

वि० सं० १९०८ लुहारी के मीनों ने सरकारी डाक लूट ली, जिसकी गवर्नमेन्ट की तरफ से शिकायत होने पर महाराणा सरूपसिंह ने उनका दमन करने के लिये मेहता शेरसिंह के पौत्र (सवाईसिंह के पुत्र) अजीतसिंह को, जो उस समय जहाजपुर का हाकिम था, भेजा और उसकी सहायता के लिये जालंधरी के सरदार अमरसिंह शक्तावत को भेजा। अजीतसिंह ने धावा कर छोटी और बड़ी लुहारी पर अधिकार कर लिया। मीने भाग कर मनोहरगढ़ तथा देवका खेड़ा की पहाड़ी में जा छिपे, पर उनका पीछा करता हुआ, वह भी वहाँ जा पहुँचा। मीनों की सहायता के लिये जयपुर, टोंक और बून्दी इलाक़ों के ४—५ हज़ार मीने भी वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ की लड़ाई में कुछ राजपूत मारे गये और कई घायल हुये, जिससे महाराणा ने अपने प्रधान मेहता शेरसिंह को अलग कर उसके स्थान पर मेहता गोकुलचन्द को नियत किया, परन्तु सिपाही-विद्रोह के समय नीमच की सरकारी सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जलादी और खजाना लूट लिया डा० मरे आदि कई अंग्रेज़ यहाँ से भागकर मेवाड़ के सुन्दा गाँव में पहुँचे। वहाँ भी बाग़ियों ने उनका पीछा किया। कप्तान शावर्स

ने यह ख़बर पाते ही महाराणा की सेना सहित नीमच की तरफ़ प्रस्थान किया। महाराणा ने अपने कई सरदारों को भी उक्त कप्तान के साथ करदिया। इतनाही नहीं, किन्तु ऐसे नाज़ुक समय मे कार्यकुशल मंत्री का साथ रहना उचित समझ कर महाराणा ने उस शेरसिह को प्रधान की हैसियत से उक्त पोलिटिकिल एजेंट के साथ कर दिया और जब तक विद्रोह शान्त न हुआ, तब तक वह उसके साथ रहकर उसे सहायता देता रहा।

नीबाहेड़े के मुसलमान अफ़सर के बागियों से मिल जाने की ख़बर सुन कर कप्तान शावर्स ने मेवाड़ी सेना के साथ वहां पर चढ़ाई की, जिसमे मेहता शेरसिह अपने पुत्र सवाईसिंह सहित शामिल था। जब नीबाहेड़े पर कप्तान शावर्स ने अधिकार कर लिया, तब वह (शेरसिह) सरदारों की जमीयत सहित वहां के प्रबन्ध के लिये नियत किया गया।

महाराणा ने शेरसिह को पहले ही अलग तो कर दिया था, अब उससे भारी जुर्माना भी लेना चाहा। इसकी सूचना पाने पर राजपूताने का एजेण्ट जनरल (जार्ज लारेन्स) वि० सं० [illegible] मार्गशीर्ष वदि ३ (ई०स० १८६० ता० ४ दिसम्बर) को उदयपुर पहुंचा और शेरसिह के घर जाकर उसने उसको तसल्ली दी। जब महाराणा ने शेरसिह के विषय मे उस (लारेन्स) से चर्चा की, तब उसने उन (महाराणा) की इच्छा के विरुद्ध उत्तर दिया। [illegible] [illegible] मेवाड के पोलिटिकिल एजेन्ट मेजर टेलर ने भी शेरसिंह से जुर्माना लेने का विरोध किया। इससे महाराणा [illegible]

किल अफसरों में मनमुटाव हो गया, जो दिनों दिन बढ़ता ही गया। महाराणा ने शेरसिंह की जागीर भी जब्त करली, परन्तु फिर पोलिटिकिल अफ़सरों की सलाह के अनुसार वह महाराणा शम्भु-सिंह के समय उसे पीछी देदी गई।

महाराणा सरूपसिंह के पीछे महाराणा शम्भुसिंह के नाबालिग होने के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिये मेवाड़ के पोलिटिकिल एजेण्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौंसिल स्थापित हुई, जिस का एक सदस्य शेरसिंह भी था।

महाराणा सरूपसिंह के समय मेहता शेरसिंह से जो तीन लाख रुपये दण्ड के लिये गये थे, वे इस कौंसिल के समय उस (शेरसिंह) की इच्छा के विरुद्ध उसके पुत्र सवाईसिंह ने राज्य खजाने से पीछे ले लिये। इस के कुछ ही वर्ष बाद मेहता शेर-सिंह के जिम्मे चित्तौड़ जिले की सरकारी रक़म बाक़ी होने की शिकायत हुई। वह सरकारी रक़म जमा नहीं करा सका और जब ज्यादा तक़ाजा हुआ, तब सलूंबर के रावत की हवेली में जा बैठा, जहाँ पर उसकी मृत्यु हुई। राज्य की बाक़ी रही हुई रक़म की वसूली के लिये उसकी जागीर राज्य के अधिकार में ले ली गई। शेरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह उसकी विद्यमानता में ही मर गया। तब, अजीतसिंह उसके गोद गया, पर वह निःसन्तान रहा जिससे मांडलगढ़ से चतरसिंह उसके गोद गया, जो कई वर्षों तक मॉडलगढ़, राशमी, कपासन और कुम्भलगढ़ आदि जिलों का [illegible] रहा। उसका पुत्र संग्रामसिंह इस समय महद्राज सभा का

...सिस्टेंट सेक्रेटरी है †।"

...ता गोकुलचन्द

"महाराणा सरूपसिंह ने मेहता शेरसिंह की जगह मेहता ...कुलचन्द को, जो मेहता अगरचन्द के ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द का ...त्र और सरूपचन्द का पुत्र था, प्रधान बनाया। फिर वि० सं० ...१६ (ई० स० १८५९) में महाराणा ने उसके स्थान पर कोठारी ...शरीसिंहजी को प्रधान नियत किया। महाराणा शम्भुसिंह के ...मय वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) में मेवाड़ के पोलिटि-...ल एजेण्ट ने सरकारी आज्ञा के अनुसार रीजेन्सी कौन्सिल को ...ट कर उसके स्थान मे "अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड़" ...न की कचहरी स्थापित की और उसमे मेहता गोकुलचन्द तथा ...डित लक्ष्मणराव को नियत किया। वि० सं० १९२२ (ई० स० ...८६५) में महाराणा शम्भुसिंह को राज्य का पूरा अधिकार ...मला। वि० स० १९२३ (ई० स० १८६६) मे अहलियान राज्य ...की कचहरी टूट गई और उसके स्थान मे "खास कचहरी" कायम ...ई। उस समय गोकुलचन्द माण्डलगढ चला गया। वि० स० ...१९२६ (ई० स० १८६९) मे कोठारी केसरीसिंह ने प्रधान पद से ...स्तीफा दे दिया, तो महाराणा ने वह काम मेहता गोकुलचन्द और ... लक्ष्मणराव को सौंपा। बड़ी रूपाहेली और लावा वालों के ... ... जमीन के बाबत झगड़ा होकर लड़ाई हुई, जिसमें लावा ... के भाई आदि मारे गये। उसके बदले में रूपाहेली का तस-

वारिया गाँव लाँवा वालों को दिलाना निश्चय हुआ; परन्तु रूपाहेली वालों ने महाराणा शम्भुसिंह की आज्ञा न मानी, जिस पर गोकुलचन्द की अध्यक्षता में तसवारिये पर सेना भेजी गई। वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) महाराणा शम्भुसिंह ने मेहता पन्नालाल को क़ैद किया, तब उसके स्थान पर गोकुलचन्द मेहता और सहीवाला अर्जुनसिंह महकमा खास के कार्य पर नियुक्त हुये। उसमें अर्जुनसिंह ने तो शीघ्र ही इस्तीफा दे दिया और गोकुलचन्द मेहता कुछ समय तक इस कार्यको करता रहा, फिर वह माँडलगढ़ चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई †।

मेहता पन्नालाल—

"वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में महाराणा शम्भुसिंह ने खास कचहरी के स्थान में 'महकमा खास' स्थापित किया, तो पण्डित लक्ष्मणराव ने अपने दामाद मार्तण्डराव को उसका सेक्रेटरी बनाने का उद्योग किया, परन्तु उससे काम न चलता देखकर महाराणा ने मेहता पन्नालाल ‡ को, जो पहिले खास कचहरी में

---

† रा. पू. का. इ. चौ. भा. पृ० १३२० ।

‡ मेहता पन्नालाल मेहता अगरचन्द के छोटे भाई हँसराज के ज्येष्ठ पुत्र दीपचन्द के द्वितीय पुत्र प्रतापसिंह का पौत्र (मुरलीधर का बेटा) था। जब हड़क्या खाल की लड़ाई में होल्कर की राजमाता अहिल्याबाई के भेजे हुये तुलाजी सिंधया और श्री भाई के साथ की मरहटी सेना से मेवाड़ी सेना की हार हुई और मरहटों से छीने हुये स्थान सब छूट गये, उस समय दीपचन्द ने जावद पर एक महिने तक उनका अधिकार न होने दिया। अन्त में तोप आदि लड़ाई के सारे सामान तथा अपने सैनिकों को साथ लेकर वह मरहटी सेना को चीरता हुआ मान्डलगढ़ चला आया।

असिस्टेंट (नायब) के पद पर नियत था, योग्य देखकर सेक्रेटरी बनाया। कुछ समय पश्चात् प्रधान का काम भी महकमा खास के सेक्रेटरी के सुपुर्द हो गया और प्रधान का पद उठ गया। जब महाराणा को कितने एक स्वार्थी लोगों ने यह सलाह दी, कि बड़े बड़े अहलकारों से १०–१५ लाख रुपये इकट्ठे कर लेने चाहियें, तब महाराणा ने उनके बहकाये में आकर, कोठारी केसरीसिंह, छगनलाल तथा मेहता पन्नालाल आदि से रुपया लेना चाहा। पन्नालाल से १२०००० रु० का रुक्का लिखवा लिया, परन्तु श्यामलदास (कविराजा) तथा पोलिटिकिल एजेण्ट कर्नल निक्सन के कहने से उनके बहुत से रुपये छोड़ दिये। और पन्नालाल से सिर्फ ...००० रु० वसूल किये। मेहता पन्नालाल ने अपनी प्रबन्ध ...शलता के परिश्रम और योग्यता से राज्य-प्रबन्ध की नींव दृढ ...रदी और खानगी में वह महाराणा को हरएक बात का ...नि लाभ बताया करता था, इसलिये बहुत से रियासती लोग ...के शत्रु हो गये। उसे हानि पहुँचाने के लिये उन्होंने महाराणा ...शिकायत की, कि वह खूब रिश्वत लेता है और उसने आप ... कराया है। महाराणा बीमार तो था ही, इतने में ...ने की शिकायत होने पर मेहता पन्नालाल वि० सं० १९३१ ... सुदि १८ (ई० स० १८७४ ता० ५ सितम्बर) को नज़र- ...द किया गया, परन्तु तहक़ीक़ात होने पर दोनों बातों ... सिद्ध हुआ, तो भी उसके इतने दुश्मन हो गये ... की दाह-क्रिया के समय उसके प्राण लेने की कोशिश

नाथजी का वंश

मेहता थिरुशाहः—

इस वंश के पहले सोलंकी राजपूत थे। जैनधर्म के उत्कर्ष के समय सं० ११०० विक्रमी के आस पास जैनधर्म के स्वीकार करने पर इनकी गणना भंडसाली गोत्र के ओसवालों में हुई। भण्डसालियों में थिरूशाह भण्डसाली वहुत प्रसिद्ध हो गया है। इस गोत्र के लोग मारवाड़ के खिमल गांव में विशेष कर रहते हैं। इस गोत्र की माता खिमल माता और नगारा 'रणजीत' है। शास्त्रोक्त गोत्र भारद्वाज और माध्यन्दिनी शाखा है!

मेहता चीलजीः—

किसी समय चीलजी नाम के इस वंश में प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं, जिनको राज्य-सम्वन्धी महत् कार्यों के करने के कारण 'महता' पदवी मिली। इसलिए इनका वंश चीलमहता के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश के उदयपुर में ७ तथा मेवाड़ में क़रीव १० कुटुम्ब होंगे। इससे मालूम होता है कि मारवाड़ से मेवाड़ में आनेवाला एक ही महापुरुष होना चाहिए जिनके ये वंशज हैं।

मेहता जालजी—

इतिहास से पता लगता है कि महाराणा हमीर के समय में इस वंश के महता जालजी (जलसिंह) सोनगरे मालदेव की पुत्री के साथ महाराणा का विवाह होने के कारण उनके कामदार (प्राईवेट सेक्रेटरी) वन कर सव से पहले मेवाड़ में आये। इन्होंने

यहाँ आने पर राज्य की बड़ी सेवा की है जिसका वर्णन टॉड साहब ने अपने इतिहास में किया है।

मेहता नाथजी:—

नाथजी का इनके वंश में होना भाटों की बहियों में मालूम होता है, उदयपुर के प्रसिद्ध खान्दान मेहता [illegible] के पाखी वंशज बतलाये जाते हैं। जो बहुत अर्से से राज्य के प्रतिष्ठित ओहदों पर चले आ रहे हैं। [illegible] १५७५ में गाँव आदि जागीर में मिले जिनका वर्णन [illegible] किया है।

नाथजी के वंश में सं० १९७३ [illegible] आ रही थी, जिसका पता उनके [illegible] गेल के घाटे में लड़ाई में काम आने पर [illegible] नाम श्री दरबार के एक रुक्के से चलता है [illegible] ख्याल रखने का हुक्म दिया है।

नाथबुर्ज के नाम से प्रसिद्ध है। किले पर भगवान् का मन्दिर तथा किले से कुछ दूर एक पहाड़ पर माता का मंदिर बनाया जो विजासण माता के नाम से मशहूर है। इनका निवासस्थान अब भी किले के कोट पर दरवाजे के ऊपर बना हुआ है, जिससे क़िले की निगरानी हो सके।

मेहता लक्ष्मीचन्दजी:—

नाथजी के पुत्र का नाम लक्ष्मीचन्दजी था, जो खाचरौल के घाटे में सं० १९७३ के श्रावण शुक्ल ५ के दिन लड़ाई में काम आये। इनके पिता नाथजी का देहान्त पहले हो चुका था। कुछ अव-सरों पर पिता और पुत्र दोनों लड़ाइयों में साथ रहे ऐसा मालूम हुआ है।

मेहता जोरावरसिंहजी, मेहता जवानसिंहजी:—

लक्ष्मीचन्दजी की मृत्यु के समय इनके दो पुत्र-जोरावरसिंहजी और जवानसिंहजी की उम्र ५ और २ वर्ष की होने के कारण ना-बालगी हो गई। घर में इतना द्रव्य नहीं था, कि मौजूदा कुटुम्ब का पालन हो सके। इनकी माता बहुत ही होशियार और बुद्धिमति थी। अनेक आपत्तियों का सामना करती हुई उसने अपने दोनों बच्चों को बड़ा किया।

इनके भाई जो बहुत आसूदा थे, अपनी विधवा बहिन और अपने छोटे भानजों को अपने गांव मगरोम ले जाना चाहते थे किन्तु उसने यह कह कर मना किया, कि मेरे यहाँ (घर) रहने से मेरे बच्चे मेरे पति के नाम से पुकारे जाँयगे और आपके

वहाँ रहने में अमुक मामे के भानजों के नाम से पुकारे जायगे। जो कुल-गौरव के विपरीत है।

उस समय की स्त्रियों में कितना स्वाभिमान एवं कुल-गौरव का भाव था। उन्होंने चर्खा आदि कात कर अपने [illegible] का पालन किया। यद्यपि श्री जी हुज़ूर दरबार का हुक्म सेठ [illegible] चन्दजी के नाम इस कुटुम्ब को मदद देने का हुआ था, किन्तु उसका ज्यादा असर नहीं होने दिया गया।

बड़े पुत्र जोरावरसिंहजी मेवाड़ के [illegible] रामसिंहजी के दरबार की नाराज़गी के [illegible] के कारण ब्यावर चले गये और वहां [illegible]

छोटे पुत्र जवानसिंहजी बड़े प्रतिभाशाली [illegible] [illegible] और पुरुषार्थ द्वारा आप [illegible]

चोरों का पीछा करने के लिए घोड़ी पर चढ़ कर रवाने हो गये। पीछे से सेमरिया ठाकुर भी वहाँ आ पहुँचे। डाकुओं की संख्या विशेष थी, आपस में खूब लड़ाई रही। अंत में चार डाकू उनके द्वारा मारे गये। और उनके सिरों को वेगू में लटका दिया। इस घटना के—कुछ अर्से बाद ३९ वर्ष की अवस्था में ही परलोक सिधारे। इनके दो पुत्र चत्रसिंहजी और कृष्णलालजी थे। ये दोनों धार्मिक प्रवृति के होने पर भी विशेष साहसी थे।

मेहता चत्रसिंहजी:—

चत्रसिंहजी की गणना मेवाड़ के भक्त पुरुषों में थी। श्रीमान् महाराणा साहब शंभूसिंहजी ने इन्हें योग्य एवं विश्वस्त समझ कर एकलिंगजी के मन्दिर का दरोगा नियुक्त किया। और ३) रोज यानी ९०) माहवार की तनख्वाह तथा चढ़नेके लिए सरकारी घोड़ा दिया। वे वहां पर ३ साल तक काम करते रहे किन्तु देवद्रव्य समझ कर तनख्वाह आदि कुछ भी नहीं ली थी। यद्यपि उनको अपने बड़े कुटुम्ब को पालने के लिए अनेकों आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके बाद महाराणा के हुक्म खर्च के खजाने पर नियुक्त हुए। इन महाराणा के स्वर्गवास होने पर महाराणा शंभूसिंहजी की राणी के कामदार नियुक्त किये गये। इनकी राज्य में प्रतिष्ठा रही। इनका अधिक समय ईश्वरोपासना में बीतता था। इनकी मृत्यु सं० १९७३ के श्रावण मास में हुई।

नाथजी-वंश
लक्ष्मीचंदजी
जवानसिंहजी
चतुरसिंहजी
इन्द्रसिंहजी, मदनसिंहजी

सरूपरया वंश

विक्रम संवत् १२९७ में परम पवित्र वीर-भूमि श्री मेदपाट के सिंहासन पर हिन्दु-कुल चूड़ामणि महाराणा कर्णादित्यसिंह विराजते थे। उनके तीन पुत्र राफ़जी माफजी व श्रवणजी केलवेगाँव के पास शिकार करने गये, जहाँ श्री कपिल ऋषि तपस्या करते थे—अकस्मात् उक्त ऋषि शिकार में मारे गये। उनकी स्त्री रंगा जो कुछ दूर ही तपस्या कर रही थी, उनके पास शिकारी कुत्ते ऋषि के मृत शरीर की अस्थियाँ ले गये तब रंगा सती को अपने पति के मरने का हाल मालूम होने पर वह पति की अस्थियाँ लेकर सती होगई और तीनों राजकुमार राफ़जी माफजी व श्रवणजी को शाप दे गई कि तुम्हारे कोढ़ निकलेगा। तदनुसार कोढ़ निकलनेपर बहुत चिकित्सा करने पर भी शान्त न होने से मारवाड़ से यति श्री यशोभद्रसूरि (अपर नाम शांतिसूरि) को कोढ़ मिटानेके लिये बुलाया उनकी चिकित्सा से आराम होने पर राजा ने प्रसन्न हो यतिजी को वर माँगने के लिये कहा, तो यतिजी ने छोटे राजकुमार श्रवणजी को वर में माँगा और उनको श्रावक व्रत धारण करा जैनधर्म अंगीकार कराया। इन्हीं श्रवण जी से यह वंश चला आ रहा है—इन श्रवणजी की २५वीं पीढ़ी में डूंगरसीजी हुवे—जो संवत् १४६८ में राणा लाखा के कोठार के दारोगा थे। राणाजी ने इनको सरोपाव बख्स कर सुरपुर गाँव बख्शा, जो पुर के पास होकर आज दिन तक वहाँ सरूपरयों के

सरूपरया वंश

विक्रम संवत् १२९७ में परम पवित्र वीर-भूमि श्री मेदपाट के सिंहासन पर हिन्दु-कुल चूड़ामणि महाराणा कर्णादित्यसिंह विराजते थे। उनके तीन पुत्र राफ़जी माफजी व श्रवणजी केलवेगाँव के पास शिकार करने गये, जहाँ श्री कपिल ऋषि तपस्या करते थे—अकस्मात् उक्त ऋषि शिकार में मारे गये। उनकी स्त्री रंगा जो कुछ दूर ही तपस्या कर रही थी, उनके पास शिकारी कुत्ते ऋषि के मृत शरीर की अस्थियाँ ले गये तब रंगा सती को अपने पति के मरने का हाल मालूम होने पर वह पति की अस्थियाँ लेकर सती होगई और तीनों राजकुमार राफ़जी माफजी व श्रवणजी को शाप दे गई कि तुम्हारे कोढ़ निकलेगा। तदनुसार कोढ़ निकलनेपर बहुत चिकित्सा करने पर भी शान्त न होने से मारवाड़ से यति श्री यशोभद्रसूरि (अपर नाम शांतिसूरि) को कोढ़ मिटानेके लिये बुलाया उनकी चिकित्सा से आराम होने पर राजा ने प्रसन्न हो यतिजी को वर माँगने के लिये कहा, तो यतिजी ने छोटे राजकुमार श्रवणजी को वर में माँगा और उनको श्रावक व्रत धारण करा जैनधर्म अंगीकार कराया। इन्हीं श्रवण जी से यह वंश चला आ रहा है—इन श्रवणजी की २५वीं पीढ़ी में डूंगरसीजी हुवे—जो संवत् १४६८ में राणा लाखा के कोठार के दारोगा थे। राणाजी ने इनको सरोपाव बख्स कर सुरपुर गाँव बख्शा, जो पुर के पास होकर आज दिन तक वहाँ सरूपरयों के

महल के नाम से विख्यात होकर कुछ खंडहर अभी तक विद्यमान हैं। तथा डूंगरसीजी के पहिले तक तो यह श्रवणजी का वंश सिसोदिया के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु डूगरसीजी को सुरपुर बख्सीस होने पर यह वंश सरूपरया (गोत्र सिसोदया) कहलाने लगा। कहते हैं कि राणाजी इनके यहाँ खेखरा (दिवाली के दूसरे दिन) को हीड़ हींचवा पधारते थे। १५१० मे डूगरसीजी ने जारेड़ा (रामपुरा रियासत हाल ग्वालियर) मे आदीश्वर भगवान की चौमुखी मूर्ति स्थापन करा मंदिर बनवाया—डूगरसीजी की पॉचवी पीढीमे गोविन्दजी हुवे—जिनके दो पुत्र (ज्येष्ठ) पारसिंह व (कनिष्ट) नरसिह थे—पारसिह की छटवीं पीढी मे उदेसिह के द्वितीय पुत्र गिरधरलालजी के वंशज अभी तक उदयपुर मे मौजूद हैं।

इसी तरह कनिष्ठ पुत्र नरसिह के द्वितीय पुत्र पन्नोजी के पोते नेताजी जो मारवाड़ की तर्फ गये। उनके तीसरे लड़के गजोजी थे—गजोजी के तीसरे लड़के राजोजी हुये और राजोजी के चार लड़के उदाजी, दुयाजी, दयालजी जो पीछे दयालसाह के नाम से विख्यात हुए, व देधाजी थे।

दयालशाह की बावत जो ख्याति ओझाजी के राजपूताने के इतिहास मे चली आ रही है कि ये पहिले पुरोहित के यहाँ काम करते थे, और एक वक्त बाहिर कार्य वश गॉव जाते समय उन्होंने जो कटार पुरोहितजी से मॉगी तो उसमे से जो चिट्ठी अकस्मात् इनके हाथ आ गई वो इन्होंने राणाजी को उनके प्राण-

रक्षा करने के लिये वतादी—और राणाजी ने इनकी स्वामि-भक्ति से प्रसन्न हो, अपने प्रधान का पद इनको दिया। परन्तु इसके विरुद्ध यहाँ हाल ज़ाहिर आया है कि दयालजी पहिले मारवाड़ की तरफ़ रहते थे। जिस वक्त राजसमुद्र का निर्माण आरंभ हुवा उस वक्त नींव में का पानी न रुकने से किसी ज्योतिषी के कथनानुसार दयालशाह की पतिव्रता स्त्री गौरादेवी को उनके हाथ से समुद्र की परिक्रमा कच्चे सूत से लगवा इन्हीं सती के हाथ से नींव का पत्थर जमवाया और उसीके वाद दयालशाह को अपने प्रधान पद पर नियुक्त किया। दयालशाह एक वीर पुरुष, स्वामि-भक्त व वड़े चतुर विलक्षण धार्मिक पुरुष थे। कहते हैं कि राजसमुद्र के तालाव व नौ चौकियों का निर्माण इन्हीं की देख रेख में हुवा था और इन्होंने भी पास ही एक पहाड़ पर श्रीआदेश्वर भगवान की चौमुखी मूर्ति स्थापना करा सं० १९६२ में मंदिर का निर्माण कराया, जो आजदिन तक दयालशाह के किले के नाम से विख्यात है और मंदिर के चारों तरफ कोट वन कर लड़ाई की वुर्जें अभी तक विद्यमान हैं। इस मंदिर के पहिले नौमंजिल थे, जिसका कुल खर्चा वनाने में ९९९९९॥≡)॥॥ हुवा।

उस वक्त की कविता भी चली आ रही है—

जब था राणा राजसी, तब था शाह दयाल।
अणां बंधाया देहरो, वणा बंधाई पाल॥

हिम्मतसिंहजी स्वरूपरया एम.ए. एल.एल.बी. द्वारा लिखित।

शिशोदिया वंश के जैन-वीर

अर्थात्

मेहता ड्योढीवाला खान्दान

मेहता सरवणजी—

मेहता ड्योढीवालों का वंश चित्तौड़ (मेवाड़) के रावल करणसिंहजी के सब से छोटे पुत्र सरवणजी से निकला है। रावत करणसिंहजी के तीन पुत्र थे—माहपजी, राहपजी और सरवणजी। माहपजी मेवाड़ छोड़ कर डूंगरपुर चले गये और वहाँ स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। राहपजी ने 'राणा' पदवी धारण कर मेवाड़ पर राज्य किया और सरवणजी ने जैनधर्म अंगीकार कर लिया। इनके चार पुत्र हुए। सरवणजी ने फिर चित्तौड़ पर श्री शीतलनाथजी का मन्दिर बनवाया। सरवणजी के जैनधर्म में दीक्षित होजाने से, राहपजी ने इनको जनानी ड्योढी की रक्षा का कार्य सुपर्द किया जो आज दिन तक इन्हीं के वंश में चला आ रहा है। जैनी हो जाने के पश्चात् इनकी सन्तान की शादियाँ ओसवाल जाति में होने लगीं और ओसवाल जाति में इनकी या इनके वंश की विशेष मान और प्रतिष्ठा रही।

मेहता सरीपतजी—

सरवणजी के पुत्र सरीपतजी को राणा राहपजी ने 'मेहता' की पदवी दी। इनके वंश वाले शिशोदिया मेहता कहलाते हैं। सरीपतजी के वंश वाले शिशोदया मेहता महाराणा उदयसिंहजी के समय में चित्तौड़ के अन्तिम (तीसरे) शाका में लड़े और काम आये, सिर्फ मेहता मेघराजजी वच गये, जो राणा उदयसिंह जी के साथ उदयपुर चले आये।

मेहता मेघराजजी—

मेहता मेघराजजी ने उदयपुर में श्री शीतलनाथजी का मन्दिर तैय्यार करवाया और टीम्बा (मेहतों का टीवा) वसाया। मेहता मेघराजजी की चौथी पाँचवीं पीढी में मेहता मालदासजी हुए जिन्होंने मरहटों के साथ लड़कर वड़ी वहादुरी दिखलाई।

मेहता मालदासजी—

महाराणा भीमसिंहजी के समय में मरहटों का ज़ोर मेवाड़ में वहुत वढ़ा चढ़ा था। मेवाड़ का प्रधान उन दिनों में सोमचन्द गाँधी था। इसने मरहटों को मेवाड़ से वाहर निकालने का निश्चय किया। इसने पहले राजपूताने के राजाओं को मरहटों से लड़ने के लिये भड़काया। वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में जव मरहटा लालसोट की लड़ाई में हार चुके तव सोमचन्द ने यह सु-अवसर देखकर, उसी वर्ष मार्गशीर्ष में चूंडावतों को उदयपुर की रक्षा का भार सौंप कर, मेहता मालदास को मेवाड़ तथा कोटा

की संयुक्त सेना का अध्यक्ष वनाया और उसको मरहटो के साथ लड़ने के लिये भेजा। यह सेना उदयपुर से रवाना होकर निम्बाहेड़ा, नकुम्प, जीरण आदि स्थानो पर अधिकार करती हुई जावद पहुँची। जहाँ सदाशिवराव की मातहती मे मरहटों ने पहले तो कुछ दिनो तक सामना किया परन्तु पीछे से वे कुछ शर्तों पर शहर छोड़ कर चले गये। इस तरह मेहता मालदास की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना को मरहटो पर विजय प्राप्त हुई।

यह खवर पाकर राजमाता अहिल्यावाई (होल्कर) ने वुलाजी सिंधिया तथा श्रीनाई की मातहती मे ५००० सवार जावद की ओर भेजे "यह सेना कुछ काल तक मन्दसोर मे ठहर कर मेवाड़ की ओर वढ़ी, तव महाराणा ने उसका मुकावला करने के लिये मेहता मानदास की अध्यक्षता मे सादड़ी के सुलतानसिंह, देलवाडे के कल्याणसिंह, कानोड़ के रावत जालिमसिंह, सनवाड़ के वावा दौलतसिंह आदि राजपूत सरदारों तथा सादिक पजू वगैरह सिंधियो को अपनी अपनी सेना सहित रवाना किया। वि० स० १८४४ माघ (ई० स० १७८८ फरवरी) में मरहटी सेना से हड़क्याखाल के पास राजपूतो की लड़ाई हुई, जिसमें मेवाड़ का मन्त्री तथा सेनापति मेहता मालदास, वावा दौलतसिंह का छोटा भाई किशनसिंह आदि अनेक राजपूत सरदार एवं पजू आदि सिन्धी वीरता के साथ लड़ कर काम आये"। कर्नल टॉड ने 'एनाल्स ऑफ मेवाड' मे मेहता मालदास के लिये लिखा है मालदास मेहता प्रधान थे और उनके डिप्टी मौजीराम थे। ये दोनो वुद्धिमान् और वीर थे।'

Maldas Mehta was civil member with Maujiram as his Deputy, both men of talent and energy.

मेहता मालदासजी का बड़े बड़े सरदार और सिन्धियों का सेनापति एवं अध्यक्ष बनाया जाना और वीरता के साथ लड़ कर मारा जाना, इस वंश के लिये बड़े ही गौरव की बात है।

मेहता मालदास का घराना उदयपुर में आज भी चला आ रहा है जो ड्योढी वाला मेहता के खान्दान से मशहूर है†।

† मेहता जोधसिंहजी बी.ए. एल.एल.बी. द्वारा लिखित और मास्टर बलवन्तसिंहजी की कृपा से प्राप्त।

सोमचन्द गांधी—

राजपूताने के इतिहासमे लिखा है कि "रावत भीमसिह आदि चूडावत सरदारो ने महाराणा (भीमसिह इ० स० १७६८ ता० १० मार्च राज्य-प्राप्ति) को अपने कब्जे मे कर लिया था। जब कभी महाराणा को रुपयोकी आवश्यकता होती तब वे खजाने मे रुपया न होनेके कारण कोरा जवाब दे देते थे। एकदिन राजमाता ने चूण्डावतो से कहा कि महाराणाके जन्मोत्सव के लिये खर्च का प्रबन्ध करना चाहिये। इस अवसर पर भी वे टाल मटूल करगये इन बातो से राजमाता चूण्डावतो से बहुत अप्रसन्न होगई इधर सोमचन्द गांधी ने जो जनानी ड्योढी पर काम करता था, राम-प्यारी के द्वारा राजमाता से कहलाया कि यदि मुझे प्रधान बनादे तो मैं रुपयो का प्रबन्ध करदुं। राजमाता ने उसे प्रधान बनादिया। वह बहुत योग्य और कार्यकुशल कर्मचारी था। उसने शक्तावतो से मेलजोल बढ़ाया और उनकी सहायता से थोड़े ही दिनो मे कुछ रुपये इकट्ठे कर राजमाता के पास भेजदिये। इसपर चूण्डावत सर-दार सोमचन्द और उसके सहायको को सताने तथा हानि पहुँचाने लगे। सोमचन्द ने चूण्डावतो को नीचा दिखानेके लिए भिंडर और लावा के शक्तावत सरदारों को राजमाता से सिरोपाव आदि दिला कर अपनी ओर मिला लिया और कोटे के झाला जालिमसिह को भी जिसकी चूण्डावतो से शत्रुता थी अपना मित्र तथा सहायक बनालिया। इसके बाद उस (सोमचन्द) ने राजमाता से मिलकर यह स्थिर किया कि महाराणा भींडर जाकर मोहकमसिंह शक्तावत

को (जो बीस वर्ष से राज वंश से विरुद्ध हो रहा है) अपने साथ उदयपुर ले आवें ......प्रधान सोमचन्द और भींडर के महाराज मोहकमसिंह आदि ने यह निश्चय किया कि मरहटों से मेवाड़ राज्य का वह भाग, जिसे उन्होंने दबा लिया है छीन लेना चाहिये। इस कार्य में पूरी सफलता पानेके लिये चूण्डावतों की सहायता आवश्यक समझ उन्होंने रामप्यारी को सलूंबर भेजकर वहां से रावत भीमसिंह को जो शक्तावतोंके ज़ोर पकड़ने के कारण उदयपुर छोड़कर चलागया था बुलवाया था। ...इस प्रकार सोमचन्द ने घरेलू झगड़े को दूरकर जयपुर जोधपुर आदि राज्यों के स्वामियों को मरहटों के विरुद्ध ऐसा भड़काया कि वे भी राजपूताने को मरहटों के पंजों से छुड़ाने के कार्य में महाराणा का हाथ बटाने के लिये तैयार होगये।"

वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८८) में लालसोट की लड़ाई में मारवाड़ और जयपुरके सम्मिलित सैन्य से मरहटों की पराजय होने के कारण राजपूताने में उनका प्रभाव कुछ कम हो गया था। इस अवसर को अच्छा देख कर सोमचन्द आदि ने शीघ्र ही मरहटों पर चढ़ाई करने का निश्चय किया" पृ० ९८४-८७।

"चूण्डावतों ने प्रकट रूप से तो अपने विरोधियों से प्रेम करलिया था परन्तु अन्तःकरण से वे उनके शत्रु बने रहे और सोमचन्द गांधी को मारने का अवसर ढूंडरहे थे। अपनी अचल राजनिष्ठा एवं लोकप्रियताके कारण वह (सोमचन्द)चूण्डावतों की

महाराणा की आज्ञा से सोमचन्द का दाहकर्म पीछोले की बड़ी-पाल पर किया गया जहां उसकी छत्री अब तक विद्यमान है।" (पृ० ९८९)

सतीदास गांधी

"सोमचन्द के पीछे उसका भाई सतीदास प्रधान और शिव-दास उसका सहायक बनाया गया। इधर सतीदास और शिवदास ने अपने बड़े भाई के वध का शत्रुओं से बदला लेने के लिये भींडर के सरदार मोहकमसिंह की सहायता से सेना एकत्र कर चित्तौड़ की ओर कूंच किया। उधर उनका सामना करने के लिये अपनी सेना सहित कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह की अध्यक्षता में चूड़ावत चित्तौड़ से रवाना हुए। अकोला के पास लड़ाई हुई, जिसमें सतीदास की जीत हुई और रावत अर्जुनसिंह ने भाग कर अपनी जान बचाई ......साह सतीदास ने अपने भाई सोमचन्द के क़ातिल को मारडाला (पृ० १०११)।

राणाओं के समकालीन जैन मंत्री

वर्तमान शिशोदिया राज-वंश का चित्तौड मे अधिकार होने (वि०सं०की आठवी शताव्दी) से पूर्व मेवाड की परिस्थिति बताने मे इतिहास के पृष्ठ मौन हैं। फिर भी मेवाड की राजधानी चित्तौड़ होने से पूर्व नागदा और आहड़ मे रही हो, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। इन दोनो स्थानों पर वड़े वड़े विशाल प्राचीन जैनमन्दिर अभीतक विद्यमान हैं, जिनसे कि प्रकट होता है कि उस काल मे जैनो का वहाँ पर उत्कर्ष रहा होगा।

चित्तौड़गढ़ भी उक्त राजवंशो के आधिपत्य से पूर्व और कुछ वीच मे जैनधर्मी राजाओ के अधिकार मे रहा है, मेवाड मे उक्त राजवंश के उत्कर्ष मे जैनो का क्या स्थान है, आगे इसी पर विवेचन करना है।

मेवाड के उक्त राणाओ का सिलसिलेवार प्रामाणिक इतिहास रावल तेजसिंह से मिलता है, अत प्रस्तुत निबन्ध का श्री गणेश भी यहीं से किया जाता है। रावल तेजसिंह "परम भट्टारक" उपाधि से सुशोभित थे, यह उपाधि पहले किसी अर्थ मे रही हो, किन्तु प्राय यह विरुद आज तक जैनियो के यहाँ ही प्रचलित है। इन्हीं रावल तेजसिंह की पटराणी जयतल्लदेवी प्रकट रूप मे जैनधर्मी हुई है। जिसने कि चित्तौड पर श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाया था। रावल तेजसिंह ने चैत्रगच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि का अत्यन्त सम्मान किया था।

रावल तेजसिंह के पुत्र वीरवर समरसिंह ने अपने राज्य में जैनाचार्य्य के उपदेश से प्रभावित होकर जीवहिंसा रोक दी थी।

उक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से ध्वनित होता है कि यह शायद जैनधर्मी रहे हों।

राजपूतानांतरगत रियासतों के मंत्री, सेनापति प्रायः जैनी होते आये हैं किन्तु आज उन सब का परिचय तो क्या नाम तक भी उपलब्ध नहीं होते। यहाँ संक्षेप में मेवाड़ के राणाओं के समकालीन जैन मंत्रियों आदि के नाम दिये जाते हैं :—

१ महाराणा लाखा के समय में नव लाखा गोत्र के रामदेव का मंत्री होना पाया जाता है। (देवकुल पाटक प्रशस्ति)

२ महाराणा हमीर के समय में जालसिंह हुये हैं। परिचय के लिये देखो प्रस्तुत पुस्तक पृ० १४८।

३ महाराणा कुँभा के समय में वेला भण्डारी, गुणराज, जीजा बघेरवाल,(जिसने जैन कीर्तिस्तम्भ बनवाया) रत्नसिंह, (जिस ने राणपुरा का मन्दिर बनवाया) आदि कई प्रधान पुरुष हुये।

४ महाराणा साँगा के मित्र कर्माशाह के पिता तोलाशाह थे। राणा की अभिलाषा इनको मंत्री बनाने की थी। किन्तु अत्यन्त धर्मनिष्ठ होने के कारण तोलाशाह ने प्रधानपद स्वीकार नहीं किया। परिचय पृ० ७१।

५ महाराणा रत्नसिंह के मंत्री कर्माशाह थे, जिन्होंने करोड़ों रुपये लगाकर शत्रुंजय का उद्धार कराया और आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की। परिचय पृ० ६८।

६ महाराणा विक्रमादित्य के समय में कुम्भलगढ़ का किलेदार†
आशाशाह था, जिसने महाराणा उदयसिंह के शरणागत होने पर अभयदान दिया था। परिचय पृ० ७४।

७ महाराणा उदयसिंह के मंत्री भारमल कावड़िया थे।
परिचय पृ० ८०।

८ महाराणा प्रतापसिंह के मंत्री भामाशाह थे। परिचय पृ०८३। इसके सिवाय उक्त राणा की ओर से हल्दीघाटी के युद्ध में ताराचन्द, मेहता जयमल बच्छावत, मेहता रत्नचन्द खेतावत आदि के लड़ने का उल्लेख मिलता है।

९ महाराणा अमरसिंह का मंत्री भामाशाह और भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवाशाह रहा। परिचय पृ० १००।

१० महाराणा कर्णसिंह का मंत्री अक्षयराज था। पृ० १०१।

११ महाराणा राजसिंह का मंत्री दयालशाह था। परिचय पृ० १०२

१२ महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) वीर प्रकृति के पुरुष थे। इन्हों ने ऋषभदेवजी के मन्दिर को एक गाँव भेंट किया।

१३ महाराणा भीमसिंह के मंत्री सोमदास गाँधी मेहता मालदास और मेहता देवीचन्द रहे।

महाराणा भीमसिंहजी से लगाकर महाराणा फतहसिंहजी तक (जिनका कि सन् ३१ में स्वर्गवास हो गया) उदयपुर राज्य के

---

† सैनिक सेवा की दृष्टि से किलेदारी पद राजपूताने में [illegible] महत्व का समझा जाता है। किले आदि पर हमला होने पर किलेदार [illegible] [illegible] जाता है। यह भी एक जिम्मेदारी का पद है।

मंत्री जैनी रहते आये हैं। यह लोग तलवार के धनी, बात के पूरे और सच्चे देशभक्त हुये हैं। उदयपुर-राज्य में नगर सेठ भी जैनी ही होता है। जिसका प्रभाव सब जातियों पर रहता है। अभी गत वर्ष जब लोगों ने राज्य-कर विशेष बढ़ाये जाने के कारण हड़ताल करदी थी, तब भी नगर के सेठ के कहने एवं समझाने पर, राज्य के हिन्दु-मुसलमान दुकानदारोंने अपनी दुकानें खोलीं थीं। पहले समय में नगर सेठ का बड़ा प्रभाव रहा है। नगर सेठ राज्य की ओर से चुना जाता है और उसका बड़ा सम्मान रहता है।

नोट—मेवाड़ में उदयपुर राज्य के अलावा बाँसवाड़ा, डूंगरपुर और प्रतापगढ़ रियासतें और हैं। उदयपुर-राज्य के सिवा उक्त तीन रियासतोंके वीरों के सम्बन्ध में अभी तक मुझे कुछ भी विदित नहीं हो सका है। अतः वीरों का परिचय उपलब्ध न होने से यहाँ उक्त रियासतों के मन्दिरादि का परिचय भी स्थानाभाव के कारण रोक लिया है! विद्वान् पाठकों ने भविष्य में यदि यहाँ के सम्बन्ध में कुछ बतलाने की कृपा की तो फिर देखा जायगा।

नहिं चाहत साम्राज्य-सुख, नाहिं स्वर्ग निर्वान।
जन्म-जन्म निज धर्म पै, हरषि चढ़ायौं प्रान॥

—श्री० वियोगीहरि

मारवाड़

Here in Jodhpur the rose—red fort stands a romantic and picturesque sentinal over plains of Marwar. Its massive architecture reflects the stubborn spirit of its builder and every stone speaks of the brave deeds of your highness ancestors in the wars which fill so many pages in the history of this country side

Lord Erwin

अर्थात्—मारवाड़ के प्रत्येक शिलाखंड से राजपूतों की वीरता का वह गौरवमय राग निकलता है, जो प्रत्येक दर्शक को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। —लार्ड अरविन

था यहाँ हँगामा उन सहरा नशीनों का कभी ।
वहर वाज़ीगाह था, जिनके सफ़ीनों का कभी ॥

ज़लज़ले जिन से शहन्शाहों के दरवारों में थे ।
विजलियों के आशियाने जिनकी तलवारों में थे ॥

—"इक़वाल"

मारवाड़-परिचय

मारवाड़-राज्य राजपूताना प्रान्त के पश्चिमी भाग में है। इस के उत्तर में बीकानेर, उत्तर-पूर्व में जयपुर का शेखावाटी परगना, पूर्व में मेवाड़ राज्य और अंग्रेज़ी अमलदारी का अजमेर मेरवाडा ज़िला, दक्षिण में सिरोही और पालनपुर रियासतें, पश्चिम में कच्छ का रन, (समुद्र की खाड़ी) और सिन्ध प्रान्त का थरपारकर ज़िला। उत्तर-पश्चिम में जैसलमेर है। यह २४ अंश, ३७ कला, और २७ अंश, ४२ कला उत्तरांश तथा ७० अंश, ५ कला और ७५ अंश २२ कला पूर्व रेखांश के बीच फैला हुआ है। इसकी लम्बाई उत्तर पूर्व से दक्षिण-पश्चिम तक ३२० मील और चौड़ाई १७० मील है। मारवाड़-राज्य की सीमा पहले बहुत विस्तृत थी। अब इस राज्य का क्षेत्रफल ३५ ०१६ वर्ग मील है। इसमें १६० वर्गमील का साँभर झील का हिस्सा भी शामिल है। किन्तु अंग्रेज़ी इलाका अजमेर-मेरवाडे की सरहद पर बने हुये मारवाड राज्य के २२ गाँवों की ५० वर्गमील भूमि और सिन्ध का उमरकोट शामिल नहीं है जो मारवाड-राज्य के होने पर भी सं० १८८० और १८९४ वि० से क्रमश अंग्रेज़ सरकार के प्रबन्ध में है और उनके बदले ३ हज़ार तथा १० हज़ार रुपये सालाना

क्रमशः मिलते हैं। इस ज़मीन में ३०, १८६ और खालसा ४८३० वर्गमील है।

क्षेत्रफल के लिहाज़ से मारवाड़-राज्य तमाम राजपूताने के चौथाई हिस्से से भी अधिक विस्तार में फैला हुआ है। यह अफ्रीका के नेटाल देश से कुछ छोटा किन्तु यूरोप के स्काटलेण्ड, आयरलेण्ड या पुरुतगाल से बड़ा है। भारतवर्ष के निज़ाम हैदराबाद, और काश्मीर राज्यों को छोड़कर इसका विस्तार अन्य सब देशी राज्यों से बड़ा है†।

मारवाड़-प्रदेश अपने यथा नाम तथा गुण के अनुसार अनउपजाऊ, रेतीला और बंभड़ है। मारवाड़ में वर्षा बहुत कम होती है, पानी की बड़ी तकलीफ़ रहती है। अधिकाँश ज़मीन की सिंचाई कुओं के ज़रिये होती है। बारह महिने लगातार बहने वाली यहाँ एक भी नदी या नहर नहीं है। इस प्रदेश में इधर-उधर बिखरे हुये अनेक पहाड़ हैं। यहाँ की आबोहवा खुश्क है किन्तु तन्दुरस्ती के लिये बहुत लाभदायक है।

मारवाड़-राज्य की वर्तमान राज्यधानी जोधपुर में है, जो राठौड़ रांजपूत जोधाजी ने जेठ सुदी ११ वि० सं० १५१६ शनिवार तदनुसार १२ मई सन् १४५९ ई० को पुरानी राजधानी मंडोर से ५ मील दूरी पर बसाया था। मारवाड़-राज्य को इसी से जोधपुर राज्य भी कहते हैं। मारवाड़ शब्द "मरुवार" का अपभ्रंश है, जिसको प्राचीन काल में 'मरुस्थान' भी कहते थे। मरुस्थान शब्द

† मारवाड़-राज्य का इति० पृ० १-२।

का वास्तविक अर्थ मृत्यु का स्थान है और इसी कारण से इस शब्द का रेगिस्थान के लिये उपयोग किया जाता है ‡।

मारवाड़ की कुल जन-संख्या (आबादी) सन १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार २१२६४२९ है । जिसमे जैनियों की संख्या १,१३,६६९ है ।

मारवाड़-प्रदेश पर राज्य करने वाले प्रसिद्ध कन्नोजपति राठौड राजपूत जयचन्द के वंशधर है । सन ११९४ मे शहाबुद्दीन गौरी से परास्त होने पर जयचंद भागते हुये गंगा मे डूब गया। इसी का पौत्र सीहाजीराव सन १२१२ मे राजपूताने मे आकर बसा और मारवाड़-राज्य की नीव डाली तभी से उसके वंशधर इस प्रदेश पर राज्य करते आरहे हैं । मारवाड मे अनेक रमणीक स्थान देखने योग्य हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण "राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक" से (जोकि सरकारी गजेटियरों और रिपोर्टो से अनुदित किया गया है) केवल कुछ प्राचीन जैन-मन्दिरो का विवरण दिया जाता है:—

१. भिनमाल:—

जिला जसवन्तपुरा, इस को श्रीमाल या भिहमाल भी कहते हैं । यह आबूरोड स्टेशन से उत्तर पश्चिम ५० मील व जोधपुर से दक्षिण पश्चिम १०५ मील है, यह छटी से नवीं शताब्दी के मध्य मे गूजरो की प्राचीन राज्यधानी थी । A. S. P. R. I. ... 1907 मे विदित हुआ कि यह श्रीमाल जैनियो का प्राचीन स्थान है ।

‡ मारवाड राज्य का इति० पृ० २ ।

ऐसा श्रीमाल महात्म्य में है। यहाँ जाकव तालाव के तट पर उत्तर में गजनीखां की क़ब्र है। इस की पुरानी इमारत के ध्वंशों में एक पड़े हुये स्तम्भ पर एक लेख अंकित है, जिस में लेख है कि वि० सं० १३३३ राज्य चाचिगदेव पारापद गच्छ के पूर्णचन्द्र सूरि के समय श्री महावीर की पूजा को आश्विन वदी १४ को १३ दुम्भा व ८ विसोपाक दिये। एक पुरानी मिहराव में एक जैनमूर्ति अंकित है। जाकव तालाव की भीत में एक लेख है, जिस में प्रारम्भ में है कि श्री महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर में पधारे थे।

२. माँडोरः—

जोधपुर नगर से उत्तर ५ मील। यह सन् १३८१ तक परिहार वंशी राजाओं की राज्यधानी थी। यहाँ वहुत प्राचीन मन्दिरों के शेष हैं। इनमें वहुत प्रसिद्ध एक दो खन की जैन-मन्दिर की इमारत उत्तर में है। इसमें वहुत कोठरियाँ हैं। मन्दिर में जाते हुये द्वार के आले में चार जैन-तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं व आठ भीतर वेदी में कोरी हैं। यहाँ एक वड़ा शिलालेख था जो दवा पड़ा है। इस के खम्भे १० वीं शताब्दी के पुराने हैं।

३. नाडोलः—

जिला देसूरी जवाली स्टेशन से ८ मील यह ऐतिहासिक जगह है। ग्राम के पश्चिम में पुराना क़िला है। इस क़िले के भीतर वहुत सुन्दर मन्दिर श्री महावीर स्वामी का है। यह मन्दिर हलके रंग वाले चुनई पाषाण से वना है और इस में वहुत सुन्दर कारीगरी है। यह चौहान राजपूतों का स्थान है। जैन-मंन्दिर में

तीन लेख १६०९ ई० के हैं व ८ वड़े पाषाण स्तम्भ है। जिन को खेतला का स्थान कहते हैं।

४. मॉगलोद:—

नागौर से पूर्व २० मील यहाँ प्राचीन मन्दिर है, जिस मे संस्कृत लेख सन् ६०४ का है। इस में लिखा है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार धुहलाना महाराज के राज्य मे हुआ था। यह लेख जोधपुर में सब से प्राचीन है।

५. पोकरन नगर:—

ज़िला सांकरा—जोधपुर नगर से उत्तर-पश्चिम ८५ मील। सातलमेर ग्राम के वाहर दो मील तक ध्वंश स्थान है। यहाँ एक वड़ा जैन-मन्दिर है।

६. राणपुर (रैनपुर):—

ज़ि० देसूरी—फालना स्टेशन से पूर्व १४ मील व जोधपुर से दक्षिण-पूर्व ८८ मील। यहाँ प्रसिद्ध जैन-मन्दिर है। जो मेवाड़ के राणा कुम्भा के समय मे १५ वीं शताब्दी में वना था। यह वहुत पूर्ण है। मन्दिर का चवूतरा २००×२२५ फुट है। मध्य में वड़ा मन्दिर है, जिस में चार वेदी हैं। प्रत्येक में श्री आदिनाथ विराजमान हैं। दूसरे खनपर चार वेदी हैं। आगन के चार कोने पर ४ छोटे मन्दिर हैं। सव तरफ २० शिखिर हैं जिसको ४२० स्तम्भ आश्रय दिये हुये हैं। सगमर्मर का खुदा हुआ मानस्तम्भ द्वार पर है, उस मे लेख है। जिन मे मेवाड के राजाओं के नाम

बापा रावल से राणा कुम्भा तक हैं । इस मन्दिर के हर एक शिखर के समुदाय जो जो मध्य शिखर है, वह तीन खन का ऊँचा है। जो खास द्वार के सामनेहै, वह ३६ फुट व्यास का है, उसे १६ खम्भे थामे हुये हैं । १९०८ की पश्चिम भारत की रिपोर्ट में है कि इस बड़े मन्दिर को—जो चौमुखा मन्दिर श्री आदिनाथजी का है—पोड़वाड़ महाजन धरणक ने सन् १४४० में बनवाया था। दो और जैन-मन्दिर हैं, उन में एक श्रीपार्श्वनाथजी का १४ वीं शताब्दी का है ।

७. सादड़ी नगर:—

ज़ि० देसूरी । प्राचीन नगर जोधपुर से दक्षिण पूर्व ८० मील; यहाँ बहुत से जैन-मन्दिर हैं ।

८. कापरड़ा:—

ज़िला हुकूमत, यहाँ एक जैन-मन्दिर है जो इतना ऊँचा है कि ५ मील से दिखता है । यह १६वीं शताब्दी के अनुमान का है। यह जोधपुर से दक्षिण-पूर्व २२ मील है । बिशालपुर से ८ मील है

९. वरलई:—

देसूरी से उत्तर-पश्चिम चार मील । यहाँ सुन्दर दो जैन-मन्दिर हैं—एक श्रीनेमीनाथजी का सन् १३८६ का व दूसरा श्रीआदिनाथजी का सन् १५४१ का।

१०. जसवन्तपुरा:—

आबूरोड स्टेशन से उत्तर-पश्चिम ३० मील, पर्वत के नीचे

एक नगर है। इसके पश्चिम मे एक सुन्दर पहाड़ी है। यह पहाड़ी ३२८२ फुट ऊँची है। यही रतनपुर ग्राम मे श्रीपार्श्वनाथजी का जैन-मन्दिर सन ११७१ का है, इस मे दो लेख सन् ११९१ और १२९१ के हैं।

११. ओसिया:—

जोधपुर से उत्तर ३० मील। यह ओसवाल महाजनो का मूल स्थान है। यहाँ एक जैन-मन्दिर है, जिस मे एक विशाल मूर्ति श्री महावीर स्वामी की है। यह मन्दिर मूल मे सन् ७८३ के क़रीब परिहार राजा वत्सराज के समय मे बनाया गया था। इस के उत्तर-पूर्व मानस्तम्भ है, जिसमे सन् ८९५ है। सन् १९०७ की पश्चिम भारत की प्राग्रेस रिपोर्ट से विदित है कि यह तवरी से उत्तर १४ मील है। इस का पूर्व नाम मेलपुर पट्टन था। ऊपर कहे हुये प्राचीन मन्दिर सहित यहाँ १२ मन्दिर हैं। हेमाचार्य के शिष्य रत्नप्रभाचार्य ने यहाँ के राजा और प्रजा सब को जैनी बना लिया था।

१२. वाड़मेर:—

जि० मैलानी—जोधपुर शहर से दक्षिण-पश्चिम १३० मील। यहा से करीब ४ मील। उत्तर-पश्चिम जूनावगरमेर मे [illegible] हैं। २ मील दक्षिण जाकर ३ पुराने जैनमन्दिर हैं। सब से बड़े मन्दिरजी के एक स्तम्भ पर एक लेख सन [illegible] का है जो कहता है कि उस समय वाहड़मेर मे महाराजकुल सामन्त-

सिंहदेव राज्य करते थे। एक दूसरा लेख संवत् १३५६ का है, श्री आदिनाथ भगवान् का नाम है। यह जूना वारमेर हतमा से दक्षिण पूर्व १२ मील है।

१३. पालीनगर:—

(माड़वाड़ पाली) जोधपुर रेलवे पर वान्दी नदी के तट पर जोधपुर नगर से दक्षिण ४५ मील। यहाँ एक विशाल जैन-मन्दिर है, जिसको नौलखा कहते हैं। यह अपने बड़े आकार, सुन्दर खुदाई व किले के समान दृढ़ता के लिये प्रसिद्ध है। इसमें वहुतसा काम चारों तरफ लगा है। जिस में भीतर से ही जाया जा सकता है। केवल बाहर एक ही द्वार है, जो २ फुट चौड़ा भी नहीं है। भीतर आंगन में एक मसजिद भी है जो शायद इसी लिये वनाई गई है, कि इस मन्दिर को मुसलमान ध्वंश न कर सकें। इस नौलखा जैन-मन्दिर में प्राचीन मूर्तियें वि० सं० ११४४ से १२०१ तक की हैं।

१४. सांचारे:—

नगर, जोधपुर से दक्षिण-पश्चिम १५० मील। यहाँ एक पुरानी मसजिद है, जो पुराने जैन-मन्दिर को तोड़ फोड़कर वनाई गई है। यहाँ तीन पाषाण के खम्भों पर ४ लेख हैं उनमें से दो संस्कृत में हैं। जिनका भाव यह है कि (१) संवत् १२९७ मंडप वनाया, संघ पति हरिश्चन्द्र ने; (२) संवत् १३२२ वैशाख वदी १३ सत्यपुर महास्थान के भीमदेव के राज्य में श्रीमहावीर स्वामी के जैन-मंदिर में जीर्णोद्धार किया, ओसवाल भंडारी छाद्या द्वारा।

१५. नाणाः—

रेलवे स्टेशन नाणा से २ मील। यहाँ श्रीमहावीर स्वामी का जैन-मन्दिर है। उसमें लेख है कि बिलहरा गोत्र के ओसवाल डूडा ने सं० १५०६ माघ वदी १० श्री शान्तिसूरि द्वारा मन्दिर के द्वार पर एक लेख सं० १०१७ का है। आले के भीतर एक लेख सं० १६५९ का है, कि राणा श्री० अमरसिंह ने मन्दिर को दान दिया।

१६. वेलारः—

नाणा से उत्तर-पश्चिम ३ मील। यहाँ एक श्रीपार्श्वनाथ का जैन-मन्दिर है, उसके खम्भे पर एक लेख सं० १२६५ का है, कि नाणा के राजा गँधलदेव के राज्य में किसी ओसवाल ने जीर्णोद्धार कराया।

१७. सेवाड़ीः—

बीजापुर से उत्तर-पूर्व ६ मील। यहाँ श्रीमहावीर स्वामी का जैन मन्दिर है, कुछ मूर्तियाँ जैनाचार्यों की हैं। उनके आसन पर वि०सं० १२४५ संदेरक गच्छ है। मन्दिर के द्वार पर कई लेख हैं।

१८. धाणेरावः—

सेवाड़ी से उत्तर-पूर्व ६ मील। पहाड़ों के नीचे श्री महावीर स्वामी का जैन मन्दिर ११ वीं शताब्दी का है।

१९. वरकानाः—

ज़ि० देसूरी, यहाँ श्री पार्श्वनाथ का जैन-मन्दिर १३ वीं शताब्दी का है।

२०. सांडेराय:—

यह यशोभद्रसूरि द्वारा स्थापित संद्रक जैनगच्छ का मूल स्थान है। यहाँ श्रीमहावीर स्वामी का जैन-मन्दिर है। जिसके द्वार पर एक लेख है कि सं० १२२१ माघ वदी २ को केल्हणदेव राजा की माता आणलदेवी ने राजा की सम्पत्ति में से श्रीमहावीरस्वामी की पूजा के लिये दान किया था। यह राष्ट्रकूटवंशी सहुला की पुत्री थी। सभा-मंडप के खम्भे पर चार लेख हैं—१ है, सं०१२३६ कार्तिक वदी २ बुधे कल्हणदेव के राज्य में थंथा के पुत्र रल्हाका और पल्हा ने श्रीपार्श्वनाथजी के लिये दान दिया।

२१. कोरटा:—

सांडेराय से दक्षिण-पश्चिम १६ मील। यहाँ ३ जैन-मन्दिर हैं: जो १४ वीं शताब्दी के हैं।

२२. जालोर:—

नगर ज़ि० जालोर, जोधपुर से दक्षिण ८० मील। यहाँ एक क़िला है, उसमें तोपख़ाना तथा मसजिद है, जो जैन और हिन्दू मन्दिरों के ध्वंसों से बनाई गई है। यहाँ बहुत से लेख हैं व तीन जैन-मन्दिर श्री आदिनाथ, महावीर व पार्श्वनाथ के हैं।

२३. केकिंद:—

मेड़ता से दक्षिण-पश्चिम १४ मील। शिव-मन्दिर के पास एक जैन-मन्दिर श्री पार्श्वनाथ का है। इसके खंभे पर लेख है।

२४. नाडलू:—

वागोदिया से उत्तर ४ मील, यहाँ १३ वीं शताब्दी का एक श्री पार्श्वनाथ का जैन-मन्दिर है।

२५. ऊनोतरा:—

वाड़लू से पश्चिम ४ मील, यहाँ भी १३ वीं शताब्दी का एक जैन-मन्दिर है।

२६. सुरपुरा:—

वाड़लू से उत्तर-पूर्व ३ मील। यहाँ श्री नेमिनाथ का जैन-मन्दिर है। लेख १२३९ का है।

२७. नदसर:—

सुरपुरा से उत्तर-पूर्व ६ मील। यहाँ एक प्राचीन जैन -मन्दिर है। १० वीं शताब्दी के आश्चर्यजनक स्तम्भ हैं।

२८. जसोल:—

जि०मल्लानी जोधपुर से दक्षिण-पूर्व ६० मील। यह लूणी नदी पर है। एक जैनमन्दिर है और एक हिन्दु मन्दिर है, जो जैनमन्दिर के पुराने सामान से बनाया गया है। एक पाषाण जो सभा-मंडप की भीत पर लगा हुआ है, वह खेड़ के जैन-मन्दिर से लाया गया है। उस पर लेख सं० १२४६ है। इस जैन-मन्दिर मे दो मूर्तियें श्री सम्भवनाथ की हैं,जिनकी प्रतिष्ठा सहदेव के पुत्र सोनीगर ने कराई थी। यह भानु देवाचार्य गच्छ के श्री महावीर स्वामी के मन्दिर की है, जो खेतला पर है। इस जैन-मन्दिर को देवी देहरा कहते हैं। इससे एक लेख स० १६५९ रौला विक्रमदेव के राज्य का है

२९. नगर:—

जासौल से दक्षिण ३ मील। यहाँ तीन जैन-मन्दिर हैं—
१ नाकोड़ा पार्श्वनाथ का, २ लाछीबाई ओसवाल कृत श्री ...

देव का, ३ जैसलमेर के पटवा वंश के सेठ मालासा कृत शान्तिनाथ का यह १३ वीं शताब्दी का है । ऋषभदेव के मन्दिर में ३ लेख हैं ।

३०. खेड़ः—

नगर से उत्तर ५ मील । यह मल्लाना की राज्यधानी थी । यहाँ रणछोड़जी के मन्दिर में हाते की भीत पर दो जैन मूर्तियाँ लगी हैं, जिनमें एक वैठे व दूसरी खड़े आसन है ।

३१. तिवरीः—

ओसिया से दक्षिण १३ मील । यहाँ वहुत से ध्वंस मन्दिर हैं, उनमें एक वड़ा जैन-मन्दिर श्रीमहावीर स्वामी का है । मन्दिर के सामने मानस्तम्भ है । उसके मध्य में ८ जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ पद्मासन हैं । नीचे चार खड़े आसन मूर्तियाँ हैं । उसके नीचे ४ वैठे आसन हैं । इस स्तम्भ पर लेख है ।

३२. फलौदीः—

यहाँ प्राचीन श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर है । यहाँ की मूर्ति एक वृक्ष के नीचे मिली थी । जहाँ एक जैनी की गाय नित्य दूध की धार डाला करती थी ।

संक्षेप में प्राचीन जैन मन्दिरों का उल्लेख किया गया है विशेष 'दिगम्बर जैन डिरेक्टरी', 'श्वेताम्बर जैनतीर्थगाइड' और राजपूताने के प्राचीन जैन-स्मारक' आदि पुस्तकों में मिलेगा ।

नवम्वर सन् ३२

मारवाड के जैन राजा

मंडोर के प्रतिहार

मान्य ओझाजी लिखते है —"मण्डोर (जोधपर से ४ मील) के प्रतिहारो के कितने एक शिलालेख मिले हैं जिनमें से तीन में उनके वश की उत्पत्ति तथा वंशावली दी है। उनमें से एक जोधपुर शहर के कोट (शहर पनाह) मे लगा हुआ मिला, जो मूल मे मंडोर के किसी विष्णुमन्दिर मे लगा था। वह शिलालेख वि० सं० ८९४ (ई० स० ८३७) चैत्र सुदि ५ का है। दूसरे दो शिलालेख घटियाले (जोधपुर से २० मील उत्तर मे) से मिले है, जिनमे से एक प्राकृत (महाराष्ट्री) भाषा का श्लोकबद्ध और दूसरा उसी का आशय रूप संस्कृत मे है। ये दोनो शिलालेख वि० सं० ९१८ (ई० स० ८६१) चैत्र सुदी २ के है। इन तीनों लेखो से पाया जाता है कि "हरिश्चन्द्र" नामक विप्र (ब्राह्मण), जिसको रोहिलद्धि भी कहते थे, वेद और शास्त्रों का अर्थ जानने में पारंगत था। उसके दो स्त्रियों थीं एक द्विज (ब्राह्मण) वंश की और दूसरी क्षत्रिय कुल की बड़ी गुणवती थी। ब्राह्मणी से जो सन्

उत्पन्न हुये वे ब्राह्मण प्रतिहार कहलाये और क्षत्रिय वर्ण की रानी भद्रा से जो पुत्र जन्मे वे मद्य पीने वाले हुये। इस प्रकार मंडोर के प्रतिहारों के उन तीनों शिलालेखों से हरिश्चन्द्र का ब्राह्मण एवं किसी राजा का प्रतिहार होना पाया जाता है। उसकी दूसरी रानी भद्रा को राज्ञी लिखा है, जिससे संभव है कि हरिश्चन्द्र के पास जागीर भी हो। उसकी ब्राह्मण वंश की स्त्री के पुत्र ब्राह्मण प्रतिहार कहलाये। जोधपुर-राज्य में अब तक प्रतिहार ब्राह्मण हैं, जो उसी हरिश्चन्द्र प्रतिहार के वंशज होने चाहिये। उसकी क्ष-त्रिय वर्ण वाली स्त्री भद्रा के पुत्रों की गणना उस समय की प्रथा के अनुसार मद्य पीने वालों अर्थात् क्षत्रियों में हुई। मंडोर के प्रतिहारों की नामावली उनके उपर्युक्त शिलालेखों में नीचे लिखे अनुसार मिलती हैं :—

१. हरिश्चन्द्र (रोहिल्लद्धि)

प्रारम्भ में किसी राजा का प्रतिहार था। उसकी राणी भद्रा से, जो क्षत्रिय वंश की थी, चार पुत्र भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द हुए, उन्होंने अपने बाहु बल से माँडव्यपुर (मंडोर) का दुर्ग (क़िला) लेकर वहाँ ऊँचा प्राकार (कोट) बनवाया।

२. रज्जिल

(सं० १ का ज्येष्ठ पुत्र)

३. नरभट

(सं०२ का पुत्र) इसकी वीरता के कारण इसको 'पेल्लापेल्लि' कहते थे।

४. नागभट

(सं० ३ का पुत्र) इसको नाहड़ भी कहते थे। इसने मेडंतकपुर (मेड़ता, जोधपुर राज्य में) मे अपनी राजधानी स्थिर की। उसकी राणी जज्जिकादेवी के दो पुत्र तात और भोज हुए।

५. तात

(सं० ४ का पुत्र) इसने जीवन को बिजली के समान चंचल जान कर अपना राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया और आप मॉडव्य के पवित्र आश्रम में जाकर धर्माचरण मे प्रवृत्त हुआ।

६. भोज

(सं० ५ का छोटा भाई)

७. यशोवर्द्धन

(सं० ६ का पुत्र)

८. चदुक

(सं० ७ का पुत्र)

९. शीलुक

(सं० ८ का पुत्र) इसने त्रवणी और वल्ल देशों में अपनी सीमा स्थिर की, अर्थात् उनको अपने राज्य में मिलाया और वल्लमंडल (वल्लदेश) के स्वामी भट्टिक (भाटी) देवराज को पृथ्वी पर पछाड़ कर उसका छत्र छीन लिया।

१०. भोट

(सं० ९ का पुत्र) इसने राज्य-सुख भोगने के पीछे गंगा में मुक्ति पाई।

११. भिल्लादित्य

(सं० १० का पुत्र) इसने युवावस्था में राज्य किया, फिर अपने पुत्र को राज्य-भार सौंप कर वह गंगा-द्वार (हरिद्वार) को चला गया जहाँ १८ वर्ष रहा और अन्त में उसने अनशन व्रत से शरीर छोड़ा।

१२. कक्क

(सं० ११ का पुत्र) इसने मुग्दगिरि (मुँगेर, विहार में) में गौड़ों के साथ की लड़ाई में यश पाया। वह व्याकरण, ज्योतिष, तर्क (न्याय) और सर्व भाषाओं के कवित्व में निपुण था। उस की भट्टि (भाटी) वंश की महारानी पद्मिनी से वाउक और दूसरी राणी दुर्लभदेवी से कक्कुक का जन्म हुआ। इसका उत्तराधिकारी वाउक हुआ। कक्क रघुवंशी प्रतिहार राजा वत्सराज का सामंत होना चाहिये, क्योंकि गौड़ों के साथ की लड़ाई में उसके यश पाने के उल्लेख से यही पाया जाता है कि जब वत्सराज ने गौड़ देश के राजा को परास्त कर उसकी राज्यलक्ष्मी और दो श्वेत छत्र छीने, उस समय कक्क उसका सामन्त होने से उसके साथ लड़ने को गया।

१३. वाउक

(सं० १२ का पुत्र) जब शत्रुओं का अतुल सैन्य नदावह को मार कर भूअकूप मे आगया और अपने पक्ष वाले द्विज नृप-कुल के प्रतिहार भाग निकले, तथा अपना मंत्री एवं छोटा भाई भी छोड़ भागा, उस समय उस राणा (राणा वाउक) ने घोडे से उतर कर अपनी तलवार उठाई। फिर जब नवों मंडलों के सभी समुदाय भाग निकले और अपने शत्रु राजा मयूर को एवं उसके मनुष्य (सैनिक) रूपी मृगो को मार गिराया, तब उसने अपनी तलवार म्यान मे की। वि० सं० ८९४ की ऊपर लिखी हुई जोधपुर की प्रशस्ति उसी ने खुदवाई थी।

१४. कक्कुक

(सं० १३ का भाई) घटियाले से मिले हुये वि० सं० ९१८ के दोनों शिलालेख इसी के है। जिनसे पाया जाता है कि उसने अपने सच्चरित्र से मरु, माड, वल्ल, तमणी (त्रवणी), अज्ज, (आर्य) एवं गुर्जरत्रा के लोगो का अनुराग प्राप्त किया, वडणाणय मंडल मे पहाड़ पर की पल्लियो (पीलो, भीलो के गाँवो) को जलाया रोहिन्सकूप (घटियाले) के निकट गाँव मे हट्ट (हाट, बाजार) लगवा कर महाजनो को बसाया और मडोअर (मडोर) तथा रोहिन्सकूप गाँवो मे जयस्तम्भ स्थापित किये। कक्कुक न्यायी प्रजापालक एवं विद्वान् था।"†

† राजपुताने का इतिहास पहली जिल्द पृ० १०७-१०८।

यद्यपि मान्य ओझाजी के उक्त लेख से स्पष्टतया इन प्रतिहार राजाओं का जैनधर्मी होना प्रकट नहीं होता, अपितु वेद-पाठी हरिश्चन्द्र ब्राह्मण इन राजाओं का मूल पुरुष था, इससे तो यह सब जैनेतर ही प्रकट होते हैं किन्तु विद्वद्रत्न प्रख्यात् पुरातत्त्व वेत्ता पं० रामकरणजी ने (जिन्होंने कि उक्त शिलालेखों का वाचन किया है) मार्च सन् १९१४ में जोधपुर में होने वाले जैन-साहित्य-सम्मेलन में "मारवाड़ के सब से प्राचीन शिलालेख" शीर्षक निबन्ध पढ़ा था, उससे प्रकट होता है कि कक्कुक (१४वाँ) राजा जैन था। इससे पहिले के राजा किस धर्म के अनुयायी थे। इसका स्पष्टीकरण पं० रामकरणजी के लेख से भी नहीं होता। क्योंकि आपने केवल कक्कुक के सम्बन्ध में ही लेख पढ़ा था। फिर भी अनशन व्रत करने और राज्य त्यागने का कई राजाओं का उक्त लेख में वर्णन मिलने से मालूम होता है कि इस वंश ने किसी जैनाचार्य द्वारा जैनधर्म की दीक्षा लेली होगी। पाठकों के अवलोकनार्थ विद्वद्वर्य्य पं० रामकरणजी के उक्त लेख को यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है:—

"जैन सम्बन्धी सब से प्राचीन शिला-लेख गांव घटियाला में, जो जोधपुर से पश्चिम की ओर है, विक्रमी संवत् ९१८ (ई० स० ८६१) का मिला है। इस शिलालेख की भाषा प्राकृत है, इस के उन्नीसवें पद्य में नक्षत्र वारादि सहित संवत् लिखकर, उस के आगे, जिन-मन्दिर बनाने वाले प्रतीहार कक्कुक महाराज के कई उत्तम कार्यों का कथन कर, कक्कुक का जिन-मन्दिर बनाना

और उसको धनेश्वर गच्छ के समर्पण करना लिखा है। यह कक्कुक, नाहडराव इस नाम से प्रसिद्ध नागभट का वंशज था, जिस का समय सातवीं शताब्दी होना चाहिये। कक्कुक के शिला-लेख में संवत्सर और जिनचैत्य विषयक ये गाथा है.—

†"वरिससएसु अ णवसुं अट्ठारहसमग्गलेसु चेत्तम्मि।
णक्खत्ते विहुहत्थे वुहवारे धवलबीआए॥ [१६]"
तेश सिरिकक्कुएणं जिणस्स देवस्स दुरिअणिद्दलण।
कारविअं अचलमिमं भवणं भत्तीए सुहजणयं॥ [२२]"
अप्पिअमेअं भवणं सिद्धस्स धणेसरस्स गच्छमि॥"

भावार्थ —विक्रम संवत् ९१८ (ई०सन ८६१) के चैत्र सुदि द्वितीया बुधवार को हस्तनक्षत्र में जिनराज का यह कल्याण-कारी दृढ़ मन्दिर श्री कक्कुक महाराज ने भक्तिभाव से बनवाया जिस से पाप का नाश हो।

यह शिला-लेख प्रतीहार (पडिहार कक्कुक ने अपनी कीर्ति चि-रस्थायनी रहने के लिये जिनराज के मन्दिर में लगवाया था। इसी कक्कुक महराज का दूसरा शिला-लेख उसी संवत का उसी स्थान

† "वर्षशतेषु च नवसु अष्टादशसमग्रेषु चैत्रे।
नक्षत्रे विधुहस्ते बुधवारे धवल द्वितीयायाम्॥
तेन श्रीकक्कुकेन जिनस्य देवस्य दुरितनिर्दलनम्।
कारापितमचलमिदं भवनं भक्त्या शुभजनकम्।
अर्पितमेतद्भवनं सिद्धस्य धनेश्वरस्य गच्छे॥

में मिला है, उस से पाया जाता है कि यह राजा जैनी ही नहीं था किन्तु विद्वान् भी था। क्योंकि इस शिला-लेख के अन्त में एक श्लोक लिखकर उसके आगे लिखा है कि यह श्लोक स्वयं कक्कुक महाराज ने बनाया है:—

"यौवने विविधैर्भोगैर्मध्यमं चन्वयः श्रिया।
वद्धभावश्च धर्मेण यस्य याति स पुण्यवान्॥"

भावार्थ:—जिसकी युवा अवस्था नाना प्रकार के भोग भोगने में, और मध्यम वय धन उपार्जन करने में तथा वृद्धावस्था धर्मध्यान में व्यतीत होवे, वही पुण्यवान् पुरुष है। यह श्लोक श्री कक्कुक ने स्वयं रचा है।

पहला शिला-लेख प्राकृत भाषा में है, जिस से यह सूचित होता कि उस समय के विद्वान् केवल प्राकृत भाषा के ही पण्डित नहीं थे, किन्तु उनको जैन-धर्म का पूर्ण अभिमान भी था। और दूसरे शिलालेख के अन्तिम श्लोक से यह बोधित होता है कि महाराज कक्कुक केवल विद्वान ही नहीं थे, किन्तु नीतिनिपुण और धर्मानुरागी भी थे।"

[१५ जनवरी सन् २३]

मारवाड़ के जैन राठौड़ राजा

कन्नौज के अन्तिम राजा गहड़वाल राजा जयचन्द के वंशजों के राजपूताने मे आने के पहले भी हस्तिकुण्डी (हँथूड़ी, जोधपुर राज्य) में और धनोप (शाहपुर राज्य) मे राष्ट्रकूटो के राज्य होने के प्रमाण मिलते हैं। वि० सं० १०५३ (ई० सन् ९९७) का एक लेख बीजापुर से मिला है। यह स्थान जोधपुर राज्य के गोडवाड़ के परगने मे है। इस शिलालेख का वाचन भी विद्वद्वर्य पं० रामकरणजी ने किया है और वह शुद्ध करके उन्होंने "एपिग्राफि-काइण्डिका" मे दुबारा छपवा दिया है। आप लिखते हैं —

१. हरिवर्मन:—

"यह शिलालेख कहता है कि हस्तिकुंडीनगरी में हरिवर्मन के पुत्र

२. विदग्धराज:—

ने विक्रमी संवत् ९७३ (ई० स० ९१६) मे [illegible] की सन्तान में जो वासुदेवाचार्य हुए, उनके उपदेश से जिनराज का मन्दिर बनवाया और पूजा का निर्वाह होने के लिये [illegible] लगादी। इस विषय के उसमे ये पद्य हैं —

(पं०३) "रिपुवधुवदनेन्दुहृतद्युतिः समुदपादि विदग्धनृपस्ततः[५*]
स्वाचार्यैर्या रुचिरवच [नैर्व्या] सुदेवाभिधानै-
र्बो(र्बो) धं नीतो दिनकर करै र्नीरजन्माकरो व ।
पूर्व्वं जैनं निजमिव यशोऽकारयद्धस्तिकुण्ड्यां ।
रम्यं हर्म्यं गुरुहिमगिरेः शृङ्गशृङ्गारहारी ॥ [६ *]

भावार्थः—राष्ट्रकूट (राठौड़) विदग्धराज ने श्री वासुदेवाचार्य के उपदेश से हस्तिकुण्डी नगरी में जिनराज का मन्दिर करवाया।

इस जिन-मन्दिर के निमित्त जो दान दिया गया था, उसके वर्णन के अनन्तर ३० वीं पंक्ति में दान का समय कहा हैः—

(पं ३०) "रामगिरिनन्दकलिते विक्रमकाले गते तु शुचिमासे ।
श्री मब्दलभद्रगुरोर्व्विदग्धराजेन दत्तमिदम् ॥ "

भावार्थः—विदग्धराज ने वि० सं० ९७३ में श्रीवलभद्र आचार्य को उक्त दान दिया।

३. मम्मटः—

फिर वि० सं० ९९६ (ई०सन्९३९) में उसके पुत्र मम्मट ने उस दान का समर्थन करदिया कि पीछे से उस में कुछ हानि न हो। इस विषय का यह पद्य हैः—

(पं ३१) "नवसु शेतपु गतेपु तु पण्णवतीसमधिकेपु मावस्य ।
कृष्णैकादश्यामिह समर्थितं मम्मटनृपेण ॥"

भावार्थ :—वि० सं० ९९६ के माघवदि ११ को मम्मट राजा ने उक्त दान का समर्थन किया ।

४. धवल:—

मम्मट के पुत्र धवलराज ने वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९६) में उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार किया और मन्दिर मे श्रीऋषभदेव की नई मूर्ति स्थापित की और महाध्वज चढाया । और मन्दिर की आमदनी मे कुछ और वृद्धि कर अन्त में अपने पुत्र बालाप्रसाद को युवराज पदवी दे, आप विरक्त हो राजकार्य से अलग होगया ।"

उक्त शिलालेख में १० काव्यो मे धवलराज के यश और शौर्यादि गुणो का वर्णन किया गया है । १०वे श्लोक मे उल्लेख है कि मालवा के परमार राजा मुञ्ज ने जिस समय मेदपाट (मेवाड़) राज्य के आघाट स्थान पर आक्रमण किया, उस समय यह उनसे लड़ा था और साम्भर के चौहान राजा दुर्लभराज से नाडोल के चौहान राजा महेन्द्र की रक्षा की थी, तथा अनहिलवाड़ा (गुजरात) के सोलंकी राजा मूलराज द्वारा नष्ट होते हुये धरणीवराह को आश्रय दिया था । यह धरणीवराह शायद मारवाड़ का परिहार राजा होगा ।

५ बालाप्रसाद—

इस का इस शिलालेख में विशेष वर्णन नहीं मिलता। उपरोक्त विवरण संक्षेप में दिया गया है। इस शिलालेख की नक़ल "प्राचीन जैन-लेख-संग्रह" में अंकित है।

[१६ जनवरी सन् ३१]

जोधपुर-राजवंश के जैन-वीर

राष्ट्रवर (राठौड़) राव सीहोजी के पुत्र आयस्थानजी ने कन्नौज से संवत् १२३३ मे मारवाड़ मे आकर परगने मानाणी के गॉव के खेड़ में संवत् १२३७ में अपना राज्य स्थापित किया, उस समय ३४० गॉव उनके आधीन थे।

आयस्थानजी के पुत्र धुहड़जी संवत् १२६१ मे राज्य के उत्तराधिकारी हुये।

धुहड़जी के पुत्र रायपालजी संवत् १२८५ मे सिंहासनारूढ़ हुए।

रायपालजी के तेरह पुत्र थे, उनमें से ज्येष्ठ पुत्र राव कानपाल जी तो राज्य के अधिपति हुये और चतुर्थ पुत्र मोहणजी थे, उन का प्रथम विवाह जैसलमेर के भाटी जोरावरसिंहजी की पुत्री से हुआ, जिससे कुॅवर भीमराजजी पैदा हुये, उनके वंश के [illegible] राठौड़ कहलाते है।

बाद मे मोहणजी ने जैनधर्म के उपदेशक [illegible] के उपदेश से जैनधर्म का अवलम्बन कर, दूसरा विवाह [illegible] श्रीनमाल के गाव पचपदरिये मे [illegible]

जीवणोत छाजूजी की कन्या से किया, जिससे सम्पत्ति सेन (सपटसेन) जी उत्पन्न हुये।

सम्पत्ति सेनजी ने भी अपने पिता के तुल्य संवत् १३५१ के कार्तिक सुदी १३ को जैनधर्म का उपदेश लिया, उनके वंश के मोहणोत ओसवाल कहलाते हैं। जिनका संक्षेपतया विवरण निम्न लिखित है :—

१. मेहता महाराजजी:—

यह मोहणजी की ९ वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुये। राव जोधाजी के साथ संवत् १५१५ में मंडोर से जोधपुर आये, दीवानगी तथा प्रधानगी का कार्य किया। संवत् १५२६ में महाराजा ने प्रसन्न हो कर इनके रहने के लिये फतहपोल के समीप एक हवेली बनवादी।

२. मेहता रायचन्द्रजी:—

मोहणजी की २० वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुये। मरुधराधीश राजा शूरसिंहजी के कनिष्ट भ्राता कृष्णसिंहजी को जागीर में सोजत परगने के दूदोड़ आदि १२ गाँवों का पट्टा मिला और संवत् १६५२ में इन्होंने अपने पट्टे के गाँव दूदोड़ में रिहास अख्तियार करली। फिर संवत् १६५४ में अजमेर के सूबेदार नव्वाब मुरादअली के द्वारा बादशाह अकबर की सेवा में पहुँचे। बादशाह ने प्रसन्न होकर संवत् १६५५ में हिंडोन आदि सात परगने प्रदान किये। संवत् १६५८ में महाराज कृष्णसिंहजी ने अपने नाम से एक नूतन नगर बसाकर उसका नाम कृष्णगढ़ रक्खा। जब महा-

राज कृष्णसिंहजी ने जोधपुर से प्रस्थान किया तब मेहता रायचन्द्र जी तथा उनके कनिष्ठ भ्राता शंकरमणिजी भी उनके साथ थे। इन दोनों भाइयों के कार्यों से प्रसन्न होकर महाराजा साहब ने मेहता रायचन्द्रजी को अपना मुख्य मंत्री नियत किया और दोनों भाइयों के रहने के लिये दो बड़ी बड़ी हवेलियाँ बनवाईं, जो कि बड़ी पौल और छोटी पौल के नाम से अभी तक प्रसिद्ध हैं।

मेहता रायचन्द्रजी ने एक जैन-मन्दिर श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का संवत् १६७० में बनवाना प्रारम्भ किया और संवत् १६७[illegible] में उसकी प्रतिष्ठा कराई। वह मन्दिर कृष्णगढ़ में अब तक विद्यमान है।

कृष्णगढाधीश महाराज मानसिंहजी अपने कुल क्रमागत [illegible] तथा अनुभवी मुख्य मंत्री मेहता रायचन्द्रजी से अत्यन्त प्रसन्न थे। संवत् १७१६ के एक महोत्सव पर इनकी हवेली में पधार कर महाराज ने भोजन करके इनका गौरव बढ़ाया था और इसके एक वर्ष पश्चात् पालड़ी नामक ग्राम पारितोषक रूप में दिया था। संवत् १७२३ में मेहताजी का स्वर्गवास हुआ।

३. मेहता वृद्धभानजी:—

(मोहणजी की २१ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) यह महाराज श्री मानसिंहजी के तन दीवान (प्राईवेट सेक्रेटरी) थे। इस कारण हर समय उनके साथ रहते थे। संवत् १७६५ में स्वर्गस्थ हुए।

४. मेहता कृष्णदासजी:—

(मोहणजी की २२ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) यह महाराज श्री

सिंहजी के मुख्य मंत्री थे । महाराजा तो विशेषतया देहली रहते थे, इस कारण राज्य के सब कार्य इन्हीं के अधिकार में थे। सं० १७५० में "वुहारू" गाँव इनको मिला । सं० १७५६ में नव्वाब अब्दुल्लाखाँ जब कृष्णगढ़ में बादशाही थाना जमाने को फौज ले कर चढ़ आया, तब इन्होंने उसके साथ युद्ध करके उसे पराजित किया। सं० १७६३ में स्वर्गासीन हुये।

५. मेहता आसकरणजी:—

(मोहणजी की २३ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) यह महाराज राजसिंहजी के समय सं० १७६५ में मुख्य दीवान नियत किये गये।

६. मेहता देवीचन्द्रजी:—

(मोहणजी की २४ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) यह रूपनगर के महाराज सरदारसिंहजी के समय उस राज्य के मुख्य दीवान थे।

७. मेहता चैनसिंहजी:—

(मोहणजी की २५ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) यह महाराज प्रतापसिंहजी के समय आषाढ़ शुक्ला ७ संवत् १८५३ में कृष्णगढ़-राज्य के मुख्य दीवान नियत हुये और महाराज कल्याणसिंहजी के शासनकाल में आजीवन दीवान रहे। यह सच्चे स्वामी तथा देश भक्त थे। एक वार महाराजा प्रतापसिंह ने प्रसन्न होकर कहा था "चैन विना सब चोर मुसद्दी" यह कहावत उस राज्य में अब तक प्रसिद्ध है। इनकी दीवानगी के समय में मरहटों ने उक्त राज्य पर अनेक आक्रमण किये। किन्तु इनकी वीरता और राजनीति के

सामने उन्हें हमेशा मुँह की खानी पड़ी। सं० १८६१ मे स्वर्गासीन हुये।

८. महता अचलोजी:—

(मोहणजी की १८ वीं पीढ़ी में उत्पन्न महता अर्जुनजी के बड़े भाई) राव चन्द्रसेनजी पौष सुदी ६ सं० १६१९ को जोधपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठे। तब इन्होंने राज्य का काम किया। अनेक युद्धों में जोधपुर नरेश के साथ रहे। महाराजा साहब के डूगरपुर से जोधपुर आते समय सोजत परगने के सवराड गाव मे मुगलों से लड़ाई हुई, इस युद्ध मे भी यह साथ थे। श्रावण वदी ११ सं० १६३५ मे युद्ध में लड़ते हुये वीर-गति को प्राप्त हुये। उन की पवित्र स्मृति मे राज्य की ओर से छत्री बनवाई गई [illegible] अब तक मौजूद है।

९. महता जयमल्लजी:—

(अचलोजी के पौत्र) संवत् १६७१ व सं० १६७२ मे महाराज सूरसिंहजी के राज्य में गुजरात मे वड़नगर के सूबेदार रहे। सं० १६७२ में ही फलौदी पर अधिकार होने पर वहाँ के हाकिम नियत हुये। सं० १६७४ में जहांगीर बादशाह ने बीकानेर के राजा सूरसिंह को फलौदी का परगना (जो जोधपुर के अधिकार में था) दे दिया। तब अपना अधिकार जमाने के लिये जो बीकानेर-राज्य ने सेना भेजी थी, उससे इन्होंने युद्ध करके उसे भगा दिया और फलौदी पर उनका अधिकार नहीं होने दिया। सं० १६७१ [illegible] १० को महाराज गजसिंहजी ने जालोर परगने पर [illegible]

कार किया, उस समय यह भी उनके साथ थे। अतएव जालोर की हूकूमत प्रथम इन्हीं को मिली। सं० १६८१ में जालोर, शतरुँजा, सांचारे, मेड़ता और सिवाना में इन्होंने जैनमन्दिर बनवाये। इसी वर्ष महाराज गजसिंहजी जब जहाँगीर की सहायता के लिये हाजीपुर पटना की ओर गये थे, तब यह उनके साथ फौजमुसाहिब होकर गये थे। सं० १६८६ से १६९० तक दीवान पद पर प्रतष्ठित रहे। संवत् १६८७ में एक वर्ष तक अकाल पीड़ितों का १ वर्ष तक भरण-पोषण किया। सं० १६८९ में सिरोही के राव अखेराजजी पर एक लक्ष पीरोंजों (एक प्रकार की मुद्रा) की पेशकशी (दण्ड) ठहराई, जिसमें ७५००० तो रोकड़ा लिये और २५०००) बाक़ी रक्खे।

१०. मेहता नैणसीः—

श्रद्धेय ओझाजी लिखते हैं :—"जयमल की दो स्त्रियाँ बड़ी सरूपदे और छोटी सुहागदे थीं। सरूपदे से नैणसी, सुन्दरदास, आसकरण, और नरसिंहदास ये चार पुत्र हुए, और सुहागदे से जगमाल।

नैणसी का जन्म संवत् १६६७ मार्गशीर्ष सुदी ४ शुक्रवार को हुआ था। वि० सं० १७१४ में जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह (प्रथम) ने नैणसी को अपना दीवान बनाया था। कई वर्षों तक राज्य की सेवा करके विशेष अनुभव प्राप्त किये हुए बुद्धिमान् पुरुष का जोधपुर जैसे बड़े राज्य का दीवान बनाया जाना उचित

ही था। इसलिये दीवान बनने के समय नैणसी की अवस्था ४७ वर्ष की थी।

मेहता नैणसी भी जोधपुर राज्य की सेवा मे रहा, और वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण, वि० सं० १६८९ मे मगरा के मेरो का उपद्रव बढ़ता देखकर महाराज गजसिंह ने मेरो को सजा देने के लिये उसको सेना सहित भेजा। उसने मेरो को सजा दी और उनके गाँव जलाये। वि० सं० १७०० में महेचा महेसदास बागी होकर राड़धरे के गाँवो मे बिगाड़ करता रहा, जिस पर महाराज जसवन्तसिंह ने नैणसी को राड़धरे भेजा। उसने राड़धरे को विजय कर वहाँ के कोट (शहरपनाह) और मकानो को गिरा दिया, तथा महेचा महेसदास को वहाँ से निकाल कर [illegible] अपनी फौज के मुखिया रावत जगमाल भारमलोत (भारमल के पुत्र) को दिया। सं० १७०२ मे रावत नराण (नारायण) [illegible] की ओर के गाँवों को लूटता था, जिससे महाराज ने [illegible] नैणसी तथा उसके भाई सुन्दरदास को उस पर भेजा। [illegible] [illegible]कडा, कोट, कराणा, माकड़ आदि गाँवो को नष्ट कर दिया। वि० सं० १७१४ में महाराज जसवंतसिंह (प्रथम) ने [illegible] की जगह नैणसी को अपना दीवान बनाया। महाराज जसवन्तसिंह और औरंगजेब के बीच अनबन होने के कारण वि० सं० १७१५ में जैसलमेर के रावल सबलसिंह ने फलोदी और पोकरन जिले के १० गाँव लूटे, जिससे महाराजने [illegible] मार्ग से ही मुहणोत नैणसी को जैसलमेर पर चढ़ाई करने [illegible]

आज्ञादी। इसपर वह जोधपुर आया और वहाँ से सैन्य सहित चढ़कर उसने पोहकरण में डेरा डाला। इसपर सबलसिंह का पुत्र अमरसिंह, जो पोहकरण ज़िले के गावों में था, भाग कर जैसलमेर चला गया। नैणसी ने उसका पीछा किया और जैसलमेर के २५ गाँव जला कर, जैसलमेर से तीन कोस की दूरी के गाँव वासणपी में वह जा ठहरा। परन्तु जब रावल क़िला छोड़ कर लड़ने को न आये, तब नैणसी आसणी कोट को लूटकर लौट गया।

वि० सं० १७११ में पंचोली बलभद्र रायोदासोत (रायोदास-का पुत्र) की जगह नैणसी का छोटा भाई सुन्दरदास महाराज-जसवन्तसिंह का खानगी दीवान नियत हुआ। वि० सं० १७१२ में सिंघलवाघ पर महाराज जसवंतसिंह ने फौज भेजी। उस समय वाघ ४०१ राजपूतों के साथ लड़ने को सुसज्जित होकर बैठा था। महाराज की फौज में ६९१५ पैदल थे, जिनके दो विभाग किये गये। एक विभाग का, जिस में ३५४३ सैनिक थे, अध्यक्ष राठौड़ लखधीर विट्ठलदासोत (विट्ठलदास का बेटा) था। दूसरे विभाग के, जिस में ३३७२ सैनिक थे, अध्यक्षों में मुख्य मुहणोत सुन्दरदास था। सिंगलों से लड़ाई हुई, जिसमें बहुत से आदमी मारे गये, और महाराज की विजय हुई। वि० सं० १७२० में महाराज जसवन्त-सिंह की सेना ने बादशाह औरंगजेब की तरफ़ से प्रसिद्ध मराठा वीर शिवाजी के आधीन के गढ़ कुँडाँणे पर चढ़ाई कर गढ़ पर मोरचे लगाये। इस चढ़ाई में सुन्दरदास जयमलोत मरना निश्चय कर लड़ने को गया था, परन्तु गढ वालों के अरावों की मार से

महाराज को अपनी फौज वापिस लेनी पडी।

संवत् १७२३ मे महाराज जसवन्तसिंह औरंगाबाद में थे और मुहणोत नैणसी तथा उसका भाई सुन्दरदास दोनो उसके साथ थे। किसी कारण वशात् महाराज उनसे अप्रसन्न हो रहे थे, जिससे पौष सुदी ९ के दिन दोनो को कैद कर दिया। महाराज के अप्रसन्न होने का ठीक कारण ज्ञात नही हुआ। परन्तु जन-श्रुति मे पाया जाता है कि नैणसी ने अपने रिश्तेदारों को बड़े २ पदों पर नियत कर दिया था और वे लोग अपने स्वार्थ के लिये प्रजा पर अत्याचार किया करते थे। इसी बात के जानने पर महाराज उनसे अप्रसन्न होरहे थे।

वि० सं० १७२५ मे महाराज ने एक लाख रुपये दण्ड लगा कर उन दोनो भाइयो को छोड दिया, परन्तु इन्होने एक पैसा भी देना स्वीकार नही किया। इस विषय के नीचे लिखे हुये दोहे मारवाड़ मे अब तक प्रसिद्ध है —

लाख लखांरा नीपजे, वड़ पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक ॥१॥

लेसो पीपल लाख, लाख लखारा लावसी।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ॥२॥

नैणसी और सुन्दरदास के दण्ड के रुपये देना स्वीकार न

[illegible]
[illegible]

करने पर वि० सं० १७२६ माघ वदी १ को फिर वे दोनों क़ैद कर दिये गये और उन पर रुपयों के लिये सख्तियाँ होती रहीं। फिर क़ैद की ही हालत में इन दोनों को महाराज ने औरंगाबाद से मारवाड़ को भेज दिया। दोनों वीर प्रकृति के पुरुष होने के कारण इन्होंने महाराज के छोटे आदमियों की सख्तियाँ सहन करने की अपेक्षा वीरता से मरना उचित समझा। वि० सं० १७२७ की भाद्रपद वदी १३ को इन्होंने अपने२ पेट में कटार मारकर मार्ग में ही शरीरांत कर दिया। इस प्रकार महापुरुष नैणसी की जीवन लीला का अंत हुआ और महाराज की बहुत कुछ बदनामी हुई।

नैणसी के पुत्र और पौत्र

नैणसी और सुन्दरदास के इस प्रकार वीरता के साथ प्राणोत्सर्ग करने की खबर जब महाराज को हुई, तब उन्होंने नैणसी के पुत्र करनसी और उसके अन्य बालबच्चों को जो क़ैद किये गये थे, छुड़वा दिया। महाराज के अत्याचार को स्मरण कर वे लोग जोधपुर छोड़कर नागौर के स्वामी रामसिंह के पास चले गये। जो जोधपुर के महाराज गजसिंह के पौत्र और बादशाह शाहजहां के दरबार में सलावतख़ाँ को मारने वाले प्रसिद्ध वीर राठौर अमरसिंह के पुत्र थे। रायसिंह ने अपने ठिकाने का सारा काम करमसी के सुपुर्द करदिया। इस पर महाराज ने मुहणोतों को जोधपुर राज्य की सेवा में नियत न करने की शपथ खाई। परन्तु उनकी प्रतिज्ञा का पीछे से पालन न हुआ। क्योंकि पीछे भी महाराज बखतसिंह

मानसिंह आदि के समय में मुहणोत वंशी मुसाहिब रहे हैं।

महाराज रायसिंह वि०सं० १७३२ आषाढ वदी १२ को दक्षिण के गाँव सोलापुर में दो चार घड़ी बीमार रहकर अचानक मरगये। तब उनके मुत्सद्दियों आदि ने उनके गुजराती वैद्य से पूछा कि रायसिंह अचानक कैसे मरगये ? इस पर उसने गुजराती भाषा में उत्तर दिया —"करमां नो दोष छे" (भाग्य का दोष है) जिस का अर्थ रायसिंह के मुसाहिबों ने यह समझा कि "करमा (करमसी) ने इनको मारा है" फिर उस (करमसी) पर विष देने का [illegible] कर उसको वहीं जिन्दा दीवार में चुनवा दिया गया, और [illegible] लिखा गया कि इसके जो कुटम्बी वहां हैं, उन [illegible] डालकर कुचल डालना। इस हुक्म के पहुँचने पर [illegible] प्रतापसी अपने कई रिश्तेदारों के साथ मारा गया [illegible] की दो स्त्रियों ने अपने पुत्र सावंतसिंह के साथ भाग [illegible] (कृष्णगढ़, राजपूताना) में शरण ली। [illegible] वहां से [illegible] बीकानेर में जा रहे।

नैणसी के ग्रन्थ

मुहणोत नैणसी जैसा वीर [illegible] [illegible] भाषानुरागी, इतिहास प्रेमी और वीर [illegible] वाला नीति निपुण पुरुष था। उसका [illegible] [illegible] ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है। यह [illegible]

पृष्ठ से अधिक बड़ा और राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, बघेलखंड, और मध्यभारत के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है ।

ख्यात-सामग्री

नैणसी की इतिहास पर बड़ी रुचि होने के कारण उसने चारणों, भाटों अनेक प्रसिद्ध पुरुषों, कानूनगो आदि से जो कुछ ऐतिहासिक वृतान्त मिल सका, उससे तथा उस समय से मिलने वाली ख्यातों आदि सामग्री से अपनी ख्यात का संग्रह किया। जोधपुर के दीवान नियत होने के पहिले से ही उसको ऐतिहासिक वातों के संग्रह करने की रुचि थी। और ऐसी प्रतिष्ठित राज्य का दीवान होने के पीछे तो उसको अपने काम में और भी सुभीता रहा होगा। उसने कई जगह पर, जिन जिन से जो कुछ वृत्तांत प्राप्त हुआ, उसका संवत् मास सहित उल्लेख भी किया है ॥

नैणसी की ख्यात मुख्यतः राजपूताने और सामान्य रूप से ऊपर लिखे हुए अन्य देशों के इतिहास का एक बड़ा संग्रह है। उक्त ख्यात में चौहानों, कछवाहों, और भाटियों का इतिहास तो इतने विस्तार के साथ दिया गया है, कि जिसका अन्यत्र कहीं मिलना सर्वथा असम्भव है। वंशावलियों का तो ख्यात में इतना संग्रह है, जो अन्यत्र मिल ही नहीं सकता। उसमें अनेक लड़ाइयों के वर्णन, उनके निश्चित् संवत, तथा सैंकड़ों वीर पुरुषों के जागीर पाने या लड़कर मारे जाने का संवत् सहित उल्लेख देखकर यह कहना अनुचित न होगा कि नैणसी जैसे वीर प्रकृति के पुरुष ने

अनेक वीर पुरुषो के स्मारक अपनी पुस्तक मे सुरक्षित किये है। वि० संवत १३०० के बाद से नैणसी के समय तक के राजपूतो के इतिहास के लिये तो मुसलमानो की लिखी हुई फारसी तवारीखो मे भी नैणसी की ख्यात कहीं— विशेष महत्व की है। राजपूताने के इतिहास मे कई जगह जहाँ प्राचीन शोध मे प्राप्त सामग्री इतिहास की पूर्ति नहीं कर सकती, वहाँ नैणसी की ख्यात ही [illegible] सहारा देती है। यह इतिहास एक अपूर्व संग्रह है। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी तो नैणसी को 'राजपूताने का [illegible]' कहा करते थे, जो अयुक्त नहीं है। ख्यात की भाषा लगभग २७५ वर्ष पूर्व की मारवाड़ी है, जिस का इस समय [illegible] समझना भी सुलभ नहीं है। नैणसी ने जगह [illegible] इतिहास के साथ कितने ही लोगो के वर्णन के गीत, [illegible] आदि भी उद्धृत किये हैं, जो डिंगल भाषा मे है। उनमे से [illegible] २८० वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। उनका समझना [illegible] और भी कठिन है॥

नैणसी के पौत्र प्रतापसिंह के मारेजाने पर उसके [illegible] सांवतसिंह और संग्रामसिंह अपनी दोनो माताओ [illegible] गढ और वहाँ से बीकानेर जा रहे। नैणसी की [illegible] वे अपने साथ बीकानेर लेगये और सुना जाता है कि [illegible] वंशजो ने वह मूल पुस्तक (या उसकी नकल) [illegible] बरसी। कर्नल टोड के समय तक उस पुस्तक [illegible] यदि उनको वह पुस्तक मिल जाती तो [illegible]

दूसरे ही रूप में लिखा जाता। कर्नल टॉड के स्वदेश लौट जाने के बाद आज से अनुमान ८०, ९० वर्ष पूर्व उसकी सुन्दर अक्षरों में लिखी एक प्रति बीकानेर राज्य की तरफ से महाराणा उदयपुर के यहाँ पहुँची, जो वहाँ के राजकीय 'वाणीविलास' नामक पुस्तक में विद्यमान है। उदयपुर के वृहत इतिहास 'वीरविनोद' के लिखे जाने के साथ उक्त पुस्तक का उपयोग कई स्थानों में हुआ। जब मैंने उस का महत्व देखा, तो, अपने लिये उसकी एक प्रति तैयार करने का विचार किया। परन्तु ऐसी बड़ी पुस्तक की नक़ल करना कई महीनों का काम था; और इतने समय के लिये राज्य की ओर से उसका मिलना असम्भव देखकर मैंने जोधपुर के कविराजा मुरारीदानजी को लिखा—"नैणसी की ख्यात को मुझे बड़ी आवश्यकता है। यदि आप कहीं से उसकी प्रति नक़ल करवा भेजें तो बड़ी कृपा होगी।" इसके उत्तर में उन्होंने लिखा—"नैणसी की ख्यात की मूल प्रति बीकानेर दरबार के पुस्तकालय में थी, जहाँ से कर्नल पाउलैट (रेजिडेंट जोधपुर) उसे ले आये। और जिस समय वे स्वदेश लौटने लगे, उस समय मैंने वह प्रति उनसे माँगी; तो कृपाकर उन्होंने वह मुझे बख्शदी, जो मेरे यहाँ विद्यमान है। उसकी नक़ल कराकर मैं आपके पास भेज दूँगा।" फिर उन्होंने अपने ही व्यय से उसकी नक़ल कराना शुरू किया और ज्यों २ नक़ल होती गई, त्यों २ उसका थोड़ा २ अंश वे मेरे पास भेजते रहे। इस प्रकार जब सारी पुस्तक सं० १९५९ में मेरे पास पहुँच गई, तब मैंने उसका 'वाणी विलास' की प्रति से मिलान

किया, तो दोनों पुस्तकें ठीक मिल गईं। फिर मैंने उसका सूचीपत्र बनाकर उसकी जिल्द बँधवाली। दूसरे वर्ष जब कविराज जी का उदयपुर आना हुआ, तब मैंने वह पुस्तक उनको दिखलाकर उन की इस बड़ी कृपा के लिये उन्हें धन्यवाद दिया।"

(मेहता मोहणोत नैणसी की ख्यात से)

११. मेहता सुन्दरदासजी:—

(जयमल्लजी के पुत्र) यह महाराज जसवन्तसिंह के तन दीवान (प्राईवेट सेक्रेटरी) सं० १७११ से १७२३ तक रहे।

१२. मेहता करमसीजी:—

(नैणसीजी के पुत्र) महाराज जसवन्तसिंह और [illegible] जो उज्जैन के पास मौजे चोरनारायण में इतिहास प्रसिद्ध [illegible] था ‡, उस मे इन्होंने अत्यन्त वीरता से युद्ध किया और [illegible] घायल हुये।

---

‡ इस इतिहास प्रसिद्ध युद्ध की एक घटना [illegible] छोटीसी कहानी लिखी थी जो "[illegible]" सुन्दरी" भाग २ अंक ११ में प्रकाशित [illegible] पुस्तक के विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है उस में [illegible] ॥ यहाँ प्रसंगवश और शिक्षाप्रद समझ कर [illegible]—

शाहजहाँ के दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद [illegible] और जहानारा तथा रोशनारा यह दो [illegible] बीमार पड़ते ही शोणित-लोलुप [illegible] आपस में कट मरे। यह शाहजहाँ के [illegible]

१३. मेहता वैरसीजी:—

(नं ११ सुन्दरसीजी के पुत्र) यह रूपनगर के महाराज मान-सिंह के सं० १७४२ में प्राईवेट सेक्रेटरी रहे।

सिंहासन के लोभ को न दबा सके।

शाहजहाँ के गिड़गिड़ा कर अनुरोध करने पर मारवाड़-केसरी राजा यशवन्तसिंह तीस सहस्र राजपूत-सेना लेकर पितृद्रोही औरंगजेब का आक्रमण रोकने के लिए उज्जैन जा पहुँचे। किन्तु कूट-नीतिज्ञ औरंजेब के षड्यन्त्र के सामने उनकी वीरता काम न आई, अन्त में उन्हें रणक्षेत्र का परित्याग करना पड़ा।

राजा यशवन्तसिंह का शिशोदिया राजकुमारी के गर्भ से जन्म हुआ था और शिशोदिया कुल की एक वीर-बाला के साथ विवाह हुआ था। पवित्र शिशोदिया-कुल में विवाह कर पाने पर राजपूत राजा अपने को पवित्र और कृतार्थ समझते थे। राजा यशवन्तसिंह की स्त्री जैसे ऊँचे कुल में उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार ऊँचे गुणों और अलंकारों से विभूषित थी। जब उसने उज्जैन के युद्ध का वृतान्त सुना कि उसके पति की प्रायः समस्त सेना नष्ट हो गई है और वह शत्रु का पराजय न कर रण-भूमि से चला आया है। तब उसको विषम क्रोध और दारुण दुःख हुआ। वह मारे आत्मग्लानि के रो पड़ी और उसी आवेश में सोचने लगी:—

"न जाने मेरे कौन से पापकर्म का उदय है, जो मुझे ऐसा क्षत्रिय कुल-कलंकी पति मिला। अच्छा होता जो मैं विवाही न जाती, कायरपत्नि तो न कहलाती। विषपान करलूंगी, जीते जी

१४. मेहता संग्रामसिंहजी:—

(नं० १२ करमसीजी के पुत्र) इन्होंने मारवाड़ाधीश अजीतसिंहजी के राज्यकाल सं १७८० मे मारोठ परवतसर आदि सात परगनों की हुकूमत की।

आग मे कूद कर प्राण दे दूंगी किन्तु कायर-पत्नि न कहलाऊँगी। जब कि मेरे पूर्वज, शरीर मे रक्त की एक बून्द रहने तक, शत्रुओं का मान मर्दन करते रहे हैं। तब मेरा पति शत्रु के भय से भाग कर आवे और मैं उसे छुपा लूं ? वीर-दुहिता होकर ... कहलाऊँ ? लोग क्या कहेंगे ? सहेलियां ताना मारेंगी ... जी तो मेरा मुँह देखना भी पाप समझेंगे। और ... उमगें थीं। विजयी होकर आयेंगे, आरता उतारूँगी, ... रज लेकर सुहाग की चूनरी मे बांधूंगी, तलवार ... मेंहदी रचाऊँगी, उनके जख्मों को अपने हाथ से ... शत्रु-सहार-रण-कौशल को सुनकर मैं आपे मे न ... के मेरी छाती फूल उठेगी। दोनो मिलकर मातृभूमि ... करेंगे। किन्तु यह सब स्वप्न था, जो अन्धेरी रात ... देखा गया था। आह ! युद्ध-भूमि मे वीर-गति को ... हुए, नहीं तो साथ मे सती होकर जीवन सुधार ...

रोते-रोते शिशोदिया राजकुमारी ने ... मूर्ति धारण करली। वह सर्पणी के समान ... आज से बोली " मैं कायर पति का ... वीर-प्रसवा भूमि मे रण से ...

१५. मेहता सावंतसिंहजीः—

(नं १३ वैरसीजी के पुत्र) इन्होंने जालोर की हुकूमत की और उसके पास ही सं० १७८४ में सावंतपुरा नामका एक ग्राम वसाया।

नहीं, अतएव मेरी आज्ञा से शहर के दरवाज़े वन्द करदो।"

द्वारपाल थर-थर कांपने लगा, उसकी वुद्धि को काठ मार गया। वह गिड़गिड़ाकर वोला "महारानीजी का सुहाग अटल रहे। मैं आप की आज्ञा-पालन में असमर्थ हूँ, वह हमारे महाराजा हैं, जीवनदाता हैं।"

रानी—नहीं! अव वह जीवनदाता नहीं। जो प्राणों के भय से भागकर स्त्री के आँचल में छुपे, वह जीवनदाता नहीं। जीवनदाता वह है, जो सर्वसाधारण के हितार्थ अपना जीवनदान करने को सदा प्रस्तुत रहे।

द्वार०—महारानीजी! वह हमारे अन्नदाता हैं।

रानी—असम्भव! जो दासत्त्व-वृत्ति स्वीकार कर चुका हो, परतन्त्रता के वन्धन में जकड़ा जा चुका हो, जो दूसरे की दी हुई सहायता से अपने को सुखी समझता हो, वह अन्नदाता नहीं।

द्वार०—वह परतन्त्र नहीं, अपितु यवन वादशाह के दाहिने हाथ हैं।

रानी—वह भी किसलिये? अपने देश वासियों को नीचा दिखाने के लिए मायावी यवन वादशाह कांटे से कांटा निकालना चाहता है।

द्वार०—अर्थात्—

१६. राव सुरतरामजीः—

(नं० १४ संग्रामसिहजी के पुत्र) ये नागौर के महाराजा बखत-सिह जी के यहाँ फ़ौजबख्शी थे। सं० १८०८ मे महाराज के साथ

रानी—यही कि वह कुछ राजपूतो को अपने पक्ष मे करके भारत के समस्त राजपूतो को शिखंडी बनाना चाहता है। भारत के हाथो भारत-सन्तान का पतन चाहता है। भोले द्वारपाल ! चाहे रक्खो, स्वामी सेवक का चाहे जितना आदर क्यूं न करे, चाहे मणिमुक्ता देकर उसको सोने की जंजीर मे क्यों न मढ़ादे, परन्तु जो दास है, वह तो सदा दास ही रहेगा।

द्वार०—महारानीजी ! आपका कथन सत्य है किन्तु [illegible] भी पति है, उनका अपमान करने से क्या लाभ ? [illegible] आपको कुछ सीख नही दे रहा हूँ, परन्तु फिर भी [illegible] होने का अभिमान रखते हुए, मै यह प्रार्थना करता हूँ [illegible] इस समय तो उन्हे अन्त पुर मे बुलाकर सान्त्वना दे, [illegible] योचित कर्त्तव्य का ज्ञान कराने के लिए कुछ उतार [illegible] भी करे। इसके विपरीत करने से जग हँसाई होगी और [illegible] उद्दण्ड हो जायगी।

द्वारपाल के समय-विरुद्ध व्याख्यान को सुनकर [illegible] कुमारी गरज उठी, किन्तु द्वारपाल की स्वामि-भक्ति ने [illegible] को आगे न बढ़ने दिया, वह सहम कर बोली—

'तुम से अधिक मेरे हृदय मे उनका मान है [illegible] मेरे देवता है, मै उनकी पुजारिन हूँ। परन्तु [illegible]

जोधपुर आनेपर भी यही रहे। इनको राज्य की ओर से सं० १८०८ श्रावणवदी ३ को लूणावास और पाड़लाऊ गाँव रेख ३०००) तीन हज़ार के प्रदान किये गये। सं०१८२० ज्येष्ठ शुक्ला ५ को दीवानगिरी का अधिकार मिला। सं० १८२३ तक इस पद पर रहे। राज्य ने

वृद्धावस्था में तेरी वुद्धि पर पाला पड़ गया है, वीरता को जंग लग गया है, नहीं तो ऐसी वातें नहीं करता। क्या तू नहीं जानता कि मारवाड़ वीर-प्रसवा भूमि है? यहाँ के निवासी युद्ध से भागना नहीं जानते, वह जानते हैं युद्ध में कट कर मरना। महाराज को देखने पर जव उन्हें मालूम होगा कि यहाँ युद्ध से भागे हुये कायर को भी शरण मिल सकती है, उसका भी आदर होता है, तव वह भी यह कुटेव सीख जायँगे। अतएव मैं नहीं चाहती कि मेरे देश-वासी कायर वनें।"

वृद्ध द्वारपाल अवाक् रहगया! वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ की नाईं पृथ्वी को कुरेदने लगा।

\+ \+ \+

शिशोदिया राजकुमारी की सास भी छुपी हुई यह सव कुछ सुन रही थी। पुत्रवधू के वीरोचित शब्दों से यशवन्त की जननी का रक्त खौल उठा। यह वास्तव में उसका अपमान था। वह दुःख में अधीर हो उठी। पुत्र को पुनः रणक्षेत्र में कैसे भेजूं—वह यही सोचने लगी। अन्त में उसने क्रोध को दवाकर गर्म लोहे को ठण्डे लोहे से काटा। यशवन्तसिंह को वुलाकर सदा की भांति प्यार करके भोजन जिमाने लगी! सुवर्ण के स्थान में लोहे के

प्रसन्न होकर १५ हजार की जागीर इनको प्रदान की। सं० १८२२ में इन्होंने दक्षिणी खाजू के साथ युद्ध किया और उसे जीतकर उसकी सेना की सामग्री को लूट लिया। सं० १८३० के फाल्गुन सुदी ३ को इनको मुसाहबी का अधिकार मिला तथा राव की पदवी के साथ हाथी, पालकी का शिरोपाव मिला और चैत्र बदी सप्तमी के दिन महाराज ने २१०००) की जागीर प्रदान की।

वर्तन देखकर यशवन्तसिंह क्रुद्ध होगये। राज-माता भी [illegible] पर कृत्रिम क्रोधित होकर बोलीं—"देखती नहीं हो, मेरा बेटा तो [illegible] लोहे से डरकर यहाँ भाग आया है, फिर लोहा [illegible] ला रक्खा।" माता के इस व्यंग से यशवन्तसिंह [illegible] माता अपने उपदेश का अंकुर जमने योग्य भूमि देखकर [illegible]—

"यशवन्त! वास्तव में तू मेरा पुत्र नहीं। तुझे बेटा [illegible] मारे आत्म-ग्लानि के गड़ी जा रही हूँ। यदि तू मेरा [illegible] तो शत्रु को पराजित किये बिना न आता। तुझ [illegible] साहस, नहीं अभिमान नहीं, तू कुलकलंकी है, [illegible] है, तूने राजपूत कुल में जन्म लेकर, इस [illegible] लगा दिया। बहू का आत्माभिमान देखकर [illegible] रही है, किन्तु साथ ही दारुण अपमान के मारे [illegible] हूँ। एक तो वह वीर-प्रसवा [illegible], जिसने [illegible] जन्म दिया, और एक मैं जो तेरे जैसे [illegible] धिक्कार है मेरे पुत्र प्रसव करने को! [illegible] अच्छा तेरी जगह ईंट-पत्थर प्रसव करती [illegible]

१७. मेहता सवाईरामजी:—

(नं० १६ सुरतरामजी के पुत्र) संवत् १८३१ में इनके पिता का देहान्त होने पर उनका सारा अधिकार (मुसाहिबी तथा पट्टा) इन को मिला जो कि सं० १८४९ तक बना रहा।

१८. मेहता सरदारमलजी:—

(नं १७ सवाईरामजी के पुत्र) वैसाख सुदी ११ संवत् १८५६ में इनको दीवानगिरी मिली और आषाढ़ सुदी २ सं० १८५७ को २०००) की रेख का गाँव काकेलाव मिला।

१९. मेहता ज्ञानमलजी:

(नं० १६ सुतरामजी के पुत्र) यह महाराजा मानसिंहजी के दीवान रहे और गींगोली की लड़ाई तथा घेरे में उक्त महाराज की सेवा की।

आते। अस्तु, जो होना था सो हो चुका। किन्तु ठहर, मैं तेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती हूँ। वह कायरपत्नी नहीं कहलाना चाहती, तो मैं भी कायर पुत्र को जीवित रखना नहीं चाहती।"

क्रोध के आवेश में वीर-माता कटार निकाल कर मारना ही चाहती थी, कि यशवन्तसिंह रोकर पैरों पर गिर पड़े। फिर तलवार निकाल कर प्रतिज्ञा की "माता! जब तक मैं जीवित रहूँगा युद्ध में रहूँगा, युद्ध से कभी विमुख न हूँगा। जब तक शत्रुओं का नाश नहीं कर लूंगा कभी सुख से न बैठूंगा।" —गोयलीय

[जून सन् २८]

२०. मेहता नवमलजी :—

(नं० १९ ज्ञानमलजी के पुत्र) इन्होंने संवत् १८६१ में सिरोही फतह की और अल्पावस्था में ही इनका देहान्त होगया" ।

नोट:—इस मोहणोत ओसवाल वंश में अनेक प्रतिष्ठित नर-रत्न हुये हैं। जो राज्य के प्रारम्भ से ही वंशपरम्परागत दीवान पद पर प्रतिष्ठित होते रहे हैं। मेहता सरदारसिंह जी (मोहनजी की २८ वीं पीढ़ी में उत्पन्न) अपने जीवन के अन्त समय तक अर्थात् आषाढ सुदी ४ संवत् १९५८ तक दीवानगिरी का कार्य करते रहे, उनके इस मिती को स्वर्गासीन होने पर जोधपुर राज्य में यह ओहदा ही तोड दिया गया। इस वंश का विस्तृत [illegible] बहादुर मेहता विजयसिंहजी के जीवनचरित्र" से [illegible] पुस्तक से उक्त अवतरण संकलन किये गये हैं। उक्त [illegible] चरित्र" की पुस्तक से प्रकट होता है कि अब इस वंश में [illegible] की मान्यता नहीं रही है। अत इस वंश में कब तक जैनधर्म की प्रतिष्ठा रही, यह उक्त पुस्तक के लेखक मेहता [illegible] (मोहनजी की २९वीं पीढ़ी में उत्पन्न) से दर्याफ्त करने पर [illegible] अपने ता० १ जनवरी सन् ३३ के पत्र में लिखा था कि [illegible] वंश में श्रीचैनसिंहजी तक तो जैनधर्म रहा जैसा कि [illegible] की पुस्तक से प्रकट होता है। बाद में वैष्णवधर्म [illegible] लिया। लेकिन जैनधर्म पर हमारी पूर्ण [illegible] है।"

अत प्रस्तुत पुस्तक में उक्त वंश का [illegible] (मोहनजी की २५ वीं पीढ़ी में उत्पन्न [illegible]

१८६१) का दिया गया है जो प्रकट रूपसे जैनधर्मी रहे। यद्यपि उक्त लेखक महोदय के कथनानुसार अब भी इस वंश की जैन-धर्म पर पूर्ण श्रद्धा है, परन्तु पुस्तक का विषय केवल जैनधर्मनिष्ठ व्यक्तियों का चरित्र संकलन करना है, इसी लिये संवत् १८६१ के पश्चात् होनेवाले महानुभावों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

—गोयलीय

[२६ जनवरी सन् ३३]

दिनों में पशुवध न करने का आज्ञापत्र जारी किया। इसमें सन्देह नहीं कि भण्डारियों का पूर्वज राव लाखा एक महापुरुष था। वीरता और देशभक्ति में कोई उसका सानी न था। उसने अण-हिलवाड़ा से कर और चित्तौड़ के राजा से खिराज वसूल किया था।‡

बारहवीं पीढ़ी में उत्पन्न अल्हनदेव ने कुछ काल राज्य करके इस संसार को असार, शरीर को अपवित्र समझकर, अनेक धर्मशास्त्रों का अध्ययन करके वैराग्य ले लिया। इन्होंने ही महावीर स्वामी के नाम पर मन्दिर उत्सर्ग किया और वृत्ति निर्धारित की और यह भी लिखा कि "यह धन सुन्दर गाछा (ओसवाल जैनियों की ८४ शाखाओं में से एक) लोगों की वंश परम्परा को बराबर मिलता रहे। जबतक सुन्दरगाछा लोगों के वंश में कोई जीवित रहेगा तबतक के लिये मैंने यह वृत्ति निर्द्धारित की है। इस का जो कोई स्वामी होगा मैं उसका हाथ पकड़ कर कहता हूँ कि यह वृति वंश परम्परा तक चली जावै। जो इस वृत्ति को दान करेगा वह साठ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग म बसेगा और जो इस वृत्ति को तोड़ेगा वह साठ सहस्र वर्ष तक नर्क में रहेगा। " सं० १२२८ में यह दानपत्र लिखा गया) प्राग्वंशीय धरणीधर ओसवाल के पुत्र करमचन्द इनके मंत्री थे।"

(टा० रा० प्रथमभाग द्वि० खं० अ० २७ पृ० ७४७)—गोयलीय

‡ इस की वीरता के सम्बन्ध में टाडराजस्थान में लिखा है: "जिस समय ग़ज़नी बादशाह भारतवर्ष लूटने के लिये आया, तब वह चौहान जाति की प्रधान वासभूमि अजमेर पर अधिकार करने के लिये गया। वहाँ चौहान लोगों ने उचित शिक्षा देकर इसे युद्ध में परास्त और घायल किया। इस लिये वहाँ से भागकर नादौल होता हुआ सोमनाथ गया। नादौल के अधिकारी लाक्षा (लखमसी) ने उसके साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया। यही लाक्षा उस समय चित्तौड़ के अधीश्वरों से कर लेता था। इसके समय में जैनधर्म का विशेष प्रभुत्व रहा।"

(टा० रा० प्र० भा० द्वि० खं० अ० २७ पृ० ७४८)—गोयलीय

अब भी कोई यात्री वहाँ जाता है, तो उसे नाडोल का किला दिखाया जाता है। कहते हैं कि इसे लाखा ने ही बनवाया था। लाखा बड़ा ही सौभाग्यशाली पुरुष था। उसके चौबीस पुत्र-रत्न थे उनमें से एक का नाम दादराव (दूदा) था, वही भण्डारी-कुल का जन्मदाता है। कहा जाता है कि राजघराने के भण्डार का प्रबन्ध दादराव के हाथ में था। इसी कारण से इसकी सन्तान भण्डारी नाम से प्रसिद्ध हुई। विक्रम सं० १०४९ अथवा ई० सन् ९९२ में यशोभद्रसूरि ने दादराव को जैनधर्म में दीक्षित किया और उसके कुल को ओसवाल जाति में मिलाया था।

अब हम पाठकों को उन भण्डारियों का संक्षिप्त परिचय कराते हैं, जिन्होंने युद्ध में नाम पैदा किया था।

१. भाना भण्डारी:—

यह मारवाड़ में राजा गजसिंह के मातहत था और जैतारण का रहने वाला था। इसके पिता का नाम अमर था। वि०सं०१६७८ में इसने कापरड़ा में पार्श्वनाथ का एक विशाल मन्दिर बनवाया। उसकी शिलारोपण रस्म खरतरगच्छ के आचार्य जिनसेनसूरि से कराई। मूर्ति का लेख यह बतलाता है कि यह राय लखन के पीछे हुआ था।

२. रघुनाथ भण्डारी:—

यह महाराजा अजीतसिंह के समय में (१६८०–१७२५ ईस्वी) में हुआ। महाराज ने दीवान के पद पर नियुक्त करके राज्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यों को सौंप दिया था। राज्यप्रबन्ध और सिपाहगिरी दोनों कार्यों में इस का अनुभव बहुत बढ़ा चढ़ा था। कर्नल वाल्टर साहब का कथन है कि जब महाराजा अजीतसिंह देहली में विराजमान थे, तब रघुनाथ भण्डारी ने अपने स्वामी के नाम से मारवाड़ में कितने ही वर्ष शासन किया था। यह बात नीचे लिखे हुये पद से भी प्रकट होती है, जो जन साधारण में बहुत प्रसिद्ध है।

> 'कोड़ां द्रव्य लुटायो, हौदा ऊपर हाथ ।
> "अजि दिलीरो पातशो राजा तौ रघुनाथ"।

अर्थात्— जब अजीतसिंह दिल्ली पर शासन कर रहे थे,

उस समय रघुनाथ भण्डारी मारवाड़ पर राज्य कर रहा था।

३. खिमसी भण्डारीः——

यह दीपचन्द का पौत्र और रायसिंह का पुत्र था। यह भी महाराजा अजीतसिंह के समय में दीवान पद पर नियुक्त था। इसने दिल्ली के अधिपति से गुजरात के सूबेदारी की सनद प्राप्त करली थी। मारवाड का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भण्डारी खिमसी ने जज़िया कर जिसे औरंगजेब ने पुनः हिन्दुओं पर लगा दिया था—बन्द करा दिया था। यह यश भण्डारी खिमसी को ही प्राप्त है।

४. विजय भण्डारीः

अब हम पाठकों को उन भण्डारियों का संक्षिप्त परिचय कराते हैं, जिन्होंने युद्ध में नाम पैदा किया था।

१. भाना भण्डारी:—

यह मारवाड़ में राजा गजसिंह के मातहत था और जैतारण का रहने वाला था। इसके पिता का नाम अमर था। वि०सं०१६७८ में इसने कापरदा में पार्श्वनाथ का एक विशाल मन्दिर बनवाया। उसकी शिलारोपण रस्म खरतरगच्छ के आचार्य जिनसेनसूरि से कराई। मूर्ति का लेख यह बतलाता है कि यह राय लखन के पीछे हुआ था।

२. रघुनाथ भण्डारी:—

यह महाराजा अजीतसिंह के समय में (१६८०–१७२५ ईस्वी) में हुआ। महाराज ने दीवान के पद पर नियुक्त करके राज्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यों को सौंप दिया था। राज्यप्रबन्ध और सिपाहगिरी दोनों कार्यों में इस का अनुभव बहुत बढ़ा चढ़ा था। कर्नल वाल्टर साहब का कथन है कि जब महाराजा अजीतसिंह देहली में विराजमान थे, तब रघुनाथ भण्डारी ने अपने स्वामी के नाम से मारवाड़ में कितने ही वर्ष शासन किया था। यह बात नीचे लिखे हुये पद से भी प्रकट होती है, जो जन साधारण में बहुत प्रसिद्ध है।

'कोड़ां द्रव्य लुटायो, हौदा ऊपर हाथ ।
"आजि दिलोरो पातशो राजा तो रघुनाथ "।

अर्थात्— जब अजीतसिंह दिल्ली पर शासन कर रहे थे,

उस समय रघुनाथ भण्डारी मारवाड़ पर राज्य कर रहा था।

३. खिमसी भण्डारी:—

यह दीपचन्द का पौत्र और रायसिंह का पुत्र था। यह भी महाराजा अजीतसिंह के समय मे दीवान पद पर नियुक्त था। इसने दिल्ली के अधिपति से गुजरात के सूवेदारी की सनद प्राप्त करली थी। मारवाड़ का इतिहास इसवात का साक्षी है कि भण्डारी खिमसी ने जज़िया कर जिसे औरंगजेब ने पुनः हिन्दुओ पर लगा दिया था—वन्द करा दिया था। यह यश भण्डारी खिमसी को ही प्राप्त है।

४. विजय भण्डारी:

महाराजा अजीतसिंह जव गुजरात के सूवेदार नियुक्त हुये, तव उन्होंने अपने वहाँ आने तक इसको सूवेदारी का कार्य-भार दिया।

५. अनूपसिंह भण्डारी:—

यह दीवान रघुनाथसिंह का पुत्र था। संवत् १७६७ मे महाराजा अजीतसिंह के समय में यह जोधपुर का हाकिम नियुक्त हुआ। उस समय की हुकूमत आजकल जैसी शान्तिमय नहीं थी। आन्तरिक इन्तजामी मामलो के साथ साथ उस समय के हाकिम को वाह्य आक्रमणों से सावधान रहना पड़ता था और अवसर आने पर युद्ध भी करना पड़ता था। अर्थात् यूं कहिये कि सिविल और मिलिटरी मामलों का उत्तरदायित्त्व उस समय के हाकिम पर

होता था। यह निपुण राजनीतज्ञ, अपने समय का एक वीर योद्धा और सिपहसालार था। संवत् १७७२ में जब महाराजा कुमार अभयसिंह को देहली से नागौर का मंसब अता हुआ, तब महाराज ने इसे और मेड़ता के हाकिम पोमसिंह भण्डारी को इन्द्रसिंह राठौड़ से नागौर छीन लेने के लिये नियुक्त किया। वीर इन्द्रसिंह राठौड़ भी लड़ने के लिये सजधज कर तैयार हो गये, तब ज्येष्ठ सुदी १३ को गाँव नागौर व अषाढ़ सुदी पूर्णिमा को नागौर में दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। दोनों बार इन्द्रसिंह की सेना भागी और अन्त में नागौर का अधिकार महाराज को मिला।

६. पोमसिंह भण्डारी:—

यह संवत् १७६७में जालौर, सांचौर का हाकिम नियुक्त हुआ। संवत् १७७६ में जब बादशाह फर्रुखसियर मारा गया, तब महाराजा अजीतसिंह ने इसे फौज देकर अहमदाबाद भेजा था।

७. सूरतराम भण्डारी:—

ई०स०१७४३ अक्टूबर को जयसिंह की मृत्यु के बाद महाराजा अभयसिंह ने मेड़ता से भण्डारी सूरत राम को, अलीनिवास के ठाकुर सूरजमल और रूपनगर के शिवसिंह को अजमेर पर अधिकार करने के लिये भेजा और इन्होंने युद्ध करके अजमेर पर क़ब्ज़ा जमा लिया।

८. गंगाराम भण्डारी:

यह विजयसिंह के समय (ई० स० १७५२-९२) में हुआ। यह

केवल राजनीतज्ञ ही नही था, वरन् वहादुर सिपाही भी था। यह मेड़ता के युद्ध में भी गया था। जो सन् १७९० ईस्वी मे मरहटो और राठौड़ों के बीच मे हुआ था।

९. रतनसिंह भण्डारी:

ओसवाल वंश के एक प्रतिष्ठित घराने मे उत्पन्न हुआ था। यह तलवार का धनी, व्यवहारकुशल, राजनीतज्ञ, स्वाभिमानी और कर्तव्य-परायण सेनापति था।

मुगल वादशाह की ओर से सन् १७३० में मारवाड़ का राजा अभयसिंह अजमेर और गुजरात का गवर्नर नियुक्त हुवा। तीन वर्ष पश्चात् अभयसिंह, रतनसिंह भण्डारी को यह कार्य-भार सौंपकर देहली चला आया। तव रतनसिंह भण्डारी ने सन् १७३३ से १७३७ तक अजमेर और गुजरात की गवर्नरी का संचालन किया! गवर्नर का कार्य करते हुये इन चार वर्षों में रतनसिंह को अनेक युद्ध करने पड़े। मुग़ल साम्राज्य का पतन हो रहा था, घरेलू झगड़ो ने उसे डावाँ डोल कर दिया था। इसलिये कितने ही विद्रोही खड़े हो गये थे, मरहठों का जोर दिन पर दिन वढ़ता जा रहा था, तव ऐसी विकट परिस्थिति में गुजरात का गवर्नर वने रहना रतनसिंह जैसे वीर योद्धा का ही काम था। अंत में एक युद्ध में यह वीर-गति को प्राप्त हुआ।

१०. लक्ष्मीचन्द्र भण्डारी:

यह महाराजा मानसिंह के राज्य काल में (सन् १८०३-४३)

में दीवान पद पर आसीन रहा। इसको अनुमान २००० रुपये आय का जागीर में एक गाँव मिला था।

११. पृथ्वीराज भण्डारी:—

यह महाराजा मानसिंह के राज्य-समय जालौर का हाकिम था। जिसको पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने शिरोही के इतिहास में लिखा है।

१२. बहादुरमल भण्डारी:—

यह महाराजा तख्तसिंह के समय (सन् १८४३-७३) में हुआ। सम्भवतया मुत्सद्दी वंश में यह सब से अन्तिम था। इसका महाराजा के ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा हुआ था कि यथार्थ में लोग इसी को मारवाड़ का राजा मानते थे। यह बात इसकी और भी कीर्ति बढ़ाती है कि राजा और प्रजा दोनों की भलाई करने में—जिनका प्रेम इसकी नस नस में भरा हुआ था—इसने कोई भी बात उठा नहीं रक्खी। इसी कारण से वहाँ की प्रजा इससे बहुत ही प्रसन्न आह्लादित रहती थी। नमक के ठेके के काम में इसने जो कुछ सेवा की थी, उसके लिये मारवाड़ी प्रजा चिरकाल तक इसका आभार मानती रहेगी। सन् १८८५ में सत्तर वर्ष की अवस्था में इसका स्वर्गवास होगया।

१३. किशनमल भण्डारी:—

यह महाराजा सरदारसिंह के पूर्व तथा उनके शासन काल राज्य का कोषाध्यक्ष रहा। यह आर्थिक विषयों में बड़ा निपुण था

इसने मारवाड़ के कोष की नींव बहुत पक्की डाल दी थी। निम्न लिखित कवित्त से ज्ञात होता है कि उसे मारवाड़ के प्रजा कितना अधिक चाहती थी ।

"नक फटत वैरियां, हक जशरा होय ।
सुत बहादर रे सिरे किशना जैसा न कोय ॥"

+ केवल संख्या ५ और ६ के वीरों का सकलन ओसवाल भाग ८ अंक १० से किया गया है बाकी का परिचय Some Distinguished Jains से कराया गया है।

सिंघवी इन्द्रराज

ऐ फूट तैंने हिन्द की तुर्की तमाम की ।
लोगों का चैन खो दिया राहत हराम की ॥
—अज्ञात

भारत के फूट और बैर दो प्रसिद्ध मेवे हैं । इनको यहाँ फलते फूलते देख कर महात्मा टॉड साहब ने दुःखी होकर लिखा थाः— "हाय ! किस कुघड़ी में अभागी भारत-सन्तान ने स्वजाति भाइयों के हृदय-रुधिर का बहाना सीखा था, उसी कुदिन से भारत के उजाड़ होने का आरम्भ होने लगा । विश्राम स्थान भारतवर्ष असीम दुःख का कारागार और अनन्त यन्त्रणा में अन्धतम कूप की भान्ति हो गया है । कुरुक्षेत्र की भयंकर श्मशानभूमि आर्य-गणों की गृह-फूट † का रुधिर मय नमूना दिखा

† भारत की इस "गृह-फूट" पर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी क्या खूब भावपूर्ण गीत लिख गये हैं :—

जग में घर की फूट बुरी ।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी ॥ टेक ॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत-युद्ध भयौ ।
जाकौ घाटो या भारत में अबलौं नाहिं पुजयौ ॥
फूटहिं सों जयचन्द बुलायौ जवनन भारत धाम ।
जाकौ फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥
जो जग में धन, मान और बल आपुन राखन होय ।
तौ अपुने घर में भूले हूँ फूट करौ मत कोय ॥

रही है। सब बातों को जान बूझकर भी भारत-सन्तान किस लिये आपस में लडाभिड़ा करते हैं, इस मर्म को भगवान् ही जाने ? भारत-भूमि ने किसी समय भी फूट से निस्तार नही पाया। इसके माया मोह में पड कर न जाने अब तक कितने भारत-सन्तान अकाल में इस लोक से चले गये है। मतवाले होकर अपना ही सत्यानाश कर बैठे हैं, इसकी गिन्ती कोई भी नही कर सकता, इसका शोकदायक आदर्श आज तक स्वर्णप्रसू भारतवर्ष में चमक † रहा है ‡"।

यहाँ एक ऐसे ही अनर्थकारी गृह-कलह का वर्णन किया जाता है, जिसके कारण व्यर्थ ही सिंघवी इन्द्रराज जैसे देशभक्त नीति-निपुण वीर सेनापति को अपने प्राण गँवाने पड़े।

महाराज मानसिंह के ई०स० १८०४ में मारवाड़ के राज्यासन पर बैठते ही गृह-कलह का स्रोता फूट निकला। जो राठौड़ सरदार और सामन्त किसी समय मारवाड की आन के लिये मिटने को प्रस्तुत रहते थे, वही वीर बाँकुरे मारवाड़ी राजपूत मारवाड़ के गौरव को धूलधूसरित करने लिये कटिवद्ध हो गये। इस गृह-कलह ने उनका यहाँ तक पतन किया कि वे मारवाड़ के शासन की बागडोर विजातीय और विदेशीय व्यक्ति तक को सौंपने

† अपनों के सर पै वार है गैरों के बूट का।
फल पा रहा है मुल्क यह आपस की फूट का॥
—अज्ञात्

‡ टाड राजस्थान प्रथम भाग द्वि० ख० अ० ८ पृ० ११७।

के लिये अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचने लगे। भाग्य से उन्हें इस दुरेच्छा को कार्यरूप में परिणत करने का अनायास अवसर भी हाथ आगया।

उदयपुर के राणा भीमसिंह की अत्यन्त रूपवती कन्या कृष्णा-कुमारी का विवाह जोधपुर के महाराजा भीमसिंह से होना निश्चित हुआ था, परन्तु उनके स्वर्गासीन हो जाने के कारण, जोधपुर के एक षड्यन्त्रकारी ने इस कन्या से विवाह करने का प्रस्ताव, जय-पुर के महाराज जगतसिंह द्वारा कराया, जिसे उदयपुर के राणा ने सहर्ष स्वीकार कर किया। इधर जोधपुर-नरेश मानसिंह को यह कहकर भड़काया गया कि "उदयपुर-राजकुमारी का विवाह सम्बन्ध पहले जोधपुर के महाराज से निश्चित हुआ था, यदि जयपुर-नरेश के साथ यह सम्बन्ध होगया तो, सदैव को जोधपुर-राज्य को कलंक लग जायगा; क्या सिंह के होते हुये उसके शिकार को लोमड़ी छीन सकेगी? यह सम्बन्ध तो जोधपुर के राज्यसिंहा-सन के साथ हुआ था, अतः जब आप उस पर आसीन हैं तो उस कुमारी को वरण करने का आपको ही अधिकार है।

वृद्ध महाराज उक्त बातों में आगये और यह सम्बन्ध न लेने के लिये जोधपुर के महाराज को एक पत्र लिखा। जयपुर-नरेश तो पहिले से ही भर दिये गये थे, फिर भला उन्हें इस पत्र को मानने की क्या आवश्यकता थी? परिणाम इसका यह हुआ कि महाराज मानसिंह ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया। किन्तु समर-भूमि में जाते ही मानसिंह के आश्चर्य और दुःख की

कोई सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि, अपनी ओर के सामन्त मारवाड़ की सजी हुई सेना को लेकर जयपुर-सैन्य मे जा मिले हैं, और तो और, अपने कुटुम्बी बीकानेर-नरेश को भी जब शत्रु-पक्ष से मिला हुआ देखा, तो वह दुःख से अधीर हो उठे †। वह अकेले ही उस महा विपत्ति में फँस गये और इस प्रकार अपने ही हितैपियों द्वारा विश्वातघात करने पर जोधपुर-नरेश मानसिंह को युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। इस से पूर्व कभी मारवाड़ी वीरो ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई थी, तब अपनों ही के विश्वासघात के कारण उन्हें यह दुर्दिन देखना पडा । इस घटना का वर्णन करते हुये महात्मा टॉड कैसी भेदभरी बात लिख गये हैं .—

"जातिगत पतन जाति के द्वारा ही होता है। जातीय गौरव के सूर्य अस्त करने को यदि जाति स्वयं अग्रसर न हो तो, कभी अन्य जाति के द्वारा यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ‡।

---

† बहुत उम्मीद थीं जिनसे, हुये वह महर्वां क़ातिल ।
हमारे क़त्ल करने को बने खुद पासवाँ क़ातिल ॥

× × —अज्ञात्

बागवाँ ने आग दी जब आशियाने को मिरे।
जिन पै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

—अज्ञात्

‡ इस घर को आग लग गई घर के चिराग से ।
दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से॥

—अज्ञात्

जो महाशक्ति जाति की प्राण-प्रतिष्ठा करा देती है, जाति की नस-नस में अपना अन्यर्थ तेज भर देती है, उस महाशक्ति का जिस दिन से जाति ने अपमान किया तथा आलस्य और विलासिता के वशीभूत होकर जातीय भ्रातृभाव की जड़ में कुठाराघात किया कि वह जाति उसी रोज़ से पतन के दल-दल में फँस जाती है * ।"

राजा मानसिंह सेना के साथ भागकर सब से पहिले जालौर का आश्रय लेने के लिये बीसलपुर में आ पहुँचे। चैनमल सिंघवी नामक राजकर्मचारी ने मानसिंह को जालौर में आश्रय लेने के लिये उद्यत देखकर कहा—"महाराज! यहाँ से दाहिनी ओर नौ कोस की दूरी पर राजधानी जोधपुर और ४० कोस की दूर पर जालौर का क़िला स्थित है। जालौर की अपेक्षा जोधपुर में बड़ी सरलता से पहुँचा जा सकता है। आप यदि अपने बाहुबल से राजधानी की रक्षा करने में समर्थ न होंगे, तो अन्यत्र स्थान में रहकर सिंहासन के अधिकार की आशा कहाँ है? आप जब तक राजधानी में रहकर सिंहासन के रक्षा की चेष्टा करते रहेंगे; तब तक सम्पूर्ण सर्वसाधारण प्रजा अवश्य ही आपके पक्ष का अवलम्बन करेगी।" महाराज मानसिंह इस कर्मचारी के उपदेश को न्यायसंगत जानकर कुछ घण्टों में जोधपुर के क़िले में आकर अपनी तथा राज्यासन की रक्षा का उपाय करने लगे।

---

* टाड राजस्थान द्वि० भा पृ० २५३-५४।

किन्तु ठीक खतरे के म के पर उनके सरदार और सामन्तो ने उनके प्रति विश्वासघात और द्रोह किया था, अत वह अपने रहे सहे अनुयाइयो को भी शंकितदृष्टि से देखने लगे। जहाँ जान और माल की वाज़ी लगी हुई हो, वहाँ अपनी ओर के खिलाड़ी ही प्रतिद्वन्दी से मिले हुये हो, रक्षा के लिये वान्धी हुई तलवार ही जब अपना रक्त चाटने को उद्यत हुई हो अथवा शोभा के लिये पहना हुआ गले का हार ही जब नाग बनकर डस रहा हो, ‡ तब कैसे और क्योंकर किसी पर विश्वास किया जा सकता है? व्याघ्र इतना भयानक नहीं जितना कि गौमुखी व्याघ्र, शत्रु से चौकन्ना रहा जा सकता है, पर मित्ररूप-शत्रु से वचना ज़रा टेढ़ी खीर है। अस्तु, मानसिंह के जो सच्चे हृदय से शुभेच्छु थे, उन्हें भी वह कपटी और द्रोही समझने लगे। शरीर के किसी अंग के सड़जाने पर जब औपरेशन किया जाता है, तब दूषित रक्त के साथ कुछ स्वच्छ रक्त भी शरीर से पृथक होजाता है। इसी नीति के अनुसार मारवाड़ के चार सामन्त जो महाराज मानसिंह की जाति के थे और हृदय से देश-भक्त थे, उन्हें महाराज मानसिंह ने शत्रु से मिला हुआ समझ कर क़िले से वाहर निकाल दिया। टॉड साहब के कथनानुसार इद्रराज सिघवी जो मानसिंह के पहले मारवाड़ के दो राजाओं के शासन समय में दीवान पद

‡ जिसे हम हार समझे थे गला अपना सजाने को।
वह काला नाग बन बैठा हमारे काट खाने को॥
—अज्ञात

पर नियुक्त था, वह भी इनके साथ था।

शुद्ध हृदय से शुभेच्छु और जाँनिसार होने पर भी जब उक्त चार सामन्त और इन्द्रराज सिंघवी "द्रोही" जैसे घृणित और महापातक लाञ्छन लगाकर पृथक किये गये तब लाचार यह लोग चुपचाप क़िले के बाहर पड़ी हुई शत्रु-सैन्य से आ मिले।

मारवाड़ राज्य के प्रलोभन में जयपुर-नरेश जगतसिंह अपनी सैन्य को लेकर ५ माह तक जोधपर के क़िले को घेरे हुए पड़े रहे; फिर भी वह इतने लम्बे समय में मारवाड़ के राज्यासन को प्राप्त न कर सके। अतः इनको अपने पक्ष में मिलता हुआ देख कर जगतसिंह को और उसके उन अनुयाइयों को जो मारवाड़ी होते हुए भी मारवाड़ पर जयपुर-नरेश को चढ़ाकर लाये थे, अपार हर्ष हुआ। पर, इनके मिलने में और औरों के मिलने में पृथ्वी आकाश का अन्तर था!

यह अपमानित होने पर भी विभीषण†, जयचन्द और शक्तसिंह की भांति प्रतिहिंसा की आग से अपने ही घर को जलाने के लिए उन्मत्त नहीं हो उठे थे! व्यक्तिगत मनमुटाव के कारण वह अपनी मातृभूमि को सदैव के लिये परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़वा देने को प्रस्तुत नहीं थे, और न वह अपनी प्रतिहिंसा की आग को निर्दोष व्यक्तियों के रक्त से बुझाने को तैयार थे। यदि

---

† भरयौ विभीषण-पुंजतें, यह भारत ब्रह्माण्ड।
क्यों न होय गृह-भेद तें, गृह-गृह लंकाकाण्ड॥
—वियोगीहरि

अत्युक्ति न समझी जाय तो कहना पडेगा कि इन्द्रराज सिंघवी का भौतिक शरीर उस मिट्टी से नहीं बना था, जिससे कि विभीषण, जयचन्द‡ और शक्तसिंह आदि का शरीर बना था। अपितु देश-प्रेम और सहृदयता के परमाणु जो एक स्थान पर इकट्ठे होगये थे, उसी पुंज का नाम शायद इन्द्रराज सिंघवी रख दिया गया था। मारवाड़-नरेश के इस दुर्व्यवहार से इन्द्रराज सिंघवी क्रोधित नहीं हुआ। बल्कि इस विपदावस्था में पड़ जाने से जोधपुर-नरेश को अपने पराये का जो ज्ञान तक नहीं रहा था, इस पर उसे तरस ही आया। "तब क्या मारवाड़ अब मारवाड़ियों का न रहकर कछवाहों का होगा? नहीं, यह शरीर मारवाड़ का है, अत जब तक इसमे एक रक्तकी बूंद भी बाकी रहेगी, हम मारवाड़ियों के सिवा यहाँ किसी का आधिपत्य न होने देंगे"। यह पागल का प्रलाप और शेखचिल्ली की बड़ नहीं, अपितु इन्द्रराज सिंघवी और उन चार सामन्तों का भीषण संकल्प था। अतएव उन्होंने शत्रु-दल में रहते हुए भी किसी प्रकार शत्रु-पक्ष के सबसे प्रबल शक्तिशाली

---

‡ खोलि विदेसिनको दियौ, देस-द्वार मतिमन्द।
स्वारथ-लगि कीनों कहा, अरे अधम जयचन्द॥
स्वर्ग-देस लुटवाय, सठ! कियौ कनक में छार।
फूट बीज इत व्वै गयो, जयचन्द जाति-कुठार॥
दियौ विदेसिनु अरपि, धन-धरती धरम स्वछन्द।
हमैं फूट अब देत तूं, धिक दानी जयचन्द॥

—वियो० हरि

अमीरखाँ को फोड़ लिया और चुपचाप शत्रु-सैन्य में से निकल कर जयपुर पर आक्रमण कर दिया।

इधर महाराज जगतसिंह जो मारवाड़ के राज्य पाने का सुख-स्वप्न देख रहे थे, जब उन्होंने जयपुर विध्वंस होने और अपनी पराजय का दुःखद समाचार सुना तो भौंचक से रह गये। मारवाड़ का राज्य तो क्या, उन्हें अपने ही राज्य की चिन्ता ने आ घेरा। अतः वह जोधपुर का घेरा छोड़कर जयपुर की ओर शीघ्रता से ससैन्य चल दिये। मार्ग में इन्द्रराज सिंघवी ने इनकी सेना को भी ठीक किया और उनसे मारवाड़ का लूटा हुआ माल सब छीन लिया। जोधपुर की इस प्रकार रक्षा और जयपुर-राज्य के विध्वंस के समाचार, जब महाराज मानसिंह ने सुना तो वह अवाक् रह गये, वह इन्द्रराज के इस देश प्रेम, स्वामिभक्ति और नीति-निपुणता से अत्यन्त ही प्रसन्न हुये।

विजयी इन्द्रराज जब जोधपुर आया तब मानसिंह ने उसका अत्यन्त प्रेम पूर्वक स्वागत किया और अभिनन्दन स्वरूप एक कविता भी बनाकर कही, जिसके तीन पद्य निम्न प्रकार हैं:—

पैंड़ियां घेरा जोधपुर, आविया दला असंख।
आव दिगन्ते इन्दरा, थे दीधा भुजथंभ ॥
इन्दावे असवारियां, जिन चौहटे अम्मेर।
धन मंत्री जोधा नरा, थैं जैपुर कीधी जेर ॥
आभ पड़ंतों इन्दरा, तैं दीना भुजदंड।
मारवाड़ नो कोटिरो, राख्यो राज अखंड ॥

टॉड साहब के कथनानुसार इस विजयोपलक्ष में इन्द्रराज सिंघवी मारवाड़ के प्रधान सेनापति-पद से विभूषित किया गया।

राज्य की व्यवस्था ठीक कर लेने पर महाराज मानसिंह ने अपने कुटम्बी बीकानेर-नरेश से बदला लेने के लिए बारह हज़ार सेना के साथ प्रधान सेनापति इन्द्रराज तथा अन्य सरदारों के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान किया। बापरी नामक स्थान में दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। बीकानेर के महाराज इस युद्ध मे परास्त होकर अपनी रक्षा करने के लिए राजधानी को चले आये। बीकानेर महाराज के भागते ही महाराज मानसिंह के प्रधान सेनापति इन्द्रराज आदि उनका पीछा करते हुए गजनेर नामक स्थान में आ पहुँचे, अन्त मे विवश होकर बीकानेर महाराज को सन्धि करनी पड़ी और युद्ध की हानि के पूर्ति स्वरूप दो लाख रुपया तथा फलौदी का वह परगना जिसे उन्होंने जयपुर महाराज की हिमायत करके अधिकार कर लिया था लौटाना पड़ा।

सिंघवी इन्द्रराज की सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह ने उसे राज्य के सम्पूर्ण अधिकार सौंप दिये थे। जैसा कि महाराजा मानसिंहजी द्वारा रचित मारवाड़ी भाषा के निम्न दोहे से प्रकट होता है :—

वैरी मारन मीरखां, राज काज इन्द्रराज।
महतो शरणों नाथ रे, नाथ सॅवार काज ॥

इन्द्रराज की इस उन्नति से उनके पुराने शत्रु और भी जलभुन कर खाक हो गये। वे सिंघीजी की इस उन्नति को न देख सके।

उन्होंने इसके खिलाफ षड्यन्त्र रचना शुरू किया, इसके लिये उन्हें अच्छा मौक़ा भी हाथ लग गया। नवाब अमीरखाँ ने (जो उस समय महाराज मानसिंह का मुँह चढ़ा हुआ था और जो अपने मायाचार पूर्ण व्यवहारों से एक अत्यन्त शक्तिशाली था) मुँडवा, कुचेरा आदि अपने जागीर के गाँवो के अलावा मेड़ता और नागौर पर भी अधिकार करने का विचार किया था। यह बात इन्द्रराज सिंघवी को बुरी लगी। उसने इस पर बड़ी आपत्ति प्रकट की। बस इस अवसर से लाभ उठाकर इन्द्रराज सिंघवी के शत्रुओं ने नवाब अमीरखाँ को भड़का दिया। वि० सं० १८७३ की चैत्र सुदी ८ को नवाब ने अपनी फौज के कुछ अफ़सरों को क़िले पर भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँच कर अपनी चढ़ी हुई तनख्वाह माँगी। वेतन का तो बहाना था, बस बात ही बात में झगड़ा होगया और अफ़गान सरदारों ने हमला बोल कर इन्द्रराज सिंघवी का प्राणनाश कर दिया। महाराज मानसिंह को इस बात से वज्रपात का सा दुःख हुआ, वे विह्वल हो गये, उनके हृदय में घोर विषाद छा गया और संसार से उन्हें विरक्ति सी होगई। उन्होंने राज्य करना छोड़ दिया और एकान्त वास करने लगे। इन्द्रराज के इस बलिदान को सुन कर महाराज मानसिंह ने जो कवित्त कहा था, वह इस प्रकार है—

पैंड़ियां किन पोशाकसूँ केड़ी जागां जोय।
ठौर कठे हुये जीवतां होड़ न मरना होय॥

[२८ जनवरी सन् ३३]

बीकानेर-परिचय

बीकानेर-राज्य की चौहद्दी इस प्रकार है.—उत्तर-पश्चिम वहावलपुर, दक्षिण-पश्चिम जैसलमेर, दक्षिण-मारवाड़, दक्षिण-पूर्व जयपुर, शेखावाटी, पूर्व मे लाहोर-हिसार। यहाँ २३३१५ वर्गमील स्थान है। इस शहर को राठौड़वंशी राजा वीका ने सन् १४३९ई० में वसाया था। वीकानेर, राजपूताने मे प्रसिद्ध देशी रजवाडे की राजधानी मरुभूमि (रेतीली जमीन) में है, यह शहर पत्थर के साढ़े तीन मील लम्बे परकोटे से घिरा है, जिस मे ५ फाटक हैं और तीन ओर खाई है।

वीकानेर के कूए ३०० से४०० फुट तक गहरे हैं, यहाँ वर्षा वहुत कम होती है, लोग वर्षा का पानी कुंडो मे (एक प्रकार का छोटासा तालाव) भरलेते हैं, जो प्राय प्रत्येक मकान मे वने हुये हैं और सालभर तक इसी पानी को काम मे लाते हैं। वीकानेर-राज्य भर में एक भी नदी नही है, परन्तु अन एक नहर वर्तमान वीकानेर-नरेश ने वहुत रुपया खर्च करके पंजाब के दरिया से वीकानेर राज्य में निकलवाई है। मनुष्य संख्या के अनुसार वीकानेर राजपूताने में चौथे नम्बर का शहर है। सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी में वीकानेर-राज्य की जैन जन-संख्या २९०७२ रही। वीकानेर-राज्य में भी कितने ही जैन-मन्दिर हैं, जिनका उल्लेख स्थानाभाव के कारण नही किया गया है।

चन्द्रावतों का उत्थान
और
पतन

टपक ऐ शमा! आँसू बनके परवाने की आँखों से।
सरापा दर्द हूँ हसरत भरी है दास्तां मेरी॥

—"इक़बाल"

१. सगरः—

"श्री जालोर महादुर्गाधिप देवड़ावंशीय महाराजा श्री सामन्तसीजी थे, तथा उनके दो रानियाँ थीं, जिनके सगर वीरमदे और कान्हड़ नामक तीन पुत्र और उमा नामक एक पुत्री थी। सामन्तसीजी के बाद उनका दूसरा पुत्र वीरमदे जालोराधिपति हुआ और सगर नामक बड़ा पुत्र देलवाड़े में आकर वहाँ का स्वामी हुआ। इस का कारण यह था कि सगर की माता देलवाड़े के झालाजात राणा भीमसी की पुत्री थी और वह किसी कारण से अपने पुत्र सगर को लेकर अपने पिता के यहाँ चली गई थी। अतः सगर अपने नाना के घर में ही बड़ा हुआ था, जब सगर युवावस्था को प्राप्त हुआ, उस समय सगर का नाना भीम-

सिंह जो कि अपुत्र था, मृत्यु को प्राप्त होगया तथा मरने के समय वह सगर को अपना उत्तराधिकारी बना गया। अतएव राणा भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् १४० ग्रामों सहित सगर देलवाडे का स्वामी हुआ और उसी दिन से वह राणा कहलाने लगा, उसका श्रेष्ठ तपस्तेज चारों ओर फैल गया, उस समय चित्तौड के राणा रतनसी पर मालवपति मुहम्मद बादशाह की फौज चढ आई, तब राणा रतनसी ने सगर को शूरवीर जानकर उसे अपनी सहायता को बुलाया। युद्ध-आमंत्रण सुनतेही सगर अपनी सेना को लेकर राणा रतनसी की सहायता को पहुँच गया। बादशाह, सगर के सामने न ठहर सका और प्राण बचाकर भाग निकला, तब मालवा देश को सगर ने अपने कब्जे में करलिया। कुछ समय के पश्चात् गुजरात के मालिक बहिलीम जात अहमद बादशाह ने राणा सगर को कहला कर भेजा कि "तू मुझको सलामी दे और हमारी नौकरी को मंजूर कर, नहीं तो मालवा देश को मैं तुझ से छीन लूंगा" स्वाभिमानी सगर भला यह बात कैसे स्वीकार कर सकता था? परिणाम यह हुआ कि सगर और बादशाह में घोर युद्ध हुआ, आखिरकार बादशाह हारकर भाग गया और सगर ने समस्त गुजरात को अपने अधिकार में करलिया। इस तरह पराक्रमकारी सगर मालवा और गुजरात का अधिपति होगया। कुछ समय के बाद पुनः किसी कारण से गोरी बादशाह और राणा रतनसी में परस्पर विरोध उत्पन्न होगया और बादशाह चित्तौड़ पर चढ़ आया, उस समय राणाजी ने शूरवीर सगर को बुलाया और

सगर ने आकर उन दोनों का आपस में मेल करा दिया तथा बादशाह से दण्ड लेकर उसने मालवा और गुजरात देश पुनः बादशाह को वापिस दे दिये, उस समय राणाजी ने सगर की इस बुद्धिमत्ता को देखकर उसे मंत्रीश्वर का पद दिया और वह (सगर) देलवाड़े में रहने लगा तथा उसने अपनी बुद्धिमत्ता से कई एक शूरवीरता के काम कर दिखाये।

२. वोहित्थः—

सगर के वोहित्थ, गङ्गदास और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इनमें से सगर के पाटपर उसका वोहित्थ ‡ नामक ज्येष्ठ पुत्र मंत्रीश्वर होकर देलवाड़े में रहने लगा, यह भी अपने पिता के समान बड़ा शूरवीर तथा बुद्धिमान था।

वोहित्थ की भार्या वहरंगदे थी, जिस के श्रीकरण, जैसे, जयमल्ल, नान्हा, भीमसिंह, पदमसिंह, सोमजी, और पुण्यपाल नामक आठ पुत्र थे और पद्मावाई नामक एक पुत्री थी।

३. श्रीकरणः—

के समधर वीरदास हरिदास और उधरण नामक चार पुत्र थे। यह (श्रीकरण) बड़ा शूरवीर था, इसने अपनी भुजाओं के बल से मच्छेन्द्रगढ़ को फ़तह किया था, एक समय का प्रसंग है कि—बादशाह का खजाना कहीं को जारहा था, उसको राणा श्रीकरण ने लूट

‡ वोहित्थ ने चित्तौड़ के राणा रायमल्ल की सहायता में उपस्थित होकर बादशाह से युद्ध किया, और उसे भगा दिया था।

लिया, जब इस बात की खबर बादशाह को पहुँची, तब उसने अपनी फौज को लडने के लिये मच्छेन्द्रगढ पर भेज दिया, राणा श्रीकरण बादशाह की उस फौज से खूब ही लड़ा परन्तु आखिरकार वह अपना शूरवीरत्त्व दिखाकर उसी युद्ध मे काम आया।

४. समधर:—

राणा के काम आजाने से इधर तो बादशाह की फौज ने मच्छेन्द्रगढ़ पर अपना कब्जा कर लिया, उधर राणा श्रीकरण को काम आया हुआ सुनकर राणा की स्त्री रतनादे कुछ द्रव्य (जितना साथ मे चल सका) और समधर आदि चारो पुत्रो को लेकर पीहर (खेड़ीपुर) को चली गई और वहीं रहने लगी तथा अपने पुत्रो को अनेक प्रकार की कला और विद्या सिखलाकर निपुण कर दिया। विक्रम संवत् १३२३ के आषाढ बदि २ पुष्य नक्षत्र गुरुवार को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज विहार करते हुये वहाँ (खेड़ीपुर मे) पधारे। इनके धर्मोपदेश से रानी के चारो पुत्रों ने जैन शास्त्रोक्त विधि से श्रावको के बारह व्रतो को ग्रहण किया, तथा आचार्य महाराज ने उनका महाजन वंश और बोहित्थरा (बोथरा) गोत्र स्थापित किया। जैनधर्म में दीक्षित होने के बाद उक्त चारों कुमारो ने धर्मकार्यों में द्रव्य लगाना शुरु किया। तथा उक्त चारो भाई संघ निकाल कर और आचार्य महाराज को साथ लेकर सिद्धगिरी की यात्रा को गये। इस यात्रा में उन्होंने एक करोड द्रव्य लगाया। जब लौटकर वापिस आये तब सबने मिलकर समधर को संघपति का पद दिया।

५. तेजपालः—

समधर के तेजपाल नामक एक पुत्र था, समधर स्वयं विद्वान् था, अतः उसने अपने पुत्र तेजपाल को भी छः वर्ष की अवस्था में ही पढ़ाना शुरु कर दिया और दश वर्ष तक उससे विद्याभ्यास में उत्तम परिश्रम करवाया। तेजपाल की बुद्धि बहुत ही तेज थी, अतः वह विद्या में खूब निपुण होगया तथा पिता के सामने ही गृहस्थाश्रम का सब काम करने लगा।

...... समधर का जब स्वर्गवास हुआ, तब तेजपाल की अवस्था लगभग १५ वर्ष की थी। तेजपाल गुजरात के राजा से गुजरात खरीद कर उसका राजा बन गया। वि० सं० १३७७ ज्येष्ठ बदी ११ के दिन, तीन लाख रुपया लगाकर दादा साहिब जैनाचार्य श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव पाटन नगर में किया तथा उक्त महाराज को लेकर शत्रुंजय का संघ निकाला और बहुतसा धन शुभ मार्ग में लगाया। पीछे सब संघने मिलकर तेजपाल को माला पहिनाकर संघपति का पद दिया। इस प्रकार अनेक शुभ कार्यों को करता हुआ अपने पुत्र वील्हाजी को घर का भार सौंप कर अनशन करके स्वर्गासीन हुआ।

६. वील्हाजीः—

के कडूवा और धरण नामक दो पुत्र हुए, वील्हाजी ने भी अपने पिता के समान अनेक धर्म कृत्य किये।

७. कडूवाः—

वील्हाजी की मृत्यु के पश्चात् उनके पाटपर उनका बड़ा पुत्र

कड़ूवा बैठा। इसका नाम तो अलबत्ता कड़ुवा था, परन्तु वास्तव मे यह परिणाम् में अमृत के समान मीठा निकला। एक बार यह मेवाड़ देशस्थ चित्तौडगढ़ देखने के लिये गया। उसका आगमन सुन कर चित्तौड़ के राणाजी ने उसका बहुत सम्मान किया। थोडे दिन के बाद माँडवगढ़ का बादशाह किसी कारण से फौज लेकर चित्तौड़गढ़ पर चढ़ आया। इससे सभी चिन्तित हुये तब राणा ने कड़ुवा से कहा—"पहिले भी तुम्हारे पुरखाओं ने हमारे पूर्वजों के अनेक बड़े बड़े काम सुधारे हैं, इसलिये अपने पूर्वजों का अनुकरण कर, आप भी हमारे इस काम को सुधारो। यह सुनकर कड़ूवाजी ने बादशाह के पास जाकर अपनी बुद्धिमता से उसे समझा कर परस्पर में मेल करा दिया और बादशाह की सेना को वापिस लौटा दिया। इस बात से नगरवासी जन बहुत प्रसन्न हुये और राणाजी ने भी प्रसन्न होकर कडुवाजी को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। उक्त पद को पाकर कड़ूवाजी ने अपने सद्बर्ताव से वहाँ उत्तम यश प्राप्त किया। कुछ दिनों के बाद कडुवा राणाजी की आज्ञा लेकर अणहिलपत्तन में गये, वहाँ भी गुजरात के राजा ने इनका बड़ा सन्मान किया तथा इन के गुणों से सन्तुष्ट होकर पाटन इन्हें सौंप दिया, कड़ूवाजी ने अपने कर्तव्य को विचार कर सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य लगाया, गुजरात देश मे जीव-हिंसा को बन्द करवा दिया, तथा विक्रम संवत् १४३२ के फाल्गुण वदी छट्ठ के दिन खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्रीजिनराजसूरिजी महाराज का नन्दी(पाट) महोत्सव सवालाख रुपये लगाकर किया, इसके सिवाय इन्होंने

शत्रुंजय का संघ भी निकाला। इन्होंने यथा शक्ति जिनशासन का अच्छा उद्योत किया। अन्तमें अनशन आराधन कर स्वर्गासीन हुये।

८. जेसलजी:—

कड़वा जी की चौथी पीढ़ी में जेसलजी हुये, उनके वच्छराज, देवराज और हंसराज नामक तीन पुत्र हुये।† ”

९. वच्छराजजी:—

अपने भाइयोंको साथ लेकर मण्डोवर नगरमें राव रिद्धमलजी के पास जा रहे और राव रिद्धमल जी ने वच्छराजजी के बुद्धि के अद्भुत चमत्कार को देखकर उन्हें अपना मंत्री नियत करलिया।

जब रिद्धमल राणा कुम्भा के हाथसे मारा गया, तब वच्छराज ने जोधा को मंडौर बुलाने के लिये निमंत्रणपत्र भेजा और उसको राजा प्रसिद्ध किया। कुछ काल के बाद जोधा के लड़के बीका ने अपने लिये एक नवीन राज्य स्थापित करने की अभिलाषा से मंडौर से उत्तर की ओर प्रस्थान किया। वच्छराज भी उस पराक्रमी युवराज के साथ हो लिया। वच्छराजका यह कार्य बहुत ही ठीक था वच्छावत वंश के इतिहास में उन के शुभ संवत् का प्रारम्भ यहीं से होता है। बीका के सौभाग्य ने जोर लगाया और उसको अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। जंगल (Janglu) के संकलों (Sanklas) की भूमि को अपने अधिकार में करके अब उसने पश्चिम की ओर गमन किया और भट्टियों (Bhattias) से भागौर

† जैनसम्प्रदाय शिक्षा पृ० ६३९—४४।

जीत लिया। यहीं उस ने मंडोर छोड़ने के तीस वर्ष बाद अर्थात् सन् १४८८ ई० मे अपनी राजधानी बीकानेर की नींव डाली और यहीं पर वह अपने नये जीते हुये देशों का स्वतंत्र राजा बनकर रहने लगा। वच्छराज भी अपने कुटुम्ब सहित इसी जगह रहने लगा और अपने स्वामी की भाति उस ने भी वच्छसार नाम का एक गांव बसाया। वच्छराज बड़ा ही प्रेमी और धर्मात्मा पुरुष था। उस ने जैनधर्म की प्रभावना के लिये बहुत कुछ उद्योग किया। उसने शत्रुंजय की यात्रा की और अंत मे पूर्ण वयस्क और सर्वमान्य होकर उसने देवलोक को गमन किया।

"वच्छराज मंत्री के करमसी, वरसिंह, रत्ती, और नरसिंह नामक चार पुत्र हुये और वच्छराजके छोटे भाई देवराज के दस्, तेजा और भूण नामक तीन पुत्र हुये।

१०. करमसिंह:—

राव श्री लूणकरणजी महाराज ने वच्छावत करमसिंहजी को अपना मंत्री बनाया। करमसिंह ने अपने नाम से करमसीसर नामक ग्राम बसाया। विक्रम स० १५७०मे बीकानेर नगर मे नेमिनाथ स्वामी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया था जो कि वर्तमानमें अभी तक मौजूद है। इसके सिवाय इन्होंने तीर्थ-यात्रा के लिये संघ निकाला तथा शत्रुंजय, गिरनार और आबू आदि तीर्थों की यात्रा की।

११. वरसिंह:—

राव लूणकरणजी के बाद राव जैतसीजी राज्यासीन हुए,

इन्होंने करमसिंह के छोटे भाई वरसिंह को अपना मंत्री नियत किया। वरसिंह के मेघराज, नगराज, अमरसी, भोजराज, डूंगरसी और हरराज नामक छः पुत्र हुये। इनके द्वितीय पुत्र नगराज के संग्रामसिंह नामक पुत्र हुआ और संग्रामसिंह के कर्मचन्द नामक पुत्र हुआ।

१२. नगराजः—

वरसिंह के स्वर्गवास होने पर राव जैतसीजी ने अपना मंत्री नगराज नियत किया। मंत्री नगराज को चांपानेर के बादशाह मुजफ्फर की सेवा में किसी कारण से रहना पड़ा और उन्होंने बादशाह को अपनी चतुराई से खुश करके अपने मालिक की पूरी सेवा बजाई तथा बादशाह की आज्ञा लेकर उन्होंने श्री शत्रुंजय की यात्रा की और वहाँ भण्डार की गड़बड़ को देखकर श्री शत्रुंजय की कुंजी अपने हाथ में लेली। सं १५८२ में जब क दुर्भिक्ष पड़ा उस समय इन्होंने सदावर्त दिया, जिस में तीनलाख पिरोजों का व्यय किया।......कुछ काल के पश्चात् इन्होंने अपने नाम से नगासर नामक ग्राम बसाया।

१३. संग्रामसिंहः—

राव कल्याणमलजी महाराज ने मंत्री नगराज के पुत्र संग्रामसिंह को अपना राज्यमंत्री नियत किया। संग्रामसिंह ने शत्रुंजय आदि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तथा पूर्व परम्परानुसार धर्मदान किया। यात्रा करते हुये चित्तौड़गढ़ में आये, वहाँ राणा उदयसिंहने इनका बहुत मान-सम्मान किया। वहाँ से रवाना

होकर जगह जगह सम्मान पाते हुये सानन्द बीकानेर आये। इनके सद्व्यवहार से राव कल्याणसिंहजी बड़े प्रसन्न थे ‡।"

१४. कर्मचन्द:—

टॉड साहब लिखते हैं कि — बच्छावतवंश का अंतिम महापुरुष कर्मचन्द था। वह राव कल्यानसिंह के मंत्री संग्रामसिंह का लड़का था। जब सन् १५७३ ईस्वी मे रायसिंह गद्दी पर विराजमान हुए, तब उन्होंने करमचन्द को अपना दीवान बनाया। करमचंद बड़ा ही विद्वान् था। व्यवहारिक ज्ञान मे वह बड़ा हस्तकुशल और राज्यनीति तथा शासन मे बडा चतुर और दक्ष था। रायसिंह को गद्दी पर बैठे बहुत दिन नहीं हुए थे कि इतने मे जयपुर के राजा अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण कर दिया। यह समय बड़ा ही गड़बड़ का था। ऐसे भयंकर युद्ध के लिए राज्य बिलकुल ही तैयार नहीं था। इस घबराहट और चिंता में राजा ने अपने मंत्री से सलाह की। मंत्री ने अपनी प्रखर बुद्धि और विचार वैचित्र्य से यही सम्मति दी कि, शत्रु से संधि करली जाय। रायसिंह ने ऐसा ही किया। करमचंन्द के बुद्धिबल से राज्य की स्थिति ठीक बनी रही और बीकानेर मे तब से सदैव आनन्द-मंगल रहा।

रायसिंह बडा हठी और ज़िद्दी था और प्रत्येक बात पर बिना विचारे शीघ्र ही विश्वास कर लेता था। उसमे सबसे बडा अवगुण यह था कि वह किसी बात के परिणाम की ओर ध्यान नहीं

‡ जैन सम्प्रदाय-शिक्षा पृ० ६६९-८० ।

देता था। यदि कोई दोष भी उससे बन जाता था और कोई उस की प्रशंसा कर देता तो वह बड़ा प्रसन्न होता था और उसको बहुत इनाम देता था। उसने अपने बाप दादों के द्रव्य को यों ही व्यर्थ खर्च कर दिया और नये नये क़िलों के बनाने में सारी आमदनी लगा दी। कितना ही रुपया उसने भाटों और चारणों को दे डाला। कहा जाता है कि एकबार शंकर नाम के एक भाट ने उस की प्रशंसा में कुछ कवित्त बनाये थे और रायसिंह को उसके दिल्ली से लौटने के समय पढ़कर सुनाये थे। रायसिंह उनको सुनकर इतना प्रसन्न हो गया कि उदारता के आवेश में आकर अपने मंत्री को आज्ञा दी कि, इस भाट को खिलअत और एक करोड़ रुपयों का इनाम दिया जाय। इस आदेश को मंत्री ने ठीक नहीं समझा। उसने राजा के साथ बड़ी देर तक इस विषय पर बहस की, परन्तु राजा ने इस पर इनाम को एक करोड़ से सवा करोड़ कर दिया! कहा जाता है कि एक करोड़ रुपया तो भाट को उसी दम दे दिया गया और बाक़ी के लिये राज्य की मालगुज़ारी गिरवी रखदी गई † सम्भव है कि यह बात

---

† टॉड साहब के उक्त कथन की सत्यता निम्न नोट से और भी स्पष्ट हो जाती है:—

......"यदि चारणों की बात मानें और बीकानेर के इतिहास को सत्य जानें तो, यह राजपूताने के कर्ण ही थे। इनका पहला विवाह महाराणा उदयसिंहजी की राजकुमारी ज़समादे से हुआ था। जिसमें इन्होंने दस लाख रुपये त्याग के बाँटे थे। जब चित्तौड़ के ज़नाने महल में जाने लगे तो राणाजी की दासियों ने एक ज़ीना दिखाकर कहा कि, जो कोई इसकी एक एक पैड़ी पर एक-एक हाथी दे, वह इससे होकर ऊपर जा सकता है, नहीं तो दूसरा रास्ता और भी है। महाराज उसी ज़ीने से ऊपर गये और गिनी तो ५० पैड़ियां थीं। दूसरे दिन दरबार करके ५०

अक्षरशः सच न हो, परन्तु इससे उस समय के राज्य-दरबार की

हाथी और ५०० घोडे सिरोपाव समत चारणा को दिये। महाराज ने जोधपुर में एक वर्ष तक रह कर बहुत से गाँव, हाथी घोडे और लाख पसाव (चारण भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होने पसाव रक्खा है। बडे दान को जिस में गाँव भी हो अत्युक्ति से लाख पसाव और करोड पसाव कहते हैं) भाटों ओर चारणों को दिये। और तो क्या नागोर का परगना ही शकरजी बारहट को दे दिया था। जिसका हाल आगे आवेगा। सवत् १६४५ में महाराज ने सवातीन करोड पसाव तीन चारणा को दिये। सवत् १६४९ मे महाराज बुरहानपुर से जहाँ बादशाही काम को गये थे, आकर जेसलमेर को पधारे। वहा फाल्गुण वदी १ को रावल हरराज की बेटी गगाबाई से शादी की। महाराज ने २०० घोडे ५० हाथी और दो लाख रुपये चारणा को दिये। सवत् १६५१ मे फिर एक करोड पसाव शकरजी बारहट को दिये। उसका हाल ख्यात में (इतिहास और वश सम्बन्धी ग्रन्थ) इस तरह पर लिखा है कि "शकर ने महाराज की ख्यात बनाई थी। वह बहुत अच्छी तो नहीं थी परन्तु महाराज की बख्शिश तो बडी थी। जिससे महाराज ने माघ वदी ५ को शकरजी के मुजरा करते ही एक करोड देने का हुक्म दिया। दीवान ने खजाने मे १०००० थैलिया निकलवाई और अर्ज की कि रुपये नजर से गुजर कर दिलाने चाहियें। महाराज ने समझ लिया कि यह जानता है कि करोड रुपये देखकर महाराज की नीयत बदल जायेगी। जब दरबार हुआ और महाराज झरोखे में बैठे तो उन्होने फरमाया कि। "करमचन्द करोड रुपये यही है या कुछ और बाकी है ?" उसने अर्ज की कि पूरे है। महाराज ने फरमाया कि ये यह तो थोडे है, में तो जानता था कि बहुत होंगे। शकर ने कहा कि सवा करोड का मुजरा करो, एक करोड तो यह ले जाओ और २५ लाख में नागोर तुम को दिया गया। कहते है शकरजी ने नागोर की जागीर बड़े तब तक खाई थी। (राजरसनामृत पहला भाग पृ० २९-३४) —ओझा।

दशा का पूरा पूरा पता लग जाता है। करमचन्द किस हालत में रहा, यह बात इससे खूब मालूम होजाती है। जिस कारण से राजा और मंत्री में झगड़ा हुआ और अन्त में मंत्री को हानि पहुँची, वह भी इस से प्रकट होती है। रायसिंह दिन दिन अपव्ययी होता गया, खजाना बिलकुल खाली होगया और मालगुजारी का सिलसिला बिगड़ गया। भविष्य भयंकर मालूम होने लगा। अन्त में करमचन्द ने बीका के राजघराने से भक्ति और प्रेम के कारण, अपव्ययी राजा को सचेत करने का एक बार फिर उद्योग किया; परंतु उसका परिणाम बड़ा भीषण हुआ। ऐसा कहा जाता है कि सन् १५९५ ईस्वी में रायसिंह को मालूम हुआ कि करमचन्द ने दलपतसिंह व रामसिंह को मेरी जगह गद्दी पर बैठाने के लिये षड्यंत्र रचा है और इस से करमचन्द अपने को राज्य में सबसे शक्तिशाली बनाना चाहता है। टॉड साहब लिखते हैं कि हम इन बातोंको माननेके लिये जिनकी न कोई साक्षी है न कोई सम्भावना है, तैयार नहीं हैं। हमको करमचन्द में ऐसी कोई बात मालूम नहीं होती कि जिससे वह अपने स्वामी के विरुद्ध षड्यंत्र रचता। वे लोग भी जो उसको दोषी बतलाते हैं उस व्यक्ति का नाम बताने में सहमत नहीं हैं, जिस के लिये षडयंत्र रचागया था, आया वह दलपतसिंह था या रामसिंह था, इसमें सबकी एक राय नहीं है इसके अतिरिक्त इस बात से कि अकबर ने जो रायसिंह का मित्र था और जिसका लड़का रायसिंहके यहाँ ब्याहा था, कर्मचन्द का जब वह दिल्ली भागकर गया, बड़ा स्वागत किया, इससे पूर्णतया

सिद्ध होता है कि कर्मचन्द का षड्यंत्र से कोई सम्बन्ध न था और वह बिलकुल निर्दोषी था। हम सब इस बात को जानते हैं कि कर्मचन्द के साथ रायसिंह का कितना गहरा वैर था। अब उसने करमचन्द को दिल्ली दरबार में नीचा और अपमानित करने के लिये भरसक उद्योग किया और शायद उसने अकबर से कहा भी हो कि, करमचन्द को हमें सौंप दो, अथवा उसको अपने यहाँ से निकाल दो, परंतु न्याय और नीति पर चलने वाले अकबर जैसे व्यक्ति ने एक क्षण के लिये भी करमचन्द की निर्दोषता पर शंका नहीं की। अकबर ने उस का बड़ा आदर-सत्कार किया। यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि जब करमचन्द निर्दोषी था, तब वह बीकानेर से क्यों भाग गया? जिन पुरुषों ने राजस्थान का इतिहास भलीभाँति अध्ययन किया है और जिनके मानसिक नेत्रों के सामने इंद्रराज सिंघवी, अमरचन्द सुराणा जैसे व्यक्तियों की आकृतियाँ घूम रही हैं वे इस बात में हमारे साथ सहमत हो सकते हैं कि उस अवसर पर उस का भागना ही ठीक था। दुर्भाग्य से उन दिनों में ऐसे हतभाग्य मनुष्यों के लिये कि जिन पर राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का दोष लगाया गया हो, कोई न्यायालय भी नहीं था। गरज यह कि करमचन्द षड्यंत्र के दोष से बिलकुल मुक्त था उसने सत्य और न्याय के कार्यों के लिये अपने प्राण न्योछावर कर दिये। वह किसी षड्यंत्र का रचयिता नहीं था, पर वह स्वयं षड्यंत्र का शिकार हो गया। उसकी बुद्धिमानी और कर्तव्य तत्परता ही, जिनसे उसने राज्य को सम्हाल रक्खा था, उसके नाश का का-

रण हुई। उसने राजा को सन्मार्ग पर लाने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया था और उस के लिए उसने अटल विश्वास और अविश्रांत श्रम और उत्साह से जो सदा उन लोगों के पथप्रदर्शक होते हैं जो सत्य और न्याय मार्ग पर चलते हैं—उद्योग किया। उस के ऐसा करने से उन लोगों को बहुत ही बुरा मालूम हुआ, जो राजा को अपव्यय और दुराचार में फँसा हुआ देखना चाहते थे। धीरे धीरे दरबार में उन लोगों का ज़ोर बढ़ता गया और उन्होंने करमचन्द की तरफ़ से राजा के कान भरने शुरु किये और उस पर यह दोष लगाया कि उस ने राजा के लिये षड्यंत्र रचा है। अंधविश्वासी राजा ने जिसके अंधविश्वास के विषय में स्वयं मुग़ल-सम्राट जहां-गीर ने लिखा है, उन सब मन घड़ंत बातों पर विश्वास करलिया, जो करमचन्द के शत्रुओं ने उस से कहीं थीं। उसने तत्काल कर-मचन्द को पकड़ने और उसे मार डालने का संकल्प कर लिया। करमचन्द के मित्रों ने, जो कुछ उसके विषय में दरबार में कहा गया था, वह सब उसको सुना दिया। ज्यों ही उसने राजा के हुक्म को सुना, त्यों ही वह बीकानेर से दिल्ली भाग गया और वहाँ अकबर की शरण में जा पहुँचा। दिल्ली नरेश ने उस अशरण अभ्यागत के ऊपर बड़ी ही कृपा की और उस को दरबार में एक उत्तम पद दिया। अकबर की दृष्टि में करमचन्द का महत्व दिन दिन बढ़ता गया और शीघ्र ही सम्राट् पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ गया।

जब रायसिंह को यह बात मालूम हुई कि, करमचन्द दिल्ली

भाग गया है, तो उसने क्रोध मे आकर प्रतिज्ञा और शपथ की कि, मैं उस से बदला लूंगा, परन्तु आगे चल कर यह बात मालूम होगी कि उसके विछोह से उसे कितना दुःख हुआ। जब करमचंद दिल्ली में था। उस समय भटनेर में एक अद्भुत घटना होगई, जिस से उस को रायसिंह से बदला लने के लिए अच्छा मौका हाथ लग गया, परन्तु हम इस को निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि आया उसने इस अवसर से लाभ उठाया या नहीं। सन १५९७ ईस्वी में जब रायसिंह भटनेर में ठहरा हुआ था, तब वहां पर सम्राट् का श्वशुर नासीरखॉ आगया। राजा ने तेजा बागौर को मेहमान की आवभगत और खातिरदारी करने के लिए नियुक्त किया। तेजा ने नासीरखॉ का स्वागत बिलकुल नवीन रीति से किया। जब खॉं-साहब धीरे धीरे चहलकदमी कर रहे थे, उस समय तेजा ने अपने को पागल बना लिया और खॉंसाहब पर जूतों से प्रहार करना शुरू कर दिया। खॉंसाहब उसी समय दिल्ली को लौट गया और वहां जाकर उसने इस दुष्टता की सम्राट् से शिकायत की। सम्राट ने राजा से बागी को मॉगा, परन्तु राजा ने उसके हुक्म की कुछ भी परवाह नहीं की। इससे सम्राट् को बड़ा क्रोध आया और उसने रायसिंह से भटनेर का राज्य छीनकर उसके लड़के दलपतसिंह को वहां का राजा बना दिया। हम निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि आया करमचन्द ने दरबार में खांसाहब का पक्ष लिया था या नहीं, परन्तु रायसिंह को इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था, कि यह करम-चन्द की ही कार्यवाही है। पहिले ही राजा और मन्त्री के बीच में

घोर वैर था, परन्तु इस वात से तो राजा और भी चिढ़ गया।

करमचंद ने अपने धर्म और जाति की जो सेवा की है उसको शब्दों में कदापि प्रकट नहीं किया जा सकता। अब तक वह संघ का उपकारी समझा जाता है। सन् १५५५ ईस्वी में बीकानेर में उसने खरतरगच्छ के आचार्य जिनचंद्रसूरि के शुभागमन के समय बड़े समारोह के साथ उत्सव किया था। जो कवि आचार्य महाराज के आगमन के शुभ समाचार करमचंद के पास लाया था, उसको करमचंद ने बहुत बड़ा इनाम दिया था।

१५७८ A. D. वि० सं० १६३५ के अकाल में उसने अन्न बट-वाने के मुफ्त केन्द्र स्थापित करके भूखो प्रजा का दुःख दूर करने का प्रयत्न किया।

करमचंद बड़ा दानी था; परन्तु बईभाटों के साथ जो उसने विरोध किया था, उससे हम इतना अवश्य कहेंगे कि वह आलसी लोगों को दान नहीं देता था। जब वह दिल्ली में था, तो उसने अकबर के सरल निष्पक्ष स्वभाव को देखकर उसके हृदय में जैन-धर्म और जैनशास्त्रों से रुचि उत्पन्न करा दी थी। उसी की सलाह से अकबर ने उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् हीरविजयसूरि और जिनचन्द्रसूरि जैनाचार्य्यों को अपने दरबार में बुलाया था और उनको अपने साथ रक्खा था। सन् १५९२ ईस्वी में करमचन्द ने जिनसेनसूरि को गद्दी पर बैठालने का जलसा बड़े समारोह के साथ लाहौर में किया। उसने मुसलमानों से जैनियों की बहुतसी मूर्तियाँ लीं जो उनके हाथ लग गई थीं और उन सबको बीकानेर के मंदिर

हर प्रकार की कोशिशें कीं; परन्तु वे सब बेकार हो गईं।

१५. भागचन्द १६. लक्ष्मीचन्द—

रायसिंह को अपने कुटिल और मायापूर्ण इरादे के पूरा न होने से बड़ा दुःख हुआ और वह किसी न किसी दिन बदला लेने के लिए इच्छा करता रहा। सन १६११ ईस्वी में वह बहुत बिमार होगया और उसके रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया। जब उसने अंत समय निकट समझा, तब अपने पुत्र सूरसिंह को अपने पलंग के पास बुलाकर कहा "बेटा, मैं हताश होकर मरता हूँ। मेरी अंतिम शिक्षा तुम्हारे लिए यही है कि, तुम करमचंद बच्छावत के लड़कों को बीकानेर वापिस लाकर उनको उनके बाप के अपराध का दण्ड देना।" इन शब्दों को कहते ही रायसिंह का परलोक होगया। रायसिंह के मरने के बाद दलपतसिंह राज्य का अधिकारी हुआ, परन्तु वह केवल दो वर्ष तक राज्य कर पाया। सन् १६१३ में सूरसिंह राज्यसिंहासन पर बैठा। उसको अपने बापके मरते समय के शब्द याद थे और वह अपने कुटिल इरादे को पूरा करने के लिए उचित समय देख रहा था। राज्यसिंहासन पर बैठते ही वह दिल्ली गया। उसके दिल्ली जाने के दो अभिप्राय थे, एक तो मुग़ल-सम्राट को प्रणाम् करने के लिए, दूसरे बच्छावत कुलको बीकानेर लाने के लिए। उसका मतलब अच्छी तरह हल हो गया। वह वहाँ भगवानचंद और लक्ष्मीचंद से मिला और उनको उसने अनेक आशायें और विश्वास दिलाने के बाद अपने साथ बीकानेर चलने के लिए राज़ी कर लिया।

अपनी आत्मरक्षा के लिए सूरसिंह के झूठे वाक्यो से और अपने पुराने अधिकारों को पुनः प्राप्त कर लेने की झूटी आशा से धोखा खाकर, वच्छावत भाइयो ने कुटुम्ब सहित अपनी जननी जन्मभूमि को प्रस्थान किया। उनको यह बात जानकर बड़ा आनन्द हुआ कि उनके देश-परित्याग के दिन अब समाप्त होगये हैं। अब वे शीघ्र अपने देश और देशबन्धुओ को देखेंगे। उनके हृदय मे सूरसिंह के प्रति जो इस समय उनका झूठा और कल्पित उपकारी बन रहा था, बड़े बड़े विचार उत्पन्न हो रहे थे। बेचारे अभागे नवयुवकों को स्वप्न मे भी इस बात का विचार न आया कि जितने वायदे किये गये हैं वे सब झूठे हैं और उनको यमलोक पहुँचाने वाले हैं। सूरसिंह ने अपने षड्यंत्र के गुप्त रखने मे बड़ी सावधानी रक्खी। उसने अपने वर्तमान दीवान को निकाल दिया और जनसाधारण मे इस बात की घोषणा करदी कि, अब इस पद पर उन्हींको नियुक्त करूँगा, जिनका इस पर हक है और जो इसके अधिकारी हैं। कुछ समय के बाद वे बीकानेर पहुँचे और प्रत्यक्ष में राजा ने उनके साथ बड़ी भलमनसीका व्यवहार किया, पर यथार्थ मे उनका मरण अवश्यम्भावी हो गया था। उनको वहाँ आये हुए पूरे दो मास भी नहीं हुए थे कि एकाएक उनको एक दिन प्रात काल यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका मकान सूरसिंह के तीन हजार सिपाहियो ने घेर लिया है। अब इस समय उनको अपनी दशा का पूरा पूरा पता लग गया। अत उन्होंने शत्रु के वश में पड़ना नीच कर्म समझ कर वीरता के साथ मरना ही उत्तम

समझा। उनके राजपूत नौकरों का छोटा सा समूह—जिसकी संख्या केवल पाँचसौ थी—अपने मालिकों के लिए चारों तरफ़ खड़ा होगया और अपनी कमर कसकर उनकी रक्षा करने को तैयार हो गया। प्रत्येक राजपूत लड़ाई की चोटों को सहने के लिए तैयार था और मरने के लिए साहस और धैर्य रखता था। बच्छावत और उनके साथी वीरोंकी भांति खड़े रहे; परन्तु यथार्थ में पूछा जाय तो कहना पड़ेगा कि यह न्याय की लड़ाई नहीं थी। यह केवल अन्याय था और आक्रमण करने वालों का बड़ा ही नीच और घृणित कर्म था। जब बचाव की सब आशायें निराशा में परिणत हो गईं तब दोनों भाइयों ने जो अपनी जैन-जाति के सच्चे वीर थे, अपने वंश का नाम क़ायम रखने के लिए प्रण ठान लिया। उन्होंने हताश हो कर अपनी भयंकर परन्तु प्राचीन प्रथा जौहर की शरण ली। प्राणनाशक चिता तैयार की गई और उसमें तमाम स्त्रियाँ जल कर भस्म हो गईं। स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, बीमारों सभी ने अपने प्राण दे दिये। कितने ही तलवार से कट कर मर गये और कितने ही अग्नि की ज्वाला में कूद पड़े। ज्यों ही धुंवें के गुब्बारे घेरा बनाते हुए ऊपर को उठे, त्यों ही रक्त की नदियाँ बह निकलीं। एक भी मरने से नहीं हिचकता था। समस्त बहुमूल्य पदार्थ नष्ट कर दिये गये और कुए में फेंक दिये गये। इसके पश्चात् बच्छावत भाइयों ने अर्हत्परमेष्ठी को नमस्कार किया और अन्त समय केशरिया बाना पहिन कर एक दूसरे को छाती से लगाया। तदनंतर उन्होंने हवेली के द्वार खोल दिये और

वीर-नारी

युवती ने क्रोध के वेग को रोक कर कहा— " कवीजी ! कविता फिर भी रची जायगी, इस समय अपनी वहन की इज्ज़त बचाओ"

यह कवि वीकानेर महाराज रायसिंह के भाई थे। जब वीकानेर-नरेश ने अपनी लड़की अकवर को दी, तो इन्होंने उनका तीव्र प्रतिवाद किया और वे लड़ने के लिए तैयार हो गये। इस पर वे आगरे में नज़र क़ैद कर लिये गये। इन्हें कविता करने का व्यसन था। अकबर वादशाह इनकी कविता चाव से सुनता था। हर समय इन्हें यही एक धुन रहती थी। इनका नाम पृथ्वीराज था। अन्यमनस्क भाव से वोले "क्यों क्या हुआ ? प्राणप्रिये ! इस समय मुझे क्षमा करो, मुझे एक समस्या पूर्ति करनी है, इसलिये...."

युवती—(वात काटकर) तो साफ़ क्यों नहीं कहते, कि इस समय चली जा, नहीं तो कविता अच्छी न वन सकेगी।

पृथ्वी—अच्छा यही समझ लो।

युवती—मैं खूब समझ चुकी हूँ। यदि यही अकर्मण्यता न होती, तो आपको इस प्रकार दासत्त्व-वृत्ति स्वीकार नहीं करनी पड़ती। देश के ऊपर आपत्ति की घनघोर घटा छाई हुई है, सगी वहन का सतीत्त्व नष्ट हो रहा है और आप कविता करने वैठे हैं। धिक्कार है आपकी कविता को, फटकार है आपकी वुद्धि को, लानत है आपकी

सूझ को।

पृथ्वी—तो क्या कविता करना छोड़ दूं?

युवती—अवश्य।

पृथ्वी—ध्यान रहे संसार मे सब वस्तु मिट सकती है, परन्तु कृति नहीं मिटती।

युवती—मैं सौगन्द पूर्वक कहती हूँ कि संसार मे सब कुछ मिट सकता है, परन्तु कुल मे लगा हुआ कलंक कभी नहीं मिटता।

पृथ्वी—कविता से सैनिको के हृदय मे वीर-भाव उत्पन्न होते हैं। चन्दवरदाई का नाम उसकी कविता के कारण अमर होगया है।

युवती—हाँ, यदि कविता मे हृदय के भाव हो, [illegible] भी अपने कथनानुसार कर्मवीर हो तब न? जब लोगो [illegible] मालूम होगा कि यह कृति उस अकर्मण्य की है, जो परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ा हुआ था, जो अपनी बहन का सर्वनाश [illegible] से देखता रहा, तब वह आपकी कृति का उपहास करेंगे। चन्द वरदाई का नाम कविता के कारण नहीं, उसकी वीरता के कारण अमर है।

पृथ्वी—साहित्य और संगीत से रहित मनुष्य पशु है।

युवती—लेकिन यदि किसी घर में आग लगी हो, [illegible] निवासियो को गात बजाते देखकर तुम क्या कहोगे?

पृथ्वी—मूर्ख कहूँगा और क्या?

युवती—क्यो? गाना तो कोई बुरी चीज नहीं।

पृथ्वी—बुरी चीज नहीं, किन्तु उस समय उसकी [illegible]

नहीं। समय पर ही सब कार्य अच्छे लगते हैं।

युवती—बस आपके कथनानुसार फैसला हो गया। कविता करना बुरा नहीं, किन्तु इस समय उसकी आवश्यकता नहीं।

पृथ्वी—इसका तात्पर्य ?

युवती—यही कि आप क्षत्री हैं। भारतमाता को इस समय वीर-पुत्रों की आवश्यकता है। आप ही सोचलें यदि आज वीर राजपूत समस्या-पूर्ति में लगे रहें, तो फिर देश की समस्या को कौन हल करेगा ?

पृथ्वी—तो तुम क्या चाहती हो ?

युवती—यही कि देश सेवा के व्रत में केशरिया वाना पहन कर शत्रुओं का संहार करो। आज इनके अत्याचारों से भारतमाता रुदन कर रही है, स्त्री बच्चों की गर्दनों पर निर्दयता पूर्वक छुरी चलाई जा रही है, वीर ललनाओं का वलपूर्वक शील नष्ट किया जा रहा है। अतएव इस समय कविता करना योग्य नहीं। प्रताप का साथ दो, प्राणनाथ! प्रताप जैसे बनो!

कहते कहते युवती का गला रुँध गया वह अब अपने को अधिक न सम्हाल सकी। लज्जा, घृणा, मानसिक सन्ताप आदि ने उसे बोलने में असमर्थ कर दिया। वह अपने पति के पाँवों में पड़कर फूट २ कर रोने लगी। युवती के रुदन में कुछ बेबसी का ऐसा अंश था, कि पृथ्वीराज का कठोर हृदय भी पिघल गया और उत्सुकता से उसके दुःख का कारण पूछने लगे।

❀ ❀ ❀

जिस समय यवन बादशाह अकबर के हाथ में भारतवर्ष के शासन की बागडोर थी, उस समय वीर-चूड़ामणि प्रताप को छोड़कर सभी राजे अपनी स्वाधीनता खोकर, पूर्वजों की मान-मर्यादा को तिलांजली देकर दासत्व-वृत्ति स्वीकार कर चुके थे। जोधपुर का राजा उदयसिंह अपनी बहन जोधाबाई और आमेर का राजा मानसिंह अपनी बहन का सम्बन्ध बादशाह से करके राजपूत जैसे उज्वल कुल में कलंक लगा चुके थे। महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तसिंह भी घरेलू झगडों के कारण अकबर से आ मिले थे। इन्हीं शिशोदिया-वीर शक्तसिंह की कन्या बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीसिंह को व्याही थी। शक्तसिंह यद्यपि [illegible] "घर का भेदी लंका ढावे" इस कहावत के निशाने [illegible] किन्तु उनकी कन्या के हृदय में मातृभूमि के प्रेम [illegible] निकला था। वह क्षत्राणी थी, उसे अपने कुल की मानमर्यादा का पूरा ध्यान था। उसके कुल की असंख्य वीरांगना [illegible] में कूद कर मरी हैं, रण-क्षेत्र में शत्रुओं का रक्त बहा कर [illegible] शान दिखा गई हैं, इत्यादि बातों का उसे पूरा [illegible] अपने पति के साथ आगरे में रहती थी। अकबर अपनी [illegible] वासनायें तृप्त करने के लिये अनेक राजसी यत्न करता रहता [illegible] अपनी विलासिता के लिये वह आगरे के किले में [illegible] मीना बाजार लगवाता था। उसमें केवल स्त्रियों के [illegible] थी। राजपूत और मुसलमान व्योपारियों की स्त्रियां [illegible] शिल्पजात पदार्थ लाकर उस मेले में [illegible]

और राज-परिवारों की स्त्रियाँ वहाँ जाकर मनमानी सामग्री मोल लिया करती थीं। पाखण्डी अकबर भी भेष बदले हुये वहाँ जाता था और किसी न किसी सुन्दर युवती को अपने षड्यंत्र में फांस लिया करता था। एक समय पृथ्वीराज की पत्नी किरन भी उक्त मीना बाज़ार की सैर करने गई। अकबर ने इसे धोखे से भुलावा देकर महलों में बुला लिया। किरन अकबर के पैशाचिक भाव को ताड़ गई, लपक कर उखेड़ में बैठ बादशाह को दे मारा और कमर से एक छुरा निकाल बादशाह की छाती पर बैठ सिंहनी की तरह गरज कर बोली "ईश्वर के नाम से शपथ करके कह, कि और किसी अबला के शील नष्ट करने की इच्छा नहीं करूँगा। कह शपथ कर, नहीं तो यह तीक्ष्ण छुरी अभी तेरे हृदय के रुधिर से स्नान करेगी।" कायर अकबर प्राणों की भिक्षा मांगने लगा, उसने तत्काल वीर बाला की आज्ञा का पालन किया। वीर-नारी किरन ने भी अकबर को जीवन दान दिया।

इसी घटना से घायल सिंहनी की तरह जब किरन अपने मकान पर आई, तब वहां पृथ्वीराज को कविता करते देख, वीर बाला का क्रोधरूपी समुद्र उमड़ आया और उसी आवेश में अपने पति को उसके क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का ज्ञान कराने के लिये मूठ मूठ अपनी ननद का नाम ले दिया! शिशोदिया राज-कन्याओं ने हमेशा धर्म के लिये जान दी है। उन्होंने कभी अपने उज्वल कुल में कलङ्क नहीं लगने दिया, यही करण है कि उस समय जिसको शिशोदिया राजकुमारी व्याही जाती थी, वह मारे गर्व के फूल उठता

दीवान अमरचन्द सुराना ।

अमरचन्द बीकानेर के प्रतिष्टित ओसवाल जाति के एक जैन थे । महाराज सूरतसिंह के समय में जिनका राज्य-काल सन् १७८७ से १८२८ तक रहा है, इन्होंने बहुत प्रसिद्धि पाई ।

सन् १८०५ ईस्वी में अमरचन्दजी भाटियों के खान ज़ाब्ताख़ाँ से युद्ध करने के लिए भेजे गये । इन्होंने खान पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी भटनेर को घेर लिया । पाँच मास तक क़िले की रक्षा करने के बाद ज़ाब्ताख़ाँ ने क़िले को छोड़ दिया और उसको अपने साथियों के साथ रैना जाने की आज्ञा मिल गई । इस वीरता के कार्य के उपलक्ष्य में राजा ने अमरचन्दजी को दीवान पद पर नियत कर दिया ।

सन् १८१५ ईस्वी में अमरचन्दजी सेनापति बनाकर चूरु के ठाकुर शिवसिंह के साथ युद्ध करने को भेज दिये गये । अमरचन्द ने शहर को घेर लिया और शत्रु का आना जाना रोक दिया । जब ठाकुर साहब अधिक काल तक न ठहर सके, तो उन्होंने अपमान की अपेक्षा मृत्यु को उचित समझा और आत्मघात कर लिया । अमरचन्दजी की वीरता से प्रसन्न होकर महाराजा साहब ने उसको राव की पदवी, एक खिलअत तथा सवारी के लिए एक हाथी प्रदान किया * ।

---

* जैन-हितैषी भाग ११ वाँ अंक १०–११ से

जैसलमेर

साहित्य का विस्तार अब भी है हमारा कम नहीं,
प्राचीन किन्तु नवीनता में अन्य उसके सम नहीं;
इस क्षेत्र से ही विश्व के साहित्य-उपवन हैं बने,
इसको उजाड़ा काल ने आघात कर यद्यपि घने ॥

-- मैथिलीशरण गुप्त

जैसलमेर-परिचय

राजपूताने के पश्चिमी भाग में जोधपुर से १५० मील से अधिक दूरी पर जैसलमेर कस्बा है। जैसलमेर [illegible] की चौहद्दी इस प्रकार है — उत्तर में बहावलपुर, [illegible] बीकानेर, पश्चिम में सिन्ध, दक्षिण व पूर्व जोधपुर।

जैसलमेर का राजकुल "यदुवंशी" राजपूत है। राजा [illegible] वाल ने जैसलमेर सन् ११५६ में बसाया था। यहाँ पर [illegible] कम होती है। पृथ्वी रेतीली और उजाड़ है। लोग [illegible] हुये पानी से गुजारा करते हैं। जैसलमेर की आबोहवा [illegible] है। जैसलमेर नगर बार्मेर स्टेशन से ९० मील है। पहाड़ी पर बने हुए किले के अन्दर ८ जैन-मन्दिर हैं, जो अत्यन्त सुन्दर हैं। [illegible] खुदाई का काम अच्छा है। कई मन्दिर १००० [illegible] श्री पार्श्वनाथका मन्दिर अत्यन्त मनोज्ञ है, जिसे [illegible] शाह ने सन् १३३२ में बनवाया था।

साहित्य-भण्डार

जब जान को लोग हथेली पर लिये फिरते थे, और सुकुमार बालकों, बिलखती हुई युवतियों और डकराती हुई मांओं को छोड़कर, प्राणों का तुच्छ मोह त्याग, युद्ध में जूझ मरने को सदैव प्रस्तुत रहते थे; तब हमारे उन्हीं वीर पुरखाओं ने अपने सोने से लगाकर जैन-ग्रंथों की रक्षा की थी। आज हम अकर्मण्य और कापुरुषों के कारण भले ही वह चूहे और दीमकों की उदरपूर्ति का साधन बन रहे हों, पर हमारे पूर्वज जान और माल से अधिक साहित्य का महत्व समझते थे, यह अब भी उन बचे हुये ग्रंथों से ध्वनित होता है। ‡

---

‡ श्रद्धेय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने एक बार लिखा था:—"जैनधर्मावलम्बियों में सैंकड़ों साधु महात्माओं और हज़ारों विद्वानों ने ग्रन्थ रचना की है। ये ग्रन्थ केवल जैनधर्म ही से सम्बन्ध नहीं रखते, इनमें तत्व-चिन्ता, काव्य नाटक, छन्द, अलंकार, कथा-कहानी, इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ हैं। जिनके उद्धार से जैनेतर जनों की भी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन हो सकता है। भारतवर्ष में जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसके अनुयायी साधुओं और आचार्यों में से अनेक जनों ने धर्मोपदेश के साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थ-रचना और ग्रंथ-संग्रह में खर्च कर दिया है। इनमें कितने ही विद्वान् बरसात के चार महिने बहुधा केवल ग्रन्थ लिखने में ही बिताते रहे हैं। यह
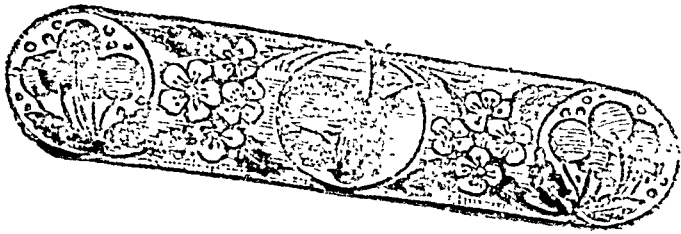
का उपासक न रह कर लक्ष्मी का उपासक बन गया है। और उलूकवाहन लक्ष्मी के उपासक, सरस्वती का अस्तित्व और प्रतिष्ठा देख नहीं सकते। यदि सत्य बात कहना अपराध न समझा जाय, तो मैं कहूँगा कि जहाँ हमारे पूर्वजों ने संसार के प्रत्येक कार्य का सम्पादन करके अपने अकाण्ड पाण्डित्य का परिचय दिया है, वहाँ हमारे जैसे कृतघ्नी-पुत्रों को जन्म देकर भारी मूर्खता का भी परिचय दिया है। नहीं तो क्या कारण है कि, जब संसार की सभी जातियाँ अपने पूर्वजों की कृतियों और कीर्तियों के उत्थान का भरसक प्रयत्न कर रही हैं, तब हम हाथ पर हाथ धरे निश्चिन्त बैठे हैं। हमारी इस अकर्मण्यता को लक्ष करके ही शायद स्वर्गीय "चकबस्त" ने कहा था:—

मिटेगा दीन भी और आबरू भी जायेगी।
तुम्हारे नाम से दुनियां को शर्म आयेगी॥

[२८ जनवरी सन् ३३]

और भी भड़का दिया। मेहता स्वरूपसिंह को अपने पथ से हटाने का युवराज को यह अवसर अनायास ही मिल गया। और सरे दरबार मेहता स्वरूपसिंह को बैठे हुये अचानक शहीद कर दिया। राजा मूलराज ने अपने पुत्र की यह धृष्टता देखी तो वह क्रोध से अधीर हो उठे किन्तु अपने पुत्र की संहारमूर्ति और सामन्तों की हिंसक अभिलाषा देखकर मूलराज मारे जाने के भय से अन्तःपुर में चले गये। अन्त में युवराज रायसिंह ने सामन्तों के परामर्श से अपने पिता को भी कारागृह में डाल दिया और आप जैसलमेर के राज्यसन पर आरुढ़ हुये।

[२० जनवरी ३३]

मेहता सालिमसिंह

महाराज मूलसिंह तीनमाह चारदिन तक कारागार की यन्त्रणा सहन करने के पश्चात् एक वीर रमणी की सहायता से मुक्त होकर पुनः सिंहासनारुढ हुये। महाराज मूलसिंह के सिंहासनारुढ होते ही युवराज रायसिंह और उसके [illegible] निर्वासित कर दिये गये।

पूर्व परम्परा के अनुसार महाराज मूलसिंह ने [illegible] मंत्री स्वरूपसिंह के मारे जाने पर उसके सुयोग्य पुत्र [illegible] को अपने मंत्री पद से विभूषित किया। स्वरूपसिंह [illegible] मृत्यु के समय यद्यपि सालिमसिंह केवल ११ वर्ष का [illegible] उस अल्पवयस्क के हृदय में प्रतिहिंसा की [illegible]

होकर उन सब निर्वासित सामन्तों को उनके देश व जागीर मेहता सालिमसिंह ने रावल मूलराज से दिलवा दिये।

निर्वासित आज्ञा और देश वापिस दिला देने के बाद भी विद्रोही सामन्त शान्ति से न बैठे रहे। वे रावल मूलराज के पुत्र और पौत्रों को लेकर विद्रोह की अग्नि भड़काने के प्रयन्त में लगे रहे और साथ ही सालिमसिंह के नाश का भी षड्यंत्र रचने लगे। जब उसने राज्य को और अपने को इस प्रकार खतरे में पड़ा देखा तो उसकी पुरानी प्रतिहिंसा की आग फिर प्रज्वलित होगई। अन्त में उसने लाचार होकर राज्य के और अपने पुराने शत्रुओं को संसार से विदा करके अपने पिता के वध का बदला लिया।

यद्यपि टॉड् साहब ने सालमसिंह के उक्त कार्य की निन्दा की है, पर इस पर यदि तनिक विचार किया जाय तो मालूम होगा कि प्राचीन समय में ऐसा सदैव होता आया है। जो पिता के घातक से बदला नहीं ले सकता था, वह सुयोग्य पुत्र कहलाने का अधिकारी ही नहीं था। इसी सालिमसिंहने अंग्रेजों के साथ संधि करने में बड़ा विरोध किया था।

[३१ जनवरी सन् ३३]

मेरवाड़ा—अजमेर

कर्तव्य करके वीर जो वलिहार हुये हैं।
वह अपनी जाती के लिये शृङ्गार हुये हैं॥

खोया अधर्म, धर्म की रक्षा जिन्होंने की,
सच पूछिये तो वस वही अवतार हुये हैं॥

—राधेश्याम

में इस झील का घेरा क़रीब ६ मील के हो जाता है। झील के निकट जहाँगीर बादशाह का बनवाया हुआ "दौलत बाग़" है और किनारे पर मार्बल के मकानों का सिलसिला है। अजमेर से क़रीब ७ मील की दूरी पर एक "पुष्कर" नामक क़स्बा है। जो कि हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। इस की सीमा के भीतर कोई मनुष्य जीव हिंसा नहीं कर सकता। अजमेर में रेलवे आफ़िस, मेयो कालिज, ढाई दिन का झोंपड़ा (जो मुसलमानों ने जैन मन्दिर को तुड़वा कर बनवाया था) रेल्वे ढलने का कारखाना, ख्वाजा साहब की दरगाह और सेठ साहूकारों की बहुत सी कोठियाँ देखने योग्य हैं। (दि० जैन डिरेक्टरी पृ० ४६१)

मुहल्ला लाखनकोठरी में जैन श्वेताम्बर श्रावकों की आबादी और जैन श्वेताम्बर मन्दिर बहुत लागत के हैं।

अजमेर का विवरण लिखते हुये टॉड साहब ने लिखा है:—

"अजमेर दुर्ग के पश्चिम प्रान्त में एक बहुत ही पुराना जैन मन्दिर है। किसी कारण से यवनों ने इसको नहीं गिराया है। इसका नाम "ढाई दिन का झोंपड़ा" अर्थात् जैनी शिल्पियों ने इन्द्रजाल मंत्र की शक्ति से इसको ढाई दिन के अन्दर बना दिया था। इस कारण इसका नाम ढाई दिन का झोंपड़ा रक्खा गया ऐसी जन-श्रुति है। भारत के तीन प्रधान पवित्र स्थानों में जैनियों ने, जैसे चित्ताकर्षक मन्दिर बनवाये हैं, उनके द्वारा जैन शिल्पियों की योग्यता भली भांति प्रगट हो रही है। ज्ञात होता है कि यथेच्छ सामग्री मिल जाने के कारण यह मन्दिर बहुत ही शीघ्र तैयार

धनराज सिंघवी

लगादे आग न दिल में तो आरज़ू क्या है ?
न जोश खाये जो ग़ैरत से वह लहू क्या है ?

"—चकवस्त"

संसार एक रंग भूमि है। वैसे तो यहाँ सभी नानारूप में अभिनय करते हैं, पर उनमें वहुत कम ऐसे होते हैं, जो अपने अभिनय की याद दर्शकों के हृदय-पट पर अंकित कर सकते हों। धनराज सिंघवी संसार-रंगभूमि का एक ऐसा चतुर अभिनेता था, जिसने मृत्यु के अभिनय में लोगों को चकित कर दिया था।

जब मारवाड़ के महाराज विजयसिंह ने सन् १७८७ ईस्वी में अजमेर को पुनः मरहठों से जीत लिया, तव उन्होंने धनराज सिंघवी को अजमेर का गवर्नर नियुक्त किया। किन्तु थोड़े दिन के पश्चात् मरहठों ने अपनी खोई हुई शक्ति को वटोर कर चार वर्ष के वाद फिर मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राठौड़वीर अव की वार भी खुलकर खेले किन्तु विजय महाराष्ट्रों के भाग्य में थी।

इसी मौक़े पर मरहठों के सेनापति डिवाइन ने अजमेर पर आक्रमण कर दिया और उसको चारों ओर से घेर लिया। यह समय धनराज सिंघवी के लिए अत्यन्त विपत्ति का था, फिर भी उस साहसी वीर ने बचे खुचे मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर विजयी

और महाशक्तिशाली मरहठों का बड़ी वीरता
और उनको आगे बढ़ने से रोक दिया।

पाटन युद्ध के बुरे परिणाम के कारण मारव
सिंह ने धनराज को हुक्म भेजा कि—"अजमेर
कर जोधपुर चले आओ। धनराज सिंघवी के
परीक्षा की कसौटी थी, क्योंकि न तो वह अपना
को देश सौंपना चाहता था और न वह अपने
का उलंघन ही कर सकता था। इस भयंकर सम
में पड़ गया और अन्त में श्री० वादीभसिंह
पराधीनाज्जीवानां मरणं वरम् *"
समझकर अफीम खाली। मृत्यु शैय्या पर
प्रिय वीर ने चिल्लाकर कहा था कि—"
कहो कि मैंने प्राण त्याग करके ही
है। मेरी मृत्यु पर ही मरहठे अजमेर में
नहीं।"

इसी समय से अजमेर चिरकाल
होगया। फिर समय पाते ही महाराष्ट्रों
इस अजमेर पर अधिकार कर लिया
के किले पर अंग्रेजों की पताका उड़ रही है।

[२९ जनवरी २२]

* पराधीन जीने से

मंत्री मंडन का वीर वंश।

पं० शोभालालजी शास्त्री ने नागरी प्रचारणी पत्रिका भाग ४ अंक १ में लिखा है:—

भारतवर्ष किसी दिन ज्ञान और विद्या का भांडार था। यहां के राजा महाराजा और उनके मंत्री बड़ेर विद्वान् होते थे। उनका ज्ञान केवल युद्धविद्या और राज्यप्रबन्ध में ही मर्यादित नहीं होता था किंतु काव्य, साहित्य, संगीत आदि अन्य विषयों में भी वे असाधारण ज्ञान रखते थे।

राज्य के भीतरी प्रबन्ध और बाहिरी संधि-विग्रहादि कार्यों में व्यस्त रहने पर भी ऐसे ऐसे ग्रंथ लिखना उस समय के नरपतियों तथा मंत्रियों के प्रौढ़ विद्यानुराग को सूचित करता है। आज मैं पाठकों के सम्मुख एक ऐसे ही मंत्रि-रत्न के चरित्र को उपस्थित करता हूँ, जो प्रायः पौने पांच सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष को उज्वल कर चुका है, और जिसकी अलौकिक प्रतिभा के कुछ नमूने उसके स्मृति-चिन्ह स्वरूप आज भी हमें दृष्टिगोचर होते हैं।

इसका नाम मंडन था और जालौर के सोनगरा (चौहान क्षत्रियों के) वंश में इसका जन्म हुआ था।

पृथ्वीराजरासो में सोमेश्वर के पिता का नाम आनन्दमेव लिखा है, इससे अनुमान होता है कि आनंद या आनंदमेव अर्णोराज ही के नामांतर हैं। पृथ्वीराज रासो में यह भी लिखा है कि आनंद-मेव (अर्णोराज) ने सोमेश्वर को राज्य दिया, सोमेश्वर ने गुजरात और मालवे पर आक्रमण कर उन्हें अपने आधीन किया।

मालूम होता है कि अभयद ने अपनी युवावस्था में ही जब कि उसका पिता विद्यमान था; आनंद के मंत्री का पद प्राप्त कर लिया था, और आनंद के बाद सोमेश्वर के सिंहासनारूढ़ होने पर भी यह उस पद पर बना रहा, तथा सोमेश्वर ने गुजरात पर जो आक्रमण किया, उसमें या तो यह भी साथ था, या सोमेश्वर ने स्वयं न जाकर इसे ही गुजरात जीतने को भेजा हो। इसके बाद सोमेश्वर ने इसके पिता अभयद को जो उस समय भी वर्तमान था मंत्री बनाया हो।

३. आंबड:—

अभयद का पुत्र आँबड़ हुआ। इसने स्वर्णगिरि (जालौर के क़िले) पर विग्रहेश को स्थापित किया। यहाँ पर विग्रहेश से शायद सोमेश्वर का बड़ा भाई विग्रहराज चौथा, जिसका उपनाम बीसलदेव था, निर्दिष्ट किया गया हो, अर्थात् आँबड़ ने जालौर का क़िला, विग्रहराज के आधीन कराया हो। "ईश" शब्द राजाओं के नाम के अन्त में भी आता है, जैसे अमरसिंह के लिए अमरेश, और शिव के नामों के अंत में भी आता है, जैसे समाधीश, अ-चलेश आदि। यहाँ यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है, कि विग्रहेश से

यहाँ विग्रहराज ही से अभिप्राय है, जैसा कि ऊपर बतलाया है अथवा विग्रहराज के नाम से किसी शिवालय के बनवाने का उल्लेख है।

४. सहणपाल:—

आँवड का पुत्र सहणपाल हुआ। यह
प्रधानों में मुख्य था। मोइजुद्दीन नाम के
में हुए हैं। एक रजिया बेगम का भाई मो
ई० सन् १२३९–४० से (वि० सं० १२९६-

फीरोज़ ई० स० १२९० (वि० सं० १३४७) में सिंहासनारूढ़ हुआ था। यह ५० वर्ष का अंतर भी पितापुत्र में असंभव नहीं है।

राजा (मोइजुद्दीन) की सेना ने, जब "कच्छपतुच्छ" नामक देशको घेर लिया, तो लोगों को दुःख से चिल्लाते हुये सुनकर सहणपाल को दया आगई। उसने अपने प्रयत्न से उस देश को छुड़ा दिया। इसने यवनाधिप (मुसलमान बादशाह) को एक सौ एक तार्क्ष्य दिये और बादशाह ने भी खुश होकर उसे सात मुरत्तब बख्शे।

५. नैणाः—

सहणपाल का पुत्र नैणा हुआ। जिसे सुरत्राण (सुलतान) जलालुद्दीन ने सब मुद्राएँ अर्पण कर दी थीं। अर्थात् राज्य का सम्पूर्ण कारबार इसे सौंप रक्खा था। यह सुलतान जलालुद्दीन फीरोज़ खिलजी था, जो मोइजउद्दीन कैकोबाद के अनंतर सन् १२९० ईस्वी में तख्तनशीन हुआ था, और छः वर्ष राज्य करने के उपरान्त सन् १२९६ ईस्वी में मकान के नीचे दबकर मर गया था। इस ने जिनचंद्रसूरि आदि गुरुओं के साथ, सिद्धाचल और रैवतक पर्वत की यात्रा की थी। इस वंश में सब से प्रथम जैनमत इसी ने स्वीकार किया हो, ऐसा प्रतीत होता है।

६. दुसाजुः—

नैणा का पुत्र दुसाजु हुआ। यह चंड राउल के सुविस्तृत राज्य का मुख्य प्रधान था। तुग़लकशाह ने इसे आदर पूर्वक बुलाकर "मेरुतमान" देश दिया था। यह तुग़लशाह गयासुद्दीन तुग़-

दलच प्रदेश पर क़ब्ज़ा कर लिया हो, और वीका ने उससे इस प्रदेश का पीछा छुड़ाया हो।

वीका ने दुर्भिक्ष के समय चित्रकूट (चित्तौड़) के अकाल-पीड़ित लोगों को कई वार, जीवदया को अपने कुल का परम कर्तव्य समझकर अन्न बाँटा था।

८. झांझड़:—

वीका का पुत्र झझण हुआ। यह नांद्रीय देश (नांदोल, जो गुजरात में है) के राजा गोपीनाथ का मंत्री था। यह देवता और गुरुओं (जैनसाधुओं) का परम भक्त था। इसने प्रह्लादन नामक नगर (प्रह्लादनपुर = पालनपुर) में शांतिनाथ का विंब (मूर्ति) स्थापित किया, संघपति बनकर यात्राएँ कीं और संघ के सब मनुष्यों को पहिनने को वस्त्र, चढ़ने को घोड़े और मार्गव्यय के लिये द्रव्य अपनी ओर से दिया। कीर्ति प्राप्त करने के लिये इसने कई उद्यापन किये, जैनसाधुओं के रहने के लिये कई पुण्यशालाएँ बनवाईं। और बहुत से देवमंदिर बनवाए।

नांद्रीय (नांदोड) से यह मालवे की राजधानी मंडपदुर्ग (मांडू) को चला आया था। मांडू उस समय मालवे की राजधानी होने से, बड़ा ही संपत्तिशाली नगर था। अनेक कोटिपति और लक्षाधीश इस नगर को अलंकृत करते थे। कहते हैं कि इस शहर में कोई भी ग़रीब जैन श्रावक नहीं था, कोई जैन गरीबी की दशा में बाहर से आता, तो वहाँ के धनी जैन उसे एक एक रुपया देते थे। इन धनियों की संख्या इतनी अधिक थी कि वह दरिद्र उस

एक एक रुपए से ही सम्पत्तिशाली बन जाता था।

मांडू में उस समय आलमशाह राज्य करता था। उसने दूर और दक्षिण के राजाओं तथा गुजरात के नरेशों को हराया था। झंझण की बुद्धिमत्ता और राज्यप्रबंध-कुशलता देख आलमशाह ने इसको अपना मंत्री बनाया। फरिश्ता ने मालवा के [illegible] की जो नामावली दी है, उसमें आलमशाह नामक [illegible] का नाम नहीं है। संभव है कि आलमशाह से [illegible] के लड़के हुशंगगोरी से हो, जिसने मालवे [illegible] किया, मांडू का किला बनवाया और धार [illegible] राजधानी बनाया। मालवे के सिंहासन पर [illegible] इसका नाम अल्पखाँ था। संभव है कि [illegible] समझ कर उसका संस्कृत रूप पंडितों ने [illegible]

दलक्ष प्रदेश पर क़ब्ज़ा कर लिया हो, और वीका ने उससे इस प्रदेश का पीछा छुड़ाया हो।

वीका ने दुर्भिक्ष के समय चित्रकूट (चित्तौड़) के अकाल-पीड़ित लोगों को कई वार, जीवदया को अपने कुल का परम कर्तव्य समझकर अन्न बाँटा था।

८. झंझड़:—

वीका का पुत्र झझण हुआ। यह नांद्रीय देश (नांदोल, जो गुजरात में है) के राजा गोपीनाथ का मंत्री था। यह देवता और गुरुओं (जैनसाधुओं) का परम भक्त था। इसने प्रह्लादन नामक नगर (प्रह्लादनपुर = पालनपूर) में शांतिनाथ का बिंव (मूर्ति) स्थापित किया, संघपति बनकर यात्राएँ कीं और संघ के सब मनुष्यों को पहिनने को वस्त्र, चढ़ने को घोड़े और मार्गव्यय के लिये द्रव्य अपनी ओर से दिया। कीर्ति प्राप्त करने के लिये इसने कई उद्यापन किये, जैनसाधुओं के रहने के लिये कई पुण्यशालाएँ बनवाईं। और बहुत से देवमंदिर बनवाए।

नांद्रीय (नांदोड) से यह मालवे की राजधानी मंडपदुर्ग (मांडू) को चला आया था। मांडू उस समय मालवे की राजधानी होने से, बड़ा ही संपत्तिशाली नगर था। अनेक कोटिपति और लक्षाधीश इस नगर को अलंकृत करते थे। कहते हैं कि इस शहर में कोई भी ग़रीब जैन श्रावक नहीं था, कोई जैन गरीबी की दशा में बाहर से आता, तो वहाँ के धनी जैन उसे एक एक रुपया देते थे। इन धनियों की संख्या इतनी अधिक थी कि वह दरिद्र उस

एक एक रुपए से ही सम्पत्तिशाली वन जाता था।

माडू मे उस समय आलमशाह राज्य करता था। इसने पूर्व और दक्षिण के राजाओं तथा गुजरात के नरेशो को हराया था। झंझण की वृद्धिमत्ता और राज्यप्रवंध-कुशलता देख आलमशाह ने इसको अपना मंत्री वनाया। फरिश्ता ने मालवा के वादशाहो की जो नामावली दी है, उसमें आलमशाह नामक किसी वादशाह का नाम नहीं है। संभव है कि आलमशाह से अभिप्राय दिलावरखाँ के लड़के हुशंगगोरी से हो, जिसने मालवे का स्वतंत्र राज्य स्थापित किया, माड का किला वनवाया और धार से उठाकर मांडू को राजधानी वनाया। मालवे के सिंहासन पर अधिकार करने के पूर्व इसका नाम अल्पखाँ था। संभव है कि अल्पखाँ को आलमखाँ समझ कर उसका संस्कृत रूप पंडितो ने आलमशाह कर दिया हो।

आलमशाह के समय का वि०सं० १४८१ का एक जैन-शिला-लेख ललितपुर प्रांत के देवगढ़ के पास मिला है। उसमें किसी मंदिर के वनवाने का समय लिखने के प्रकरण में लिखा है कि, "राजा विक्रमादित्य के गताब्द १४८१ और शालिवाहन के शाक १३४६ वैशाखशुक्ल १५ गुरुवार स्वाति नक्षत्र और सिंह लग्न के उदय के समय अपने भुजवल के प्रतापरूपी अग्नि की ज्वाला से गजाधीश (दिल्ली के वादशाह) को व्याकुल कर देने वाला गोरी-वंशी मालवे का राजा श्री शाह आलम्मक विजय के वास्ते जब मंडलपुर (माडू) से निकला, उस समय" और अंत में भी साहि आलम्मः का नाम लिखा है और वाद में लिखा है कि "उस समय

साहि आलम का पुत्र गर्जन स्थान (गज़नी) में गर्ज रहा था"। मालवे का बादशाह होना और मांडू से विजय के लिये निकलना इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं, कि यह शाहि आलम्मक और हमारे मंडन मंत्री का आश्रयदाता आलम्मशाह एक ही थे । उपरोक्त शिलालेख के संपादक श्रीयुत राजेंद्रलाल मित्र महोदय का भी मत यही है कि, यह शाहि आलम्म हुशंगगोरी ही का नाम है। इसका उपनाम अल्पखाँ था और इसी का विद्वानों ने संस्कृत रूप शाहि आलम बना दिया है। मित्र महोदय ने इस का नाम आलम्भक पढ़ा है और इसे मालवा के अतिरिक्त पोलकेश देश का भी राजा माना है, परंतु यह ठीक नहीं है। मंडन के ग्रन्थों तथा महेश्वर के काव्यमनोहर में इसका नाम स्पष्ट आलमसाहि और आलम्मशाहि लिखा है। शिलालेख के बहुत से अक्षर टूटे हुए होने से "म" को "भ" पढ़ लेने के कारण यह भूल हुई है। आलमशाह (हुशंग-गोरी) को पालकेश देश का राजा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि "पालकेश" इस नाम के देश का कहीं भी वर्णन नहीं आता। यह भूल ठीक पदच्छेद न कर सकने के कारण हुई है। उन्होंने "मालव-पालकेशक-नृपे" ऐसा पदच्छेद समझ उपरोक्त अर्थ किया है, परंतु वस्तुतः पदच्छेद "मालव-पाजकेशक नृपे' है, जिसका अर्थ "मालवा की रक्षा करनेवाले मुसलमान बादशाह के" ऐसा होता है।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है, कि यह आलम्मसाहि हुशंगगोरी उपनाम अल्पखाँ ही है । हुशंगगोरी अपने पिता दिलावरख़ाँ की मृत्यु के बाद ई० सन् १४०५ (वि० सं० १४६२) में मालवे के

सिंहासन पर बैठा और ई० स० १४३२ (वि०सं० १४८९) मे इसका देहांत हुआ। यह ठीक मालूम नहीं होता कि झंझण किस समय से किस समय तक हुशंगगोरी का मंत्री रहा, परतु यह अवश्य कहना होगा. कि वह अधिक समय तक नही रहा, क्योंकि इसी अलपखाँ के राजत्वकाल में झंझण का पुत्र वाहड और उसका पुत्र मंडन मंत्री वन चुके थे।

६. चाहड़ः—

झंझड़ के छ. पुत्र थे, जिनमें सबसे वड़ा चाहड़ था। चाहड़ ने संघ के साथ जीरापल्ली (आधुनिक जीरावला जो आवू के समीप है) की यात्रा की और अर्वुद (आवू) पर्वत की भी यात्रा की। संघमें जितने मनुष्य थे, सवों को द्रव्य, वस्त्र और घोड़े दिये और संघपति की पदवी प्राप्त की। तीर्थस्थानों में वहुतसा धन व्यय किया। इसके दो पुत्र थे, जिन में वड़े का नाम चंद्र और छोटे का नाम खेमराज था।

१०. वाहड़ः—

झंझण के दूसरे पुत्र का नाम वाहड़ था। इसने भी संघपति वनकर रैवतक पर्वत (गिरनार) की यात्रा की, संघी लोगों को द्रव्य, वस्त्र और घोड़े दिए। इसके भी दो पुत्र थे। वड़े का नाम समुद्र (समधर) और छोटे का नाम मंडन था। यही मंडन हमारे चरित्रनायक मंत्री मंडन हैं।

११. देहड़ः—

झंझण का तीसरा पुत्र देहड़ था। इसने भी संघपति वनकर

अर्बुद (आबू) पर नेमिनाथ की यात्रा संघ के साथ की। संघ को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका यह वहुत ही विचार रखता था। इसने राजा केशदास, राजा हरिराज और राजा अमरदास को जो जंजीरों में पड़े थे, परोपकर की दृष्टि से छुड़ाया। इनके सिवाय वंराट लूणार और वाहड़ नाम के ब्राह्मणों को भी बंधन से छुड़ाया था। इसके धन्यराज नामक एक पुत्र था। इसका दूसरा नाम धनपति और धनद भी था। इसने भर्तृहरिशतक त्रय के समान, नीतिधनद, शृंगारधनद और वैराग्यधनद नामक तीन शतक वनाये थे। ग्रंथ की प्रशस्ति नीतिधनद के अन्त में दी है। इससे विदित होता है कि इसने नीतिधनद सबसे पीछे वनाया था। ये शतक काव्यमाला के १३ वें गुच्छक में प्रकाशित हो चुके हैं। नीतिधनद के अंत की प्रशस्ति से विदित होता है, कि इसकी माता का नाम गंगादेवी था और इसने ये ग्रंथ मंडपदुर्ग (मांडू) में संवत् १४९० वि० में समाप्त किए थे।

१२. पद्मसिंह:—

झंझण के चौथे पुत्र का नाम पद्मसिंह था। इसने पार्श्वनाथ की यात्रा की और व्यापार से बादशाह को प्रसन्न किया था। इस का भी पद "संघपति" लिखा है। अतः इसने भी यह यात्रा संघ के साथ ही की होगी।

१३. आहलू:—

पाँचवें पुत्र का नाम "संघपति आहलू" था। इसने मंगलपुर की यात्रा की और जीरापल्ली (जीरावला) में वड़े वड़े विशाल स्तं

और ऊँचे दरवाजे वाला मंडप बनवाया और उसके लिए वितान (चंदवा) भी बनवाया।

१४. पाहू:—

झंझण का सब से छोटा पुत्र पाहू था, इसने अपने गुरु जिन-भद्रसूरि के साथ अर्बुद (आबू) और जीरापल्ली (जीरावला) की यात्रा की थी।

ये झंझड़ के छहो पुत्र आलमशाह (हुशंगगोरी) के सचिव थे। ये बड़े समृद्धिशाली और यशस्वी थे। मंडन ने अपने काव्य-मंडन मे लिखा है कि "कोलाभक्ष राजा ने जिन लोगो को कैद कर लिया था, उन्हे इन धर्मात्मा झंझण पुत्रो ने छुडाया। यह कोलाभक्ष कौन था विदित नही होता, शायद कोलाभक्ष से मतलब मुसलमान से हो। संस्कृत में "कोल" सूकर को कहते हैं और 'अभक्ष" का अर्थ "न खानेवाला" ऐसा होता है। अत कोलाभक्ष का अर्थ सूअर न खानेवाला अर्थात् मुसलमान यह हो सकता है। यदि यह अनुमान ठीक है तो "कोलाभक्ष नृप" का अर्थ आलमशाह (हुशंग) ही है। ये लोग हुसंगगोरी के मंत्री थे अत' उसके कैदियों को उस से अर्ज कर छुड़ाया हो यह संभव भी है।

१५. मंडन:—

ऊपर बतलाया जा चुका है कि मंडन, झंझण के दूसरे पुत्र बाहड़ का छोटा लड़का था। यह व्याकरण अलंकार संगीत तथा अन्य शास्त्रों का बडा विद्वान् था। विद्वानों पर इसकी बहुत प्रीति थी। इसके यहाँ पंडितों की सभा होती थी, जिसमें उत्तम कवि प्राकृत

भाषा के विद्वान्, न्यायवैशेपिक, वेदांत, सांख्य भाट्ट प्राभाकर तथा बौद्धमत के अद्वितीय विद्वान् उपस्थित होते थे। गणित भूगोल ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य और संगीतशास्त्र के बड़े बड़े पंडित इसकी सभा को सुशोभित करते थे। यह विद्वानों को बहुतसा धन, वस्त्र और आभूषण बाँटा करता था। उत्तम उत्तम गायक, गायिकाएँ, और नर्तकिएँ, इसके यहाँ आया करती थीं और इसकी संगीत-शास्त्र में अनुपम योग्यता देख कर अवाक् रह जाती थीं। उन्हें भी यह द्रव्य आदि से संतुष्ट करता था। यह जैसा विद्वान् था वैसा ही धनी भी था। एक जगह इसने स्वयं लिखा है कि "एक दूसरे की सौत होने के कारण महालक्ष्मी और सरस्वती में परस्पर वैर है, इसलिए इस (मंडन) के घर में इन दोनों की बड़ी जोरों से बदाबदी होती है; अर्थात् लक्ष्मी चाहती है कि मैं सरस्वती से अधिक बढ़ूं और सरस्वती लक्ष्मी से अधिक बढ़ने का प्रयत्न करती है।

मालवे के बादशाह का इस पर बहुत ही प्रेम था। ऐसे ऐसे विद्वानों की संगति से बादशाह को भी संस्कृत साहित्य का अनु-राग हो गया था। एक दिन सायंकाल के समय बादशाह बैठा था। विद्वानों की गोष्ठी हो रही थी। उस समय बादशाह ने मंडन से कहा कि "मैंने कादंबरी की बहुत प्रसंशा सुनी है और उसकी कथा सुनने को बहुत जी चाहता है। परन्तु राजकार्य में लगे रहने से इतना समय नहीं कि ऐसी बड़ी पुस्तक सुन सकूँ। तुम बहुत बड़े विद्वान् हो, अतः यदि इसे संक्षेप में बनाकर कहो, तो बहुत ही अच्छा हो"। मंडन ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि "बाण ने

स्वयं ही कादंबरी की कथा संक्षेप से कही है, परंतु यदि आपकी आज्ञा है, तो मैं इसकी कथा आपसे संक्षेप मे निवेदन करूँगा" यह कह कर इसने "मंडन-कादंबरी-दर्पण" नामक अनुटुप् श्लोको मे कादंबरी का संक्षेप वनाया।

एक वार पौर्णिमासी के दिन सायंकाल के समय मंडन पहाड़ों के आँगन में वैठा हुआ था। सरस साहित्य की गोष्ठी हो रही थी। इतने मे चंद्रोदय हुआ। चंद्रमा कवियों की परम प्रिय वस्तुओ मे से एक है। कदाचित् ही ऐसा कोई काव्य होगा, जिसमें चन्द्रमा उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया हो। चंद्रमा की अमृतमयी रश्मियों ने मंडन के हृदय को विद्रुत कर दिया। उसने कई श्लोक चंद्रमा के वर्णन के वनाये। ऐसा मालूम होता है कि चंद्रमा की रमणीयता देखने में उसे सोने का भी स्मरण न रहा हो। चंद्रमा के उदय से अस्त तक की भिन्न भिन्न दशाओ का उसने अनेक ललित पद्यों में वर्णन किया। धीरे धीरे चंद्रमा के अस्त होने का समय आया। मंडन का चित्त अत्यंत खिन्न हुआ। जिसके लिए वह सारी रात वैठा रहा था, उसे इस प्रकार अस्त होते देख वह कहने लगा। "हाय जिस मार्ग पर चलने से पहले सूर्य का अध.पात हो चुका था, दुर्दैव-वश चंद्रमा भी उसी मार्ग पर चला और उसका भी अंत में अध पात हुआ। जव पतन होने को होता है तो जानते हुये का भी ज्ञान नष्ट हो जाता है। चंद्रमा को पहले पूर्व दिशा प्राप्त हुई थी, पर उसे छोड़ वह पश्चिम दिशा के पास गया। पहले तो उसने राग (अनुराग और रक्तता) प्रकाशित कर उसे अपनाया पर वेश्या की

तरह थोड़े ही समय में सर्वस्व हरण कर उसको दुतकार कर निकाल दिया ?"

मंडन ने देखा कि सूर्य की किरणों से तांड़ित होकर चंद्रमा भाग रहा है। उन्हों ने उसे कांतिहीन कर पश्चिम समुद्र में गिरा दिया है। इसे सूर्य के ऊपर वहुत ही क्रोध आया। अपने प्रीतिपात्र चंद्रमा की विजय के लिये उसने "चंद्रविजय" नामक एक प्रबंध ललित कविता में वनाया, जिसमें चंद्रमा का सूर्य के साथ युद्धकर उसे हराना और पीछे उदयाचल पर उदय होने का वर्णन है।

मंडन जैन संप्रदाय के खरतरगच्छ का अनुयायी था। उस समय खरतरगच्छ के आचार्य जिनराजसूरि के शिष्य जिनभद्र-सूरि थे। मंडन का सारा ही कुटुम्ब इन पर वहुत ही भक्ति रखता था और इनका भी मंडन के कुटुम्ब पर वड़ा ही स्नेह था। "पाहू" के जिनभद्रसूरि के साथ यात्रा करने का वर्णन ऊपर आ चुका है। ये वड़े भारी विद्वान् थे। इनके उपदेश से श्रावकों ने उज्जयंत (गिरनार) चित्रकूट (चित्तौड़) मांडव्यपुर (मंडोवर) आदि स्थानों में विहार वनाए थे। अणहिलपत्तन आदि स्थानों में उन्होंने वड़ेर पुस्तकालय स्थापित किए थे और मंडप दुर्ग (मांडू) प्रला-दनपुर (पालनपुर) तलपाटक आदि नगरों में इन्होंने जिन-मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी।

जिनमाणिक्यसूरी (वि० सं० १५८३-१६१२) के समय की लिखी हुई पट्टावली और वीकानेर के यति क्षमाकल्याणजी की वनाई हुई पट्टावली से विदित होता है कि 'जिनराजसूरि' के पट्ट

पर पहले जिनवर्द्धनसूरि को स्थापित किया था, परंतु उनके विषय में यह शंका होने पर कि उन्होंने ब्रह्मचर्य भंग किया है, उनके स्थान पर जिनभद्रसूरि को स्थापित किया गया था। महेश्वर ने अपने काव्यमनोहर मे जिनभद्रसूरि की वंशपरंपरा इस प्रकार दी है—
१ जिनवल्लभ, २ जिनदत्त, ३ सुपर्वसूरि, ४ जिनचंद्रसूरि, ५ जिनसूरि, ६ जिनपद्मसूरि, ७ जिनलब्धिसूरि, ८ जिनराजसूरि, ९ जिनभद्रसूरि।

पाटण के भाडार मे भगवतीसूत्र की एक प्रति है। उसके अंत की प्रशस्ति से विदित होता है कि जिनभद्रसूरि के उपदेश से मंडन ने एक वृहत् सिद्धात ग्रंथो का पुस्तकालय "सिद्धात कोश" नामक तय्यार करवाया था। यह भगवतीसूत्र भी उसी मे की एक पुस्तक है।

मंडन ने अपने ग्रन्थों के अंत की प्रशस्ति मे अथवा महेश्वर ने अपने काव्यमनोहर में मंडन के पुत्रो के विषय में कुछ नही लिखा, परन्तु उपरोक्त भगवतीसूत्र के अंत की प्रशस्ति से विदित होता है कि मंडन के पूजा, जीजा, संग्राम और श्रीमाल नामक ४ पुत्र थे। मंडन के अतिरिक्त सं० धनराज, सं० खीमराज और सं० उदयराज का भी नाम इसमें लिखा है। खीमराज चाहड का दूसरा पुत्र खेमराज है और धनराज देहड़ का पुत्र धन्यराज। उदयराज कौन था यह ज्ञात नहीं होता। महेश्वर ने झंझण के छः पुत्रों में से तीनो के पुत्रों का वर्णन किया है, परन्तु पद्म, आल्ह और पाहु की संतति के विषय में कुछ नहीं लिखा। संभव है कि उदयराज

इन्हीं में से किसी एक का पुत्र हो।

मंडन यद्यपि जैन था और वीतराग का परम उपासक था, परन्तु उसे वैदिकधर्म से कोई द्वेष नहीं था। उसने अलंकारमंडन में अनेक ऐसे पद्य उदाहरण में दिए हैं, जिनका संबंध वैदिकधर्म से है। जैसे—

श्रीकृष्णस्य पदद्वंद्वमधमाय न रोचते

अल० म० परि० ५ श्लोक ३३९

अर्थात् जो नीच होते हैं उन्हें श्रीकृष्ण के चरण युगल अच्छे नहीं लगते।

किं दुःखहारि हरपादपयोजसेवा
यद्दर्शनेन न पुनर्मनुजत्वमेति

तत्रैव ९७

अर्थात् दुख को हरण करने वाला कौन है? महादेव के चरण कमलों की सेवा, जिनके दर्शन से फिर मनुष्यत्व प्राप्त नहीं होता (मोक्ष हो जाता है)।

मंडन के जन्म तथा मृत्यु का ठीक समय यद्यपि मालूम नहीं होता तथापि मंडन ने अपना मंडपदुर्ग (मांडू) में वहाँ के नरपति आलमशाह का मन्त्री होना प्रकाशित किया है। यदि उपरोक्त अनुमान के अनुसार आलमशाह हुशंगगोरी ही का नाम है, तो कहना होगा कि मंडन ईसा की १५वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था, क्योंकि हुशंग का राज्यकाल ई० स० १४०५ से ई० स० १४३२

है। वि० सं० १५०४ (ई० स० १४४७) की लिखी मंडन के ग्रन्थों की प्रतियाँ पाटण के भंडार में वर्तमान हैं। इससे प्रतीत होता है कि ईस्वी सन् १४४७ के पूर्व वह ये सब ग्रन्थ बना चुका था। मुनि जिनविजयजी के मतानुसार ये प्रतियाँ मंडन ही की लिखवाई हुई हैं। वि० सं० १५०३ में मंडन ने भगवतीसूत्र लिखवाया था, यह उपर वर्णन हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि मंडन वि० सं० १५०४ (ई० सं० १४४७) तक वर्तमान था।

महेश्वर ने काव्यमनोहर के सर्ग ७ श्लो० २० में लिखा है कि "संघपति भंमण के ये पुत्र विजयी हैं" इस वर्तमान प्रयोग से विदित होता है कि काव्यमनोहर के बनने के समय भंमण के छहों पुत्र वर्तमान थे।

मंडन के ग्रन्थ

पाटण (गुजरात) की हेमचंद्राचार्य सभा ने महेश्वरकृत काव्यमनोहर और मंडनकृत (१) कादंबरीदर्पण (२) चंपू मंडन (३) चंद्रविजय और (४) अलंकार मंडन ये पाँचों ग्रन्थ एक जिल्द में और (५) काव्य मंडन तथा (६) शृंगार मंडन दूसरी जिल्द में प्रकाशित किये हैं। प्रथम जिल्द की भूमिका से विदित होता है कि इन उपरोक्त ग्रन्थों के सिवाय (७) संगीत मंडन और (८) उपसर्गमंडन नाम के दो ग्रन्थों की प्रतियाँ भी उक्त सभा के पास हैं। उक्त सभा ने ये प्रतियाँ पाटण के वाड़ी पार्श्वनाथजी के मंदिर से प्राप्त की हैं।

मंडन ने चंपूमंडन को सारस्वतमंडन का अनुज और काव्य-मंडन के भ्रातृत्व (भाईपन) से सुशोभित कहा है और शृंगारमंडन के अंत में अपने को "सारस्वत-मंडन-कवि" कहा है। इससे सिद्ध है कि सारस्वतमंडन नामक एक और ग्रंथ मंडन ने बनाया है।

आफ्रेट साहब ने अपने "केटलोगस केटलोगरम" नामक पुस्तक में मंडन मन्त्री और मंडन कवि इन दो भिन्न२ व्यक्तियों का वर्णन लिखा है। मंडन मंत्री के लिए लिखा है कि "ईस्वी सन् १४५६ में "कामसमूह" नामक ग्रंथ के बनाने वाले अनंत का पिता था।" और मंडन कवि के लिए लिखा है कि "यह उपसर्ग मंडन, सारस्वत मंडन और कविकल्पद्रुम स्कंध नामक ग्रंथों का कर्ता था। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, सारस्वतमंडन आदि ग्रन्थ हमारे चरित्रनायक बाहड़ के पुत्र मन्त्री मंडन ही के बनाए हुए हैं। अतः सिद्ध है कि आफ्रेट साहिब जिसे मंडन कवि कहते हैं वह बाहड़ का पुत्र मन्त्री मंडन ही है। कामसमूह के कर्ता अनंत का पिता मंत्रिमंडन इस मन्त्रिमंडन से बिलकुल ही भिन्न है। दोनों के नामों की समानता दोनों का मन्त्री होना और समय भी प्रायः समान ही होना यद्यपि इस बात का भ्रम उत्पन्न करता है कि अनंत मांडू के मंत्रिमंडन ही का पुत्र हो, परन्तु अनंतकृत कामसमूह और भगवती सूत्र के अंत की प्रशस्ति देखने पर यह भ्रम नहीं रहता।

पाठकों को विदित है कि मांडू का मंत्रि मंडन सोनगरा गोत्र का क्षत्रिय था परंतु अनंत क्षत्रिय नहीं था, किंतु अहमदाबाद का

रहने-वाला वड्नगरा नागर ब्राह्मण था यथा—

नागरज्ञातिजातेन मंत्रिमंडनसूनुना
अनतेन महाकाव्ये सतीवृत्तं प्रकाशितम् ।

काममसमूह सतीवृत्त प्रकरण श्लो० २९

अहमदनिर्मितनगरे विहितावसतिश्च वृद्धनागरिकः
मंडनसूनुरनंतो रचयति सेवाविधिनार्याः

कामसमूह-स्त्री-सेवा-विधी प्रकरण श्लो० १९

भगवतीसूत्र के अंत में जो मंडन के पुत्रों के नाम दिए हैं उनमें अनंत नाम नहीं है।

"केटलोगस केटलोगरम" से मालूम होता है कि ऊपर लिखित ग्रंथों के सिवाय मंडन ने कविकल्पद्रुम स्कंध नामक एक और भी ग्रन्थ वनाया था । इस प्रकार मंडन के वनाये हुए कुल १० ग्रंथ अव तक विदित हुए हैं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं।

(१) कादंवरीदर्पण
(२) चंपूमंडन
(३) चंद्रविजयप्रवंध
(४) अलंकारमंडन
(५) काव्यमंडन
(६) शृंगारमंडन
(७) संगीतमंडन

(८) उपसर्गमंडन

(९) सारस्वतमंडन

(१०) कविकल्पद्रुम

इनमें से आदि के छः ग्रंथ हेमचंद्राचार्य सभा पाटण की ओर से प्रकाशित हो चुके हैं।

अब लुप्त सी जो हो गई रक्षित न रहने से यहाँ,
सोचो, तनिक, कौशिल्य की कितनी कलाएँ, थी यहाँ ?

प्रस्तर विनिर्मित पुर यहाँ थे और दुर्ग बड़े बड़े,
अब भी हमारे शिल्प-गुण के चिन्ह कुछ कुछ हैं खड़े ॥

अब तक पुराने खण्डहरों में, मन्दिरों में भी कहीं,
बहु मूर्तियाँ अपनी कला का पूर्ण परिचय दे रहीं ॥

प्रकटा रही हैं भग्न भी सौन्दर्य्य की परिपुष्टता,
दिखला रही हैं साथ ही दुष्कर्मियों की दुष्टता ॥

---मैथिली शरण गुप्त

आबू का देलवाड़ा-मन्दिर—"हिन्दुस्तान भर में यह मन्दिर सर्वोत्तम है। सिवाय ताजमहल के कोई भी स्थान इसकी बराबरी नहीं कर सकता" -कर्नल जेम्स टॉड

आबू पर्वत परके प्रसिद्ध जैनमन्दिर.

"आबू पर्वत सिरोही राज्यके अग्निकोण में है। यद्यपि यह पर्वत आडावला (अर्वली) पर्वत के सिलसिले से हट करके स्थित है, तथापि इसकी कई शाखाएं आडावला पर्वत से मिली हुई हैं। आबू पर्वत के उपरि भाग की लम्बाई १२ माइल और चौड़ाई २ से ३ माइल तक है। इस पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर का नाम गुरु शिखर है। यह शिखर समुद्रतल से ५६५० फीट ऊँचा है। आबू पर्वत की समतल भूमि (अधित्यका) की ऊँचाई ४००० फीट है।

इस पर्वत की उत्पत्ति के विषय में इस तरह लिखा है:—

पहले इस स्थानपर उतङ्क मुनि का खोदा हुआ एक बड़ा खड्डा था। इसी के आसपास वशिष्ठऋषि का आश्रम था। एक समय वशिष्ठ की गाय इस खड्डे में गिर गई। इससे वशिष्ठ को बहुत खेद हुआ। तथा वशिष्ठ ने उस खड्डे को भर देने के लिये अर्बुद नाम के सर्प द्वारा हिमालय पर्वत का नन्दिवर्धन नामक शिखर मंगवाकर उस जगह स्थापन कर दिया। वि० सं० ११८७ का एक लेख पाटनारायण के मन्दिर में लगा है। उसमें भी इस विषय का एक श्लोक है। यथा:—

"उत्तङ्कसुषिरे भीमे वशिष्ठो नन्दिवर्द्धनम् ।
किन्नाद्रे स्थापयामास भुजङ्गार्बुदसंज्ञया ॥"

जिनप्रभसूरि विरचित 'अर्बुदकल्प' में भी इस विषयका उल्लेख है:—

"नन्दिवर्द्धन इत्यासीत्प्राक्शैलोऽयं हिमाद्रिजः ।
कालेनार्बुदनागाधिष्ठानादर्बुद इत्यभूत ॥२५॥

अर्थात्—अर्बुद नाम के सर्प द्वारा लाया जाने के कारण यही शिखर अन्त में आबू (अर्बुद) नाम से प्रसिद्ध हुआ । प्राचीन लेखों में लिखा है कि, इसी पर्वत पर वशिष्ठ ने अग्निकुण्ड से परमार, पडिहार, सोलङ्की और चाहमान (चौहान) नामके चार वीरों को उत्पन्न किया था । इन चारों ने अपने नाम से चारवंश प्रचलित किये ।

यद्यपि इस प्रकार की उत्पत्ति पर ऐतिहासिकदृष्टि से विश्वास नहीं किया जा सकता और इस लेख के विरुद्ध भी कई लेख मिल गये हैं—जैसे अजमेर के ढाई-दिन के झोंपडे में एक शिला मिली है, इसमें चाहमान की उत्पत्ति सूर्यवंश में होनी लिखी है—तथापि इस समय इस विषय पर विशेष वादविवाद न करके हम अपने प्रस्तुत विषय को ही लिखते हैं ।

यह पर्वत प्राचीन समय से ही शैव, शाक्त, वैष्णव, और जैनों द्वारा पूज्य दृष्टि से देखा जाता है । तथा वहाँ पर इन मतों के मन्दिरादिक होने से प्रतिवर्ष बहुत से यात्री भी दर्शनार्थ जाया करते हैं ।

को तोड़ कर उस स्थान पर चन्द्रावती नगर बसाया, और वहाँ पर ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० सं० १०८८ में वर्धमानसूरि द्वारा की गई।

प्रोफेसर वेबर के Catalogue of the Berlin Mss,) बर्लिन नगर की प्राचीन पुस्तकों की सूची के, दूसरे भाग के १०३६ और १०३७ वें पृष्ठों मे उपर्युक्त कथा के साथ ही यह भी लिखा है कि, विमल ने जिस समय यह मन्दिर बनवाने के लिये यहाँ की भूमि ब्राह्मणों से ख़रीदी, उस समय उसको उतनी पृथ्वी पर सुवर्ण मुद्राएँ बिछाकर पृथ्वी के बदले ब्राह्मणों को देनी पड़ी। उसने इस मन्दिर के बनवाने में १८ करोड़ और ५३ लाख व्यय किये।

यह मन्दिर परमार धन्धुक के समय में बनवाया गया था। यह धन्धुक गूजरात के सोलंकी भीमदेव का सामन्त था। किसी कारणवश भीम और धन्धुक के बीच मनोमालिन्य हो गया। इस से धन्धुक आबू को छोड कर के मालवे के परमार राजा भोज के पास चला गया। भीम ने अपनी तरफ से विमलशाह को वहाँ का दण्डनायक (सेनापति) नियत किया। उसने कुछ समय बाद धधुक और भीम के बीच का विरोध दूर कर इन दोनो के बीच सुलह करवादी। उसी समय उसने यह मन्दिर बनवाया था।

जैनसमाज मे ऐसी प्रसिद्धि है कि इस मन्दिर के बनाने के लिए हाथियों और बैलों द्वारा पत्थर पहुँचाये गये थे।

यहाँ पर मुख्य मन्दिर के सामने एक विशाल सभा मण्डप है। इसके चारो तरफ़ अनेक छोटे छोटे जिनालय हैं। यहाँ पर मुख्य

इस समय केवल तीन मूर्तियाँ मौजूद हैं। ये मूर्तियाँ चतुर्भुज है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी का मत है कि विमलशाह की मूर्ति और हस्तिशाला, मन्दिर के साथ की बनी हुई नहीं है, पीछे से बनवाई गई है। हस्तिशाला के बाहर चौहान महाराव लुढा (लुभा) के दो लेख लगे है। इनमे का प्रथम लेख वि० सं० १३७२ (ई० स० १३१६) चैत्र वदि ८ का है और दूसरा वि० सं० १३७३ (ई० स० १३१७) चैत्र वदि का, सिरोही के राव इसी के वंशज हैं।

जिनप्रभसूरिके तीर्थकल्प नाम की पुस्तक में लिखा है —

म्लेच्छो ने विमलशाह और तेजपाल के बनवाए हुए आदिनाथ और नेमिनाथ के मन्दिरो को तोड डाला था। शक सं० १२४३ (वि० सं० १३७८) में महणसिंह के पुत्र लल्ल ने आदिनाथ के मन्दिर का और चण्डसिंह के पुत्र पीथड ने नेमिनाथ के मन्दिर का पीछे से जीर्णोद्धार करवाया।

वि० सं० १३७८ के आदिनाथ के मन्दिर के लेख से प्रकट होता है कि, विमल को स्वप्न मे अम्बिका ने आदिनाथ का मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी थी। उसी के अनुसार विमल ने यह मन्दिर बनवाया था। तथा राव तेजसिंह के राज्य समय वि० स० १३७८ (ई० स० १३२१) मे लल्ल और वीजड नाम के साहूकारो ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। जिस समय यह लेख लिखा गया था, उस समय लुभा का देहान्त हो चुका था। ऐसा इसी लेख से ज्ञात होता है।

श्री रत्नमन्दिरगणि की बनाई हुई उपदेशतरङ्गिणी में; जो विक्रम संवत् की सोलवीं शताब्दी में बनाई गई थी; इस मन्दिर के बनवाने की कथा इस प्रकार लिखी है:—

गुजरात के राजा भीम को दुश्मनों द्वारा भड़काया हुआ देखकर उसका सेनापति विमल वहाँ से पाँचसौ सवार और पाँच करोड़ सोने से लदे ऊँट लेकर चंद्रावती में चला गया। उसके इस प्रकार आगमन से चंद्रावती राजा धारावर्ष भयभीत होकर सिन्धु देश की तरफ भाग गया। विमल ने उसके स्थान पर पहुँच उसे अपना निवास नियत किया। तथा वहाँ के मांडलिकों (जागीरदारों) ने विमल को अपना राजा बना लिया। तदनन्तर उसने अपनी सेना द्वारा सांभर, मेवाड़, जालोर, आदि नगरों के सौ राजाओं को जीता।

एक समय सोते हुए १२ सुलतानों को उसने जा घेरा। तथा उनको भी अपने आधीन करलिया। उसके प्रबल प्रताप से डरकर स्वयं भीमने अपने मंत्री द्वारा विमल के पास एक करोड़ रुपये नज़र के तौर पर भेजे। परन्तु विमल ने अपने स्वामी और जन्मभूमि का विचार करके उस मंत्री को बहुत कुछ आदर सत्कार सहित पीछा भेज दिया। एक दिन श्री धर्मघोषसूरि के मुख से विमल ने एक शास्त्र वाक्य को सुना, इससे अपनी संग्राम में की हुई हिंसा पर उसको बड़ा दुःख हुआ। तथा श्रीधर्मघोषसूरि से उसने इसके प्रायश्चित्त की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। उक्त सूरि ने उसे देवमन्दिर बनवाने आदि पुण्य कर्म करने की आज्ञा

दी। उसके वाद विमल ने अम्वादेवी की आराधना की; जिस से प्रसन्न होकर अम्वा ने वर मागने की आज्ञा दी। विमल ने देव-मन्दिर के वनने और पुत्र होने की प्रार्थना की। इस पर अंवा ने कहा कि दोनो मे से एक के लिये कह, क्योंकि दो वाते नहीं हो सकती हैं। तव विमल ने अपनी स्त्री से पूछा। उसने उत्तर दिया कि, पुत्र प्राप्ति तो पशु, पक्षि-योनि मे भी हो सकती है। इस लिये मन्दिर का वर मांगो। विमल ने भी ऐसा ही किया। अम्विका वर देकर आवू पर चली गई। विमल ने उसके कुंकुम से शोभित पृथ्वी पर उल्लिखित पदचिन्ह को खोदा, वहाँ से उसको ७२ लाख का द्रव्य मिला। इसको प्राप्त कर विमल ने मन्दिर वनवाना प्रारम्भ करदिया। परन्तु यह मन्दिर दिन मे वनाया जाता था और रात को स्वयं ही गिर पड़ता था। इसी तरह ६ महिने वीत गए। तव विमल ने देवी का आह्वाहन किया। देवी ने प्रकट होकर कहा कि, यह काम इस पृथ्वी के मालिक वालीनाह नाग का है। अत तू तीन दिन तक उपवास करके उसीकी पूजा कर और पवित्र वलि दे। परन्तु यदि वह मद्य मास मागे तो खड्ग निकालकर उस-को धमका देना। यह कह कर देवी चली गई। विमल ने वैसा ही किया। तथा खड्ग में अम्विका को देखकर वालीनाह भाग गया और उस दिन से वहाँ पर केवल क्षेत्रपाल की तरह रहने लगा। मन्दिर निर्विघ्न समाप्त हुआ। संवत् १०८८ मे आदिनाथ की मूर्ति स्थापन की गई। तथा वहीं पर अम्विका की कृपा सूचित करने के लिये खञ्चर क्षेत्रपाल सहित एक अम्विका की मूर्ति भी स्थापन

की। उस मन्दिर के कार्य की समाप्ति पर विमल ने इतना दान किया कि, जैन लोग अब तक 'विमलश्री सुप्रभातं' कहकर आशीर्वाद देते हैं।

इस कथा में कहाँ तक ऐतिहासिक सत्यता है इसको पाठक स्वयं विचार सकते हैं। इसपर विवाद करना व्यर्थ है।

इस मन्दिर में एक लेख वि० सं० १३५० (ई० स० १२९४) माघ सुदि १ का सोलंकी राजा सारंगदेव के समय का भी लगा हुआ है।

इस मन्दिर की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इससे इस समय की शिल्प-निपुणता का भी बोध होता है।

इतिहास लेखक कर्नल टॉड साहब ने इस मन्दिर के विषय में लिखा है:—

"हिन्दुस्तान भर में यह मन्दिर सर्वोत्तम है। सिवाय ताजमहल के कोई भी स्थान इसकी बराबरी नहीं कर सकता।"

इस मन्दिर के पास ही दूसरा लूणवसही नामक नेमिनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसको वस्तुपाल, तेजपाल का मन्दिर कहते हैं। यह मन्दिर वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल का बनवाया हुआ है। जिस प्रकार ताजमहल अपनी स्त्री की यादगार में शाहजहाँ बादशाह ने बनवाया था, उसी प्रकार तेजपाल ने अपनी स्त्री अनुपमदेवी और पुत्र लूणसिंह का नाम चिरस्थायी करने और उनके कल्याण के निमित्त यह नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया था। इसी मन्दिर में वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) फाल्गुण बदि ३

रविवार का एक लेख मिला है। उसमें लिखा है:—

वस्तुपाल और उसका छोटा भाई तेजपाल ये दोनो पोरवाड़ महाराज अश्वराज के पुत्र थे। यह अश्वराज अनहिलवाड़े का रहने वाला था। वस्तुपाल और तेजपाल ये दोनों भाई गुजरात के सोलकी राजा वीरधवल के मन्त्री थे। तेजपालने कृष्णराज के पिता सोमसिंहदेव के राज्य समय अपने पुत्र और स्त्री के कल्याणार्थ आबू पर यह नेमिनाथ का मन्दिर वनवाया। आगे चलकर इस लेख में मन्दिर का वर्णन किया गया है । इस शिला-लेख के रचयिता का नाम सोमेश्वरदेव लिखा है। यह सोमेश्वर सोलङ्की वीरधवल का पुरोहित और कीर्तिकौमुदी तथा सुरथोत्सवका कर्ता था। इसी लेखसे यह भी प्रगट होता है कि इस मन्दिर की प्रतिष्ठा नागेन्द्र गच्छ के विजयसेनसूरि ने की थी।

इस मन्दिर की वनावट भी विमलशाह के मन्दिर की सी है। इसमे मुख्य मन्दिर (गभारा) के सामने गुवजदार सभा मण्डप है। और उसके इर्दगिर्द छोटे छोटे जिनालय वने हैं। तथा इसके पीछे हस्तिशाला है। इसके मुख्य मन्दिर में नेमिनाथ की मूर्ति है। तथा पास के जिनालयों में भी अनेक मूर्तियाँ हैं। इनके द्वारों पर भी अलग२ लेख खुदे हैं। इनमें तेजपाल के ५२ सम्वधियो के नाम हैं। इससे प्रगट होता है कि प्रत्येक जिनालय किसी न किसी सम्वन्धि के नाम पर वनवाया गया था। मुख्य मन्दिर के दरवाजे के दोनों पार्श्वों में वड़े ही सुन्दर दो ताक हैं। इनको लोग 'देराणी जेठाणी के आले' कहते हैं। कहा जाता है कि इसमें का एक ताक तेजपाल

की स्त्री ने और दूसरा वस्तुपाल की स्त्री ने स्वयं अपने ख़र्च से बनवाया था। शान्तिविजयजी की 'जैनतीर्थ गाइड' नामक पुस्तक में भी ऐसा ही लिखा है। परन्तु यह बात विश्वास योग्य नहीं हो सकती; क्योंकि उन दोनों ताकों पर एक ही प्रकार के लेख हैं। उनका आशय इस प्रकार है :—

वि० सं० १२९० वैशाख वदि १४ वृहस्पतिवार के दिन अपनी दूसरी स्त्री सुहडादेवी के कल्याणार्थ ये ताक और अजितनाथ का चित्र तेजपाल ने बनवाया।

यद्यपि इस समय गुजरात में पोरवाड और मोड जाति के महाजनों के बीच विवाह सम्बन्ध नहीं होता है। तथापि यह संबंध बारहवीं शताब्दी में होता था। ऐसा इस लेख से प्रकट होता है।

इस मन्दिर की हस्तिशाला में संगमरमर की १० हथनियाँ एक पंक्ति में खड़ी हैं। इन पर चण्डप, चण्डप्रसाद, सोमसिंह, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह और लूणसिंह (लावण्यसिंह) की मूर्तियें बैठाई गईं थीं। परन्तु इस समय उनमें से एक भी विद्यमान नहीं हैं। इन हथनियों के पीछे की तरफ़ पूर्व की दीवार में १० ताक हैं। इनमें भी इन्हीं दस पुरुषों की सस्त्रीक मूर्तियें बनी हुई हैं। इनके हाथों में पुष्पमालाएँ हैं। तथा वस्तुपाल के मस्तक पर छत्र भी बना हुआ है। प्रत्येक स्त्री पुरुषों की मूर्ति के नीचे उनका नाम खुदा हुआ है।

इनका संक्षिप्त वर्णन पूर्वोक्त वि० सं० १२८७ के लेख में भी किया गया है।

प्रथम ताक मे चार मूर्तियें हैं। पहली आचार्य उदयप्रभ की, दूसरी आचार्य विजयसेन की तथा तीसरी और चौथी चण्डप और उसकी स्त्री चाँपलादेवी की है।

इस मन्दिर के वनाने वाले इञ्जीनियर का नाम शोभनदेव था। इस तरह अपने सारे कुटुम्व का स्मारक चिन्ह वनाकर उनके नाम को अमर करने वाला तेजपाल के सिवाय शायद ही कोई दूसरा पुरुष हुआ हो।

इसी मन्दिर मे वि० सं० १२८७ फाल्गुण वदि ३ रविवार का एक दूसरा शिलालेख लगा है। इसमे यहाँ के वार्पिकोत्सव आदि की व्यवस्था का वर्णन है। तथा साथ ही उसमे सहायता देनेवाले महाजनो के नाम और गॉव भी लिखे हैं।

पूर्वोक्त उपदेशतरङ्गिणी मे इस मन्दिर के रचना का वृतान्त इस तरह लिखा है –

एक समय वहुत से साथियों सहित वस्तुपाल और तेजपाल धवलकक (धौलका) गॉव से हडाला मे आए। वहाँ पहुँचने पर जव उनको विदित हुआ कि आगे रास्ते मे लुटेरों का भय है, तव उन्होने अपने विश्वासी पुरुषों सहित आपस मे विचार कर रात्रि के समय अपने धन को तावे के कलसों में भर दिया और उन कलसों को पृथ्वी में गाड़ने के लिये तालाव के निकट एक गेहूं के खेत मे ले आए तथा वहाँ पहुँचकर एक खेजड़ी के वृक्ष के नीचे खोदना आरम्भ किया। वहॉ पर वस्तुपाल के भाग्य से वड़ा भारी खजाना निकला। इसको देखकर सारे पुरुष विस्मित हो गये।

इसके अनन्तर उन्होंने अपना धन भी उसी में डालकर उसे छिपा दिया और वहाँ से चले आए तथा विचारने लगे कि इतने द्रव्य का क्या किया जाय ? उनको चिन्तित देखकर अनुपमदेवी ने उनसे इसका कारण पूछा। इस पर एकान्त में उससे उन्होंने सारा वृत्तान्त कहा। यह सुन कर उसने उत्तर दिया कि, इस तरह धन को छिपाना उचित नहीं है। इसको इस तरह से छिपाना चाहिये, जिससे प्रत्येक पुरुष इसे देखकर भी ले जा न सके। अर्थात् इस द्रव्य से मन्दिर आदि बनवा देने चाहियें। इस बात को उन्होंने भी पसंद करलिया। तथा वहाँ से द्रव्य लाकर मन्दिर आदिक बनवाए।

आगे चलकर उसी पुस्तक में लिखा है कि, प्रथम धौलका नामक ग्राम में रहनेवाले लूणिग, मालदेव, वस्तुपाल और तेजपाल बहुत निर्धन थे। अपनी निर्धनता के कारण मरते समय अपने कुटुंब से द्रव्यादिक दान करने की प्रतिज्ञा न करवाकर लूणिग ने केवल तीन लाख प्रणाम् (नवकार) करने की प्रतिज्ञा करवाई (अर्थात् तीन लाख नवकारों के स्मरण करने से जो पुण्य होता है वह मांगा) अपने भाई की ऐसी अवस्था देखकर वस्तुपाल ने और भी कुछ इच्छा प्रकट करने की प्रार्थना की। यह सुन कर लूणिग ने कहा कि, आबू के विमलवसही नाम के मन्दिर में देवकुलिका (देवालय) बनवाने की मेरी इच्छा थी; सो यदि हो सके तो इसे पूरी करना।

जब वस्तुपाल और तेजपाल को द्रव्य लाभ हुआ; तब उन्होंने

चन्द्रावती के राजा धारावर्ष से मन्दिर वनवाने के लिये जमीन खरीदी। उसकी कीमत के लिये उतनी ही पृथ्वी पर द्रम्म विछा कर राजा को दिये। तथा उस खरीदी हुई पृथ्वी पर सूत्रधार शोभन द्वारा यह मन्दिर वनवाया। परन्तु इसकी सामग्री एकत्रित करने के लिए इसके पहले उन्हें मार्ग मे स्थान स्थान पर जलाशयो और भोजनालयों का प्रवन्ध करवाना पड़ा। १५ सौ कारीगर इस मन्दिर में कार्य करते थे। इस तरह यह मन्दिर तीन वर्ष मे समाप्त हुआ। इसके लिये पत्थर इकट्ठे करने मे पत्थरों ही के समान रुपये खर्च करने पड़े। संवत् १२८३ मे यह कार्य प्रारम्भ हुआ और संवत् १२९२ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। मन्दिर में १२ करोड़ ५३ लाख रुपये लगे। इसका नाम लूणिगवसही रक्खा। लोग इसको तेजपाल-वसही कहने लगे। इसकी प्रतिष्ठा के समय ८४ राणक, १२ मंडलीक, ४ महीधर और ८४ जाति के महाराज एकत्रित हुए थे। इन सव के सामने जालोर के राजा चौहान श्री उदयसिंह के प्रधान यशोवीर से वस्तुपाल ने इस मन्दिर की वनावट के गुण और दोष पूछे। उस समय उसने सूत्रधार शोभन से कहना प्रारम्भ किया कि, "हे शोभन! तेरी माँ के कीर्तिस्तम्भ पर तेरी माता की मूर्ति का हाथ ऊपरको होना उचित नहीं है, क्योंकि उसका पुत्र तू केवल कारीगर ही है, जो कि स्वभावत ही लालची होते हैं। परंतु दानी वस्तुपाल की माता का हाथ ऊपर होना ही उचित है, क्योंकि उसने अपने गर्भ से ऐसे उदार पुरुष को जन्म दिया है। अन्दर के मन्दिर के दरवाजे पर के तोरण में दो सिंह लगाए हैं। इस से

इस में विशेष पूजा आदि का अभाव रहेगा। पूर्वजों की मूर्तियों को जिन के पृष्ट भाग में लगाने से इनके वंशजों का ऐश्वर्य नष्ट होगा। ऊपर आकाश की तरफ़ मुनि की मूर्ति लगाने से यहाँ पर दर्शन और पूजन के लिये बहुत कम पुरुष आया करेंगे। जिन-मन्दिर के रङ्गमण्डप में विलास करती हुई पुतलियों का बताना अनुचित है। इसकी सीढ़ियाँ छोटी होने से इस वंश में सन्तान का अभाव होना प्रकट होता है। बारह हाथ लंबी छीनों के टूटने से मन्दिर का नाश हो सकता है। बाहर के दरवाज़े पर क़ीमती स्तंभ लगवाए गए हैं। उनके लिए दुष्ट लोग मन्दिर तोड़ने की कोशिश करेंगे। मेघमण्डप में की प्रतिमा बहुत ऊँची होने से अपूज्य रहेगी। मन्दिर से मठ ऊँचे हैं। हस्तिशाला पृष्ट में होने से इस मन्दिर के दरवाजे पर हाथी नहीं रहेंगे, इत्यादि अनेक दोष, हे शोभन! इसकी बनावट में रह गए हैं।"

यह सुनकर वस्तुपाल ने होनहार इसी तरह समझा।

पण्डित सोमधर्मगणि की बनाई उपदेशसप्ततिका में, जिनप्रभसूरि रचित तीर्थकल्प में और पण्डित श्रीलावण्यसमय विरचित विमलरास में भी इस मन्दिर का वृत्तान्त रत्नमन्दिरगणी की बनाई उपदेशतरङ्गिणी से मिलता हुआ ही है; जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। अतः प्रत्येक के अलग अलग वर्णन करने का विशेष प्रयोजन नहीं, परन्तु पाठकों के विचारार्थ एक विषय यहाँ पर लिख देना आवश्यक है। वह यह है:—

हम यथास्थान लिख चुके हैं कि, वि० सं० १२८७ के लेख में

लिखा है, अपनी स्त्री अनुपमदेवी और पुत्र लावण्यसिंह के कल्याणार्थ तेजपाल ने यह नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया था। परन्तु उपर्युक्त चारों पुस्तकों में अपने पुत्र लावण्यसिंह के बदले अपने भाई लूणिग के लिये तेजपाल ने यह मन्दिर बनवाया, ऐसा लिखा है। हमारी समझ में लूणिग और लूणसिंह (लावण्यसिंह) नाम बहुत कुछ मिलते हुए होने से यह गड़बड़ हुई है। तथा तेजपाल का खुद अपने सामने बनवाया हुआ होनेसे प्रशस्ति का लेख ही अधिक विश्वास योग्य है।

जिनप्रभसूरि के तीर्थकल्प में इसका रचनाकाल वि०सं०१२८८ लिखा है।

इस मन्दिर का जीर्णोद्धार पेथड़ नाम के साहूकार ने करवाया था, क्योंकि, इस मन्दिर को भी मुसलमानों ने तोड़ डाला था। इसके जीर्णोद्धार का लेख स्तम्भ पर खुदा हुआ है। परन्तु इस में संवत् नहीं है। जिनप्रभसूरि ने अपने तीर्थकल्प में इसके जीर्णोद्धार का समय श० सं० १२४३ (वि० स० १३७८) लिखा है। यह बात हम आदिनाथ के मन्दिर के जीर्णोद्धार के वर्णन में लिख चुके हैं।

यद्यपि यह पता नहीं चलता कि इन मन्दिरों को मुसलमानों ने किस समय तोड़ा। तथापि श्रीयुत पण्डित गौरीशंकरजी का अनुमान है कि 'तीर्थकल्प वि० स० १३४९ (ई० स० १२९२) और वि० सं० १३८४ (ई० स० १३२७) के बीच बना था। इसमें इन मन्दिरों का मुसलमानों द्वारा तोड़ा जाना लिखा है। अतएव वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) के आसपास जिस समय

अलाउद्दीन खिलजी की फौज ने जालोर के चौहान राजा कान्हड़-देव पर चढ़ाई की; शायद उसी समय ये मन्दिर तोड़े गये हों।

जीर्णोद्धार में बना हुआ काम सुन्दरता में पुराने कार्य की बराबरी नहीं कर सकता है। पुराने समय का कार्य बहुत ही सुन्दर है।

अब हम इसकी प्रशंसा में अपनी तरफ से कुछ न कहकर हिन्दुस्तानियों के पूर्व पुरुषों को असभ्य समझनेवाली सभ्याभिमानी यूरोपियन जाति के कुछ सहृदय विद्वानों की सम्मति उद्धृत करते हैं।

भारतीय शिल्प के भिज्ञ लेखक फर्गुसन साहब ने अपनी 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स ऑफ एनशियेन्ट आर्किटेक्चर इन हिन्दुस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है:—

"इस संगमरमर के बने हुए मन्दिर में अति कठोर परिश्रम सहनशील हिन्दुओं की टांकी से फीते के समान बारीकी से ऐसी मनोहर आकृतियें बनाई गई हैं; जिनका नक़शा काग़ज़ पर बनाने में बहुत परिश्रम और समय नष्ट करने पर भी मैं समर्थ नहीं हो सकता।"

कर्नल टॉड ने यहाँ के गुम्बज की कारीगरी के लिये लिखा है:—

"इसका चित्र तैयार करने में क़लम थक जाती है। अत्यन्त परिश्रमी चित्रकार की क़लम को भी इसके चित्र में बहुत श्रम पड़ेगा।"

रासमाला के लेखक प्रसिद्ध ऐतिहासिक फार्बस साहब ने इन दोनों आदिनाथ और नेमिनाथ के मन्दिरों के विषय में लिखा है:—

"इस मन्दिरों की खुदाई में केवल स्वाभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र ही नहीं बनाए गए हैं, किन्तु सांसारिक जीवन के दृश्य

आबू के देलवाड़ा मन्दिर का एक दृश्य

"इसका नक्शा कागज पर भी बनाने मे बहुत परिश्रम और समय नष्ट करने पर भी मैं समर्थ नहीं हो सकता।

—फर्गुसन (साहब)

के व्यापार और नौका सम्बन्धी चित्र तथा संग्राम सम्बंधी चित्र भी अङ्कित किये गये हैं इसके अलावा इसकी छतों मे जैनधर्म से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओ के चित्र भी खोदे गए हैं।"

कर्नल टॉड को, जिस समय वे विलायत को लौट गए थे, मिसेज विलिय हण्टरवेर ने तेजपाल के मन्दिर के गुम्बज का एक चित्र बनाकर दिया था। इससे टॉड साहब उन मेमसाहब के इतने कृतज्ञ हुए कि, आपने अपनी बनाई हुई 'ट्रैवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया' नाम की पुस्तक उन्हें अर्पण (Dedicate) करदी।

ये दोनों मन्दिर बहुत ही सुंदर और एक दूसरे की बराबरी के हैं। इनसे उस समय के इञ्जीनियरों की शिल्प-निपुणता, तथा उस समय के लोगों की सभ्यता, धर्म-निष्ठता, धनाढ्यता और उदारता साफ झलकती है।

तेजपाल के मन्दिर से थोडी ही दूर पर भीमासाह का बनवाया हुआ मन्दिर है। इसको अब लोग भैंसासाह कहते है। इसमें १०८ मन वजन पीतल की आदिनाथ की मूर्ति है। (इसको सर्व धातु की मूर्ति भी कहते हैं) यह मूर्ति वि०सं०१५२५ (ई०स०१४६९) फाल्गुन सुदि ८ को गूर्जर श्रीमालजाति के मन्त्री सुन्दर और गंदा ने स्थापित की थी। ये दोनों मन्त्री मण्डन के पुत्र थे।

इन मन्दिरों के सिवाय वहाँ पर श्वेताम्बर जैनो के दो मन्दिर और भी हैं। एक शान्तिनाथ का और दूसरा चौमुखजी का। यहाँ पर एक दिगम्बर जैन-मन्दिर भी है।

राजस्थान जैन जन-संख्या

(सन् १९३१)

क्रम	राज्य	संख्या
१.	जोधपुर (मारवाड़)	११३,६६९
२.	बीकानेर (जाँगल)	२९७७३
३.	जैसलमेर (माड)	९१७
४.	जयपुर (ढूंढाड़)	२९४९२
५.	उदयपुर (मेवाड़)	६६००१
६.	कोटा (हाड़ोती)	५१९४
७.	अलवर	३९०९
८.	टोंक	६९६९
९.	बून्दी (हाड़ोती)	४०१९
१०.	भरतपुर	२३९०
११.	सिरोही	१५५०९
१२.	बांसवाड़ा	४५९७
१३.	डूंगरपुर	५९०१
१४.	करौली	४४९
१५.	धौलपुर	१७९९
१६.	प्रतापगढ़	४४४५
१७.	किशनगढ़	२२३१
१८.	झालवाड़	२६३०
१९.	शाहपुरा	१४१९
२०.	कुशलगढ़	५९३
२१.	लावा	१३५
२२.	आबू	२१
२३.	अजमेर (मेरवाड़ा)	१९४९७
	कुल संख्या	३२०५५९

सिंहावलोकन

नेक और बद में है क्या फ़र्क़ वताने वाले,
जो हैं गुमराह उन्हें राह पै लाने वाले;
रहमोउल्फ़त का सवक़ सब को सिखाने वाले,
हैं ज़माने में हमीं धाक विठाने वाले;
बेख़बर जो थे उन्हें, हमने ख़बरदार किया।
ख्वावेग़फ़लत से हरइक शख़्श को हुश्यार किया।।

—"दास"

संक्षेप में राजपूताने के जैन-वीरों का यही परिचय है। नहीं मालूम ऐसे-ऐसे कितने नर-रत्न संसार-सागर के अन्तस्थल में मूल्ययान मोती की भांति छिपे हुये पड़े हैं, बक़ौल "इक़बाल" साहब.—

अपने सहरा में अभी आहू बहुत पोशीदा हैं।
बिजलियां बरसे हुये बादल में भी ख्वाबीदा हैं॥

इन्हीं नर-रत्नों में से कुछ को इतिहास के उदर-गह्वर से निकाल कर प्रकाश में लाने का यह असफल प्रयत्न किया है। इससे अधिक साधनाभाव, समयाभाव आदि के कारण नहीं लिखा जा सका है। यद्यपि समस्त राजपूताना जैन-वीरों की क्रीड़ा स्थली रहा है, वहाँ का चप्पा-चप्पा उनके पवित्र बलिदान से दैदीप्यमान है, किन्तु प्रस्तुत पृष्ठों में इनीगिनी रियासतों के कुछेक वीरों का परिचयमात्र ही दिया जा सका है। अस्तु जितना भी संकलन किया जा सका है।, वह भला है या बुरा, शुष्क है या नीरस, जैसा भी है पाठकों के करकमलों में है।

एक बार राजपूताने के एक प्रसिद्ध नेताने वहां के वर्तमान राजाओं की शासन-प्रणाली और स्वच्छन्द वृत्ति [illegible]

हुऐ दुख भरे शब्दों में कहा था कि "राजपूताने की रियासतों के निर्माण में जैनियों का पूर्ण सहयोग रहा है, यदि इनका इस में हाथ न रहा होता, तो इन रियास्तों का आज से कई सौ वर्ष पहिले अस्तित्व ही मिट गया होता। उस वक्त इन रियासतों के अस्तित्व बनाये रखने में उन जैनों के भाव भले ही श्रेष्ट रहे हों, पर आज तो हमें उनकी इस करनी के कड़वे फल चखने पड़ रहे हैं।" उस समय मैंने उनके इन शब्दों को अत्युक्ति समझ कर उपहास में उड़ा दिया था, किन्तु अब मैं उक्त शब्दों की सार्थकता समझ पाया हूँ।

जो महानुभाव राजपूताने में रहते हैं अथवा जिन्होंने राजपूताने के इतिहास का अध्ययन किया है, वह भली भान्ति जानते हैं, कि राजपूतानान्तरगत प्रायः सभी रियासतों के जैन-धर्मावलम्बी सदियों पुश्तानपुश्त मंत्री, सेनापति, कोपाध्यक्ष आदि होते रहे हैं।

राज्य की बागडोर, सैन्य-संचालन और राजकोष हस्तगत करने से पूर्व किसी जाति को, उस देश के प्रति कितना अधिक अनुराग, बलिदान, आत्म-त्याग करना पड़ता है और सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुये सब धर्मों और सब क़ौमों के लिये कितना उदार-हृदय होना पड़ता है। यह विज्ञ पाठकों से ओझल नहीं। फिर सदियों जिस जाति के अधिकार में यह महत्व पूर्ण गौरवास्पद रहे हों, उस जाति की महानता, वीरता, त्याग, शौर्य आदि का अन्दाज़ा लगाने के लिये, सिवाय अनुमान की तराज़ू पर तोलने के और क्या उपाय हो सकता है? सदियों एक ही

धर्मावलम्बी राज्य के भिन्न धर्मी होते हुये भी सेनापति, मन्त्री आदि होते रहे हो, राजपूताने के सिवाय संसार के किसी भी भाग मे ऐसे उदाहरण शायद ही मिलें ।

प्रस्तुत पुस्तक मे कुछ इने गिने मंत्री और सेनापतियो का उल्लेख किया गया है, पर इनको इस पद तक पहुँचाने मे, इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने में, और इनको विजयमाल पहनानेमे इनके असंख्य अनुयाइयो को अपनी आहुति देनी पड़ी होगी, क्योंकि जब तक कोई जाति अपने को मिटाकर खाक मे मिला नहीं देती, तब तक उसे उपयुक्त फल की प्राप्ति नहीं होती ‡।

उस जमाने में राजपूताने के जैनियो का सैनिक जीवन था। वह अपने देश, धर्म और स्वामी के लिये मिटना अपना धर्म समझते थे। किसी ने भी देश-द्रोह या विश्वासघात किया हो, अथवा युद्ध से पीठ दिखाई हो, सौभाग्य से ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता । जैन-वीरों ने अपनी प्रखर प्रतिभा अद्भुत साहस अलौकिक वीरता से अनेक लोकोपयोगी कार्य किये हैं ।

आज भी राजपूताने के वर्तमान जैनों के पास उनके सुयोग्य पूर्वजो को उनकी सेवाओं के उपलक्ष में मिले हुये राज्य की ओर से पट्टे (सनद, प्रमाण पत्र) आदि मौजूद हैं । जिनसे प्रकट होता

---

‡ जब मिटाकर अपनी हस्ती सुर्मा बन जायेगा तू ।
अहले आलम की निगाहों में समा जायेगा तू ॥

—"दास"

है कि, राजपूताने की रियासतों का अस्तित्व यवन-शासनकाल में उन जैन-वीरों के ही बाहु-बल से ही रह सका था। किन्तु आज उन वीरों के वंशधर उन सनदों को प्रकाशित करना तो दूर किनार, अपने राजाओं के क्षोभ के भय से दिखाना भी नहीं चाहते।

पृ० ११५ पर उल्लिखित राणा राजसिंह की ओर से निकली हुई विज्ञप्ति ‡ को ही लीजिये। यह उनका पुराना हक़ क्यों है? यह हक़ कैसे कब और क्योंकर प्राप्त किया गया? "जैनस्थान के शरणागत होने पर राजद्रोही भी न पकड़ा जाय" इतना अधिकार प्राप्त करलेना क्या साधारण बात है? राजपूताने के इन जैन-वीरों के सिवा और किसी ने भी ऐसी सनद प्राप्त की हो, ऐसा अभी तक देखने में नहीं आया। आज भी इस सभ्यता के युग में बड़े बड़े देशभक्त, राजभक्त, धर्मभक्त मौजूद हैं, पर क्या किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय को यह अधिकार प्राप्त है? राणा राजसिंह ने यह विज्ञप्ति जैनियों के किस बलिदान से प्रभावित होकर लिखी, इसका उत्तर देने में इतिहास के पृष्ठ असमर्थ हैं, केवल अनुमान करने से ही सन्तोष किया जा सकता है!

राणा कुम्भा ने गुजरात और मालवे के दो बादशाहों को पराजित करने की स्मृति में नौ मंजिला जयकीर्ति-स्तम्भ बनवाया था। उसपर उन्हें कितना अभिमान होगा यह लिखने की चीज़ नहीं।

---

‡ राजद्रोही, चोर, लुटेरे भी जैन-उपाश्रय से गिरफ्तार नहीं किये जाय. वध के लिये चला हुआ पशु यदि जैनउपाश्रय के आगे से निकले तो, वह फिर न मारा जाय-यह उनका पुराना हक़ है आदि।

फिर उसी के समान उसी के मुकाबिले में राणा कुम्भा के दि० जैन मंत्री द्वारा जैन-कीर्तिस्तम्भ का बनवाया जाना कुछ अभिप्राय रखता है। भले ही उस अभिप्राय का हमें पता न लगे, पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है, कि राणा कुम्भा ने तो, दो बादशाहों से विजय लाभ प्राप्त करने मे उस अपूर्व कृति का निर्माण कराया, तब उसके मंत्री ने ऐसा कौनसा महान् कार्य किया था, जिसके कारण उसे भी राणा कुम्भा की हिर्स करनी पड़ी! पूर्व काल में तो क्या वर्तमान रियासतों में अब भी कोई कितना सम्पन्न क्यों न हो, राजाओं की नकल नहीं कर सकता। राणा कुम्भा का मंत्री ही राणा जैसी स्मृति बनवाता है और राणा कुछ नहीं कहते हैं, तब उस मंत्री का उस समय कैसा प्रताप होगा और उसके कैसे२ साहस युक्त कार्य होंगे, सहज मे ही अनुमान किया जा सकता है। आज भी वह कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़दुर्ग में जैन-वीरों की पवित्र स्मृति स्वरूप सीना ताने हुये खड़ा है।

मेवाड राज्य में एक समय सूर्यास्त के बाद भोजन करने की आज्ञा नहीं थी। इसका उल्लेख श्री० ओझाजी द्वारा अनुदित टाड् राजस्थान, जागीरी प्रथा पृ० ११ में मिलता है। यदि यह आज्ञा भी ऐतिहासिक मानी जाय, तो इससे भी प्रकट होता है कि उस समय सर्व साधारण में जैनधर्म का काफी प्रचार था। राजा प्रजा दोनों ही जैनधर्म से प्रभावित थे।

इसीप्रकार मेवाड़-राज्य में जब जब किले की नींव रखी जाय, तब तब राज्य की ओर से जैनमन्दिर बनवाये जाने की

रीति† भी जैनियों के प्रभुत्त्व की परिचायक है।

राजाओं द्वारा जैनाचार्यों का सन्मान‡, जीव-हिंसा-निषेध

---

† इस विज्ञप्ति की नक़ल मेहता बलवन्तसिंहजी की कृपा से प्राप्त हुई है, जो ज्यों की त्यों उद्धृत की जाती है :—

स्वस्ति श्री एकलिंगजी परसादातु महाराजाधिराज महाराणाजी श्री कुंभाजी आदेसातु मेदपाट रा उमराव थावो दार कामदार समस्त महाजन पंचा कस्य अप्रं॥ आपणे अठे श्री पूज तपागछ का तो देवेन्द्रसूरिजी का पंथ का तथा पुनम्या गच्छ का हेमाचारजजी को परमोद है। धरम ज्ञान बतायो सो अठे अणां को पंथ को होवेगा जणीने मानागा पूजांगा। परथम (प्रथम) तो आगे सु ही आपणं गढ़ कोट में नींव दे जद पहीला श्री रिषमदेवजी रा देवरा की नींव देवाड़े हे पूजा करे हे अबे अजु ही मानागा। सिसोदा पग को होवेगा ने सरेपान (सुरापान) पीवेगा नहीं और धरम मुरजाद में जीव राखणो या मुरजादा लोपेगा जणी ने म्हासत्रा (महासतियों) की आण है और फेल करेगा जणी ने तलाक हे सं० १४७१ काती सुद ५

‡ इस सम्बन्ध की भी मुझे दो विज्ञप्ति मेहता बलवन्तसिंहजी की कृपा से प्राप्त हुई हैं, एक गुजराती में (जो जैनग्रन्थगाइड में प्रकाशित हुई है) और दूसरी मेवाड़ी भाषा में। यहां गुजराती विज्ञप्ति का हिन्दी अनुवाद दिया जाता है और मेवाड़ी भाषा का रसास्वादन कराने के लिये दूसरी विज्ञप्ति ज्यों की त्यों दे दी गई है।

१—उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी ने आचार्य विजयदेवसूरि के उपदेश से प्रतिवर्ष पोष सुदी १० को वरकाणा (गोड़वाड़) तीर्थ पर होने वाले मेले में आगन्तुक यात्रियों पर से टैक्स लेना रोक दिया था और सदैव के लिये इस आज्ञा को एक शिला पर खुदवाकर मन्दिर के दरवाज़े के आगे लगवा दिया था, जो कि अभी तक मौजूद है। राणा जगतसिंह के प्रधान झाला कल्याणसिंह के

विज्ञप्ति, उपाश्रयो और जैन मन्दिरो को अब तक रियासतों द्वारा सहायता मिलती रहना, उस अतीत काल मे की गई जैनियो की सुकृतियो का द्योतक है।

निमत्रण पर उक्त आचार्य ने उदयपुर में चातुर्मास किया। चतुर्मास समाप्त होने के वक्त एक रात दलबादल महल में विश्राम किया, तब महराणा जगतसिंह जी नमस्कार करने को गये और आचार्य के उपदेश से निम्नलिखित चार बात स्वीकार कीं।

(क) उदयपुर के पीछोला सरोवर और उदयसागर में मछलियों को कोइ न पकडे।

(ख) राज्यभिषेक वाले रोज़ जीव-हिंसा बन्द

(ग) जन्म मास और भाद्रपद में जीव हिंसा बन्द।

(घ) मचीदंदुर्ग पर राणा कुम्भा द्वारा बनवाये गये जैन चैत्यालय का पुनरुद्धार।

इन्हीं विजयदेवसूरि को जहाँगीर बादशाह ने "महातपा" पदवी प्रदान की थी।

२—दूसरी मेवाटी विज्ञप्ति निम्न प्रकार है —

स्वस्त श्री मगसुदा नग्र म्हा सुभ सुथानै सरब औपमालायक भटारक, महाराज श्री हीरबजेसूरजी चरण कुमला अण स्वात श्री बजे कटक चावडरा डेरा सुथानै महाराजाधिराज श्री राणा प्रतापसिंघजी ली पगे लागणो बचसी म्हारा समाचार भला है आपरा सदा भला छाइजे आप बडा है पूजनीक है सदा करपा राखे जीसु ससट (श्रेष्ठ) रखावेगा अप्र ? आपरो पत्र अणादना म्हे आया नहा सो करपा कर लखावेगा। श्री बडा हजूर री वगत पदार वो हुवो जीमें अठासु पाछा पदारता पातसा अकब जी ने जेनाबाद म्हे ग्रान रा प्रतिबोद दीदो जीरो चमत्कार मोटो बताया जीव हसा (हिंसा) छरकली (चिड़िया) तथा नाम पेर

जिन महानुभावों ने राजपूताने के इतिहास का सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया है, वे जानते हैं कि राजपूताने के प्रत्येक गौरव युक्त कार्य में जैनों का हाथ रहा है। जैनेतर क्षत्रियों और जैन-वीरों का चान्द-चान्दनी जैसा सम्बन्ध रहा है। जब जैन धर्मनिष्ठ थे, उनकी भुजाओं में बल, व्यवहार में नम्रता, आँखों में ओज, गले में मधुरता, चेहरे पर कान्ति, शरीर सुडोल, हृदय में साहस

(पक्षी) वेती सो माफ कराई जीरो मोटो उपगार कीदो सो श्री जेनरा धर्म में आप असाहीज अदोतकारी अवार की से (समय) देखता आपजु फेर वे न्हीं आवी व, हीद सथान अग्रवेद गुजरात लुदा चारू दसा म्हे धरमरो वडो अदोतकार दखाणो, जठा पछे आपरो पदारणो हुवो न्ही सो कारग कही वेगा पदारसी आगेसु पटा प्रवाना कारण रा द तर माफक आवे है जी माफक तोल मुरजाद सामो आवो सावत रेगा श्री वड़ा हजूर री वषत आवी मुरजाद सामो आवारी कसर पड़ी सुणी सो काम कारण लेवे भूल रही वेगा जी रो अदेसो न्हीं जाणेगा, आगे सु श्री हेमा आचारजी ने श्री राज म्हे मान्या हे जीरो पटो कर देवागो जी माफक अ रो पगरा भटारष गादी प्र आवेगा तो पटा माफक मान्या जावेगा श्री हेमाचारजी पेला श्री वड़गछरा भटारषजी ने वड़ा कारग सुं श्री राज म्हे मान्या जी माफक आपने आपरा पगरा गादी प्र पाटवी तपगछरा ने मान्या जावेगा री सुवाये देस म्हे आवे गछरो देवरो त्या उपासरो वेगा जीरो मुरजाद श्री राजसु वा दुजा गछरा भटारष आवेगा सो राषेगा श्री समरण ध्यान देवजात्रा करे जठे आद करावसी भुलसी नहीं ने वेगा पदारसीः प्रवानगी पंचोली गोरो समत् १६३५ रा वर्ष आसोज सुद ५ गुरुवार।

और दुखी निराश्रितों के लिये पहलू मे दर्द, कलेजे मे तड़प थी, तब उनका राजपूताने में क्या जहाँ भी वह रहते थे, उनका अलौकिक चमत्कार था, उनके पुण्यशील परमाणुओं का राजा-प्रजा सभी पर असर पड़ता था। उन्होंने अपने अलौकिक चमत्कार से कितने ही चिरस्मरणीय कार्य सम्पन्न किये, उनकी सदाचार वृत्ति और वीर-प्रकृति से प्रभावित होकर कितने ही राजा और सरदार उनके धर्म के अनुयायी बने। यही कारण है कि उस काल में करोड़ो राजपूत जैनधर्म में दीक्षित होगये, जो कि अब ओसवाल कहलाते हैं।

जहाँ राजपूताने के जैन-वीरों ने युद्ध और राजनीति मे साहस एवं बुद्धि का परिचय दिया है, वहाँ आबू आदि जैसे दुर्गम स्थानो पर मन्दरादि बनवाकर उन्होंने शिल्प-चातुर्यता का भी अधिकार प्राप्त किया है। इस मेशीनरीयुग में भी बडेर इंजीनियर उन भव्य इमारतों के बनवाने में असमर्थ हैं, तब उन्होंने उस साधन हीन युग मे उन मन्दिरों का निर्माण करके सफलता प्राप्त की है।

इसी प्रकार जब जान, माल, और आबरू की बाजी लगी हुई थी। उस युद्ध काल के दूषित और दुर्गन्धमय वातावरण मे स्वच्छन्द और स्वतन्त्र स्वास लेना दूभर हो रहा था। नित्यप्रति धार्मिक स्थान धराशायी और पुस्तकालय भस्मीभूत किये जाते थे, तब ऐसी विकट परिस्थिती मे रहते हुये भी उन जैनों ने अनेक ग्रन्थो की रचना की है और प्राचीन पुरातन ग्रन्थों को सीने से लगा कर नागौर जैसलमेर आदि स्थानों पर सुरक्षित रक्खा है।
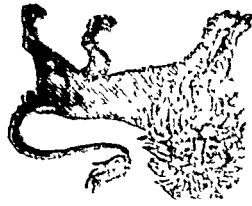
प्रस्तुत पुस्तक में जैन-वीरांगनाओं का उल्लेख साधना-भाव के कारण नहीं किया जा सका है किन्तु इस से यह न समझ लेना चाहिये कि वह विलासिता की मूर्ति बनी रहती थीं। नहीं, वह भी वीर-दुहिता थीं। वे ही उक्त वीरों की जननी-भगनी और पत्नी थीं। जब पति, भाई और पुत्र धर्म के लिये युद्ध में जूझ मरते थे, तब जैन महिलाएँ भी अपने कर्तव्य-पालन में पुरुषों से पीछे नहीं रहती थीं। आज भी राजपूताने में विशेष कर मारवाड़ में मुहल्लों मुहल्लों में जैन सतियों के करकमलों के पवित्र चिन्ह विद्यमान हैं।

यह माना कि आज हमारे उक्त पूर्वज इस भौतिक शरीर में नहीं हैं, तौभी उनकी सुकीर्ति संसार में अभीतक स्थायी बनी हुई है। ऐसे ही स्वर्गीय वीरों को सम्बोधन करके किसी सहृदय कवि ने क्या खूब लिखा है :—

तुम्हें कहता है मुर्दा कौन, तुम ज़िन्दों के ज़िन्दा हो।
तुम्हारी नेकियाँ बाक़ी, तुम्हारी खूबियाँ बाक़ी ॥

सहायक ग्रन्थ सूची

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में निम्न लिखित लेखकों, सम्पादकों और कवियों की कृतियों से विशेषतया सहायता मिली है, और कई स्थलों पर उनके अवतरण और मत उद्धृत किये गये हैं, अतएव मैं उनकी मूल्यवान रचनाओं का हृदय से आभारी हूँ।

—गोयलीय

रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत—
राजपूताने का इतिहास भाग चार

पं० बलदेवप्रसाद द्वारा अनुवादित—
टॉड राजस्थान प्रथम भाग सन् १९२५ द्वितीय भाग १९०९.

मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित—प्राचीन जैन-लेख-संग्रह द्वि० भाग

कुँवर जगदीशसिंह गहलोत कृत—मारवाड़ राज्य का इतिहास

ज्ञान मण्डल काशी से प्रकाशित—भारतवर्ष का इतिहास

ब्र० शीतलप्रसाद द्वारा सम्पादित—राजपूताने के प्राचीन जैन-स्मारक

प्रो० बनारसीदास एम. ए. कृत और पं० देवीसहाय द्वारा अनुवादित—जैन इतिहास सीरीज प्र० भा०

बा० उमरावसिंह टॉक कृत—Some Distinguished Jains और जैन हितैषी में प्रकाशित लेख

नागरी प्रचारणी सभा से प्रकाशित—
मुहणोत नैणसी की ख्यात प्रथम भाग

मुँशी देवीप्रसाद मुन्सिफ कृत—राज रसनामृत प्रथम भाग

मेहता कृष्णसिंह कृत—रा० ब० मेहता विजयसिंह जीवन-चरित्र
बम्बई से प्रकाशित—दि० जैन डायरेक्टरी
मुनि शान्तिविजय कृत—श्वेताम्बर जैन-तीर्थ-गाइड
यति श्रीपाल कृत—जैनसम्प्रदायशिक्षा
महामहोपाध्याय पं० रामकर्ण और साहित्याचार्य प्रो० विश्वेश्वरनाथ रेउ, द्वारा लिखित—जैनसाहित्यसम्मेलन-विवरण में प्रकाशित, लेख
कवि रवीन्द्रनाथ कृत और बा० महावीरप्रसाद द्वारा अनुदित—स्वदेश
बा० सूरजमल द्वारा संग्रहीत—जैनधर्म का महत्व प्रथम भाग
पं० झाबरमल्ल शर्मा द्वारा लिखित—हिन्दू संसार में प्रकाशित १ लेख
पं० शोभालाल शास्त्री द्वारा लिखित—नागरी प्रचारणी पत्रिका में ,, ,,
अज्ञात् विद्वानों द्वारा लिखित—चाँद, त्यागभूमि ओसवाल आदि
में प्रकाशित कई लेख
सर डा० मुहम्मद "इक़बाल" कृत—बांगेदरॉ
श्रीवियोगीहरि कृत—वीर-सतसई
बा० मैथिलीशरण गुप्त कृत—भारत भारती
पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, श्री सोहनलाल द्विवेदी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, लाला शेरसिंह साहब "नाज़", पं० राधेश्याम कवि-रत्न, श्रीछैलबिहारी "कण्टक" महाकवि "हाली" तथा कई अज्ञात कवियों की सामयिक पत्रों में प्रकाशित कविताएँ।

लोकमत

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय कृत "मौर्य-साम्राज्य के जैनवीर" दिसम्बर सन् ३२ में प्रकाशित हुआ था। इन दो-तीन महिनो मे ही उसका काफी आदर हुआ है। उस पर अनेक विद्वान् और समाचार पत्रो ने अपनी सम्मति प्रगट की है, जिनमे से कुछ सम्मतियाँ संक्षेप मे इस प्रकार है.—

भूमिका-लेखक साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, जोधपुर:—

"इस पुस्तक की भाषा मनको फड़कानेवाली, युक्तियाँ सप्रमाण और ग्राह्य तथा विचारशैली साम्प्रदायिकता से रहित, सर्वोपयोगी और उच्च है। हमे पूर्ण विश्वास है कि इसे एक बार आद्योपान्त पढ लेने से केवल जैनो के ही नहीं, प्रत्युत भारतवासी मात्र के हृत्पट पर अपने देश के अतीत गौरव के एक अंश का चित्र अंकित हुये विना न रहेगा। ऐसा कौन अभागा भारतवासी होगा, जो अयोध्याप्रसादजी गोयलीय की लिखी भारत की करीब साढ़ेबाईससौ वर्ष पुरानी इस सारगर्भित और सच्ची गौरव-गाथा को सुनकर उत्साहित न होगा। पुस्तक हर पहलू से उपादेय और सप्रमाण है"।

प्रोफेसर हीरालाल एम. ए. एल. एल-बी. अमरावती:—

"इतिहास और साहित्य दोनो दृष्टियो से पुस्तक उपयोगी है। कठिन परिस्थिति मे पड़ कर भी गोयलीयजी उत्तम साहित्य-सेवा

कर रहे हैं, इसके लिये समाज को उनका बहुत कृतज्ञ होना चाहिये" ।

श्री० ए.एन. उपाध्याय एम.ए.प्रो० राजाराम कालेज कोल्हापुर:—

"श्री गोयलीयजी धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने अपनी प्रवाह युक्त भाषा में यह पुस्तक लिखकर इक सार्वजनिक आव-श्यकता को पूरा कर दिया है । इस पुस्तक को पढ़ कर मुझे निश्चय है, कि जैन लोग जो अपने इतिहास की ओर से उदासीन प्रसिद्ध हैं, अपने अतीत को अपने सामने जगा हुआ देखेंगे" ।

बा० बूलचन्द एम. ए. प्रो० हिन्दू कालेज देहली:—

"पुस्तक को भली प्रकार देखने के बाद मैं यह कहने को तैयार हूँ कि पुस्तक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ और प्रचार का साधन दोनों रूप में ही उपयोगी होगी ।

बा० त्रिलोकचन्द प्रोफेसर हिन्दू यूनिवर्सटी बनारस:—

"इस पुस्तक से जैनपाठशालाओं में पाठ्यक्रमोपयोगी ऐति-हासिक पुस्तकों का अभाव दूर होगा, तथा विचारशील निष्पक्ष जनता पर भी इससे जैनधर्म के प्राचीनत्व की छाप पड़ेगी। पुस्तक की भाषा उत्तम है, शैली भी समयोपगी है । गोयलीयजी का परि-श्रम अत्यन्त प्रशंसनीय है । आशा है वे इस दिशा में अपनी प्रगति अविछिन्न रखकर भविष्य में विशेष रूप से समाज को लाभान्वित करेंगे" ।

बा० पूर्णचन्द नाहर, एम.ए., एल.एल.बी. कलकत्ता:—

"गोयलीयजी की लेखनकला ऐसी चित्ताकर्षक है कि, पाठक

को स्वतः पढ़ने की इच्छा प्रबल हो जाती है।' मैं उनकी लेखन पद्धति, अगाध परिश्रम और इतिहास-प्रेम की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ।"

बा० उमरावसिंह टांक, बी.ए. एल.एल.बी. प्लीडर देहली:—

"श्रीयुत गोयलीय कृत 'मौर्य साम्राज्य के जैन-वीर' नामक निबन्ध मैंने देखा। वास्तव में निबन्ध शिक्षाप्रद, चित्ताकर्षक वीर रस पूर्ण है। मौर्य साम्राज्य के ऊपर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, परन्तु प्रिय गोयलीय ने जिस भाव को लेकर यह पुस्तक लिखी है, वह अपने ढंग की अनूठी बेजोड़ और प्रथम है।"

बा० कीर्तिप्रसाद बी.ए. एल.एल.बी. अधिष्ठाता आत्मानन्द गुरुकुल गुजरानवाला (पंजाब):—

"पुस्तक इतिहास का अच्छा अवलोकन करने के बाद लिखी गई है। श्रीचन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में अजैन होने के भ्रम को दूर करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।'

जैन पुरातत्त्व-वेत्ता पं० जुगलकिशोर मुख्तार:—

"अनेक उपवनों से फूल चुनकर जो आपने इतिहास का यह सुन्दर गुलदस्ता तय्यार किया है, उसका मैं अभिनन्दन करता हूँ। इसकी तैयारी में जो परिश्रम किया गया है और जिस प्रेम की सुदृढ़ शब्द-डोरी में इसे बान्धा गया है वह सब प्रशंसनीय है। पुस्तक की विचारसरणी उत्तम है और उसमें चन्द्रगुप्त का मर्म वाला अंश अधिक महत्व रखता है। चन्द्रगुप्त के जैनत्व-सम्बन्ध में सत्यकेतुजी की यदि वे ही आपत्तियाँ हैं जिनका आपने उल्लेख

किया है †, तो मैं समझता हूँ आप उनका निरसन करने में बहुत कुछ सफल हुये हैं। हाँ, आपके लेखकीय वक्तव्य में निराशामय जिस परिस्थिति का उल्लेख हुआ है, उसे पढ़कर चित्त को चोट लगी और दुःख पहुँचा। वास्तव में जैनसमाज की हालत बड़ी ही शोचनीय है, वह इतिहास और रिसर्च (शोध-खोज) के महत्व को कुछ भी नहीं समझता और इसलिये उससे ऐसे कामों में सहयोग, सहायता और प्रोत्साहन की अधिक आशा रखना ही व्यर्थ है"।

न्याय-व्याकरणतीर्थ पं० बेचरदास प्रो० गुजरात पुरातत्व-मन्दिर अहमदाबाद:—

"पुस्तक लिखने में आपने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है"।

विद्वद्वर्य्य पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई:—

"पुस्तक अच्छी है और प्रचार होने योग्य है"।

मेहता किशनसिंह दीवान हाउस जोधपुर:—

"आपका परिश्रम सराहनीय है, आपने भारतवर्ष के प्राचीन गौरव को भली प्रकार प्रकाशित किया है।"

पं० कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" विद्यालंकार एम.आर.ए.एस:-

"पुस्तक पढ़कर लेखक के सम्बन्ध में बहुत अच्छी राय

---

† चन्द्रगुप्त के जैनत्व के विरोध में श्रीसत्यकेतुजी ने जो भी युक्तियाँ अपने "मौर्य-साम्राज्य के इतिहास" में दी हैं, वे सब की सब ज्यों की त्यों अक्षरशः मैंने "मौर्य-साम्राज्य के जैनवीर" में उद्धृत की हैं। और पुस्तक प्रकाशित होते ही सब से प्रथम रजिष्ट्री द्वारा सत्यासत्य निर्णय के लिये सौजन्यता के नाते उनके पास भिजवा दी गई थी। चार महिने होने आये, मुझे उक्त विद्वान् की अभी तक "मौर्य साम्राज्य के जैनवीर" पर आलोचना प्राप्त नहीं हुई है, नहीं मालूम इसका क्या कारण है ?

—गोयलीय

कायम होती है। समाज यदि सम्मानित जीवन चाहती है तो, उसे ऐसे युवक-रत्नों का सम्मान करना चाहिये और ऐसी पुस्तकों का उचित प्रचार भी"।

बा० चन्द्रराज भण्डारी "विशारद" 'भानपुरा—इन्दौर:—

"पुस्तक पढकर बहुत प्रसन्नता हुई। पुस्तक अत्यन्त परिश्रम और खोज के साथ लिखी गई है। लेखक ने ऐतिहासिक रिसर्च करने मे काफी परिश्रम किया है। जैन-इतिहास जो कि अभी तक बहुत अंधकार मे है—उसको प्रकाश मे लाने का यह प्रयत्न अभिनन्दनीय है। भाषा भी इसकी दौड़ती हुई और मुहावरेदार है। मेरी ओर से लेखक को बधाई दीजिये"।

पं० के० भुजबलि शास्त्री अध्यक्ष जैनसिद्धांत-भवन आरा:—

"प्रस्तुत कृति सर्व प्रमाण और सर्वादरणीय है"।

प० अजितकुमार शास्त्री मुलतान:—

"पुस्तक परिश्रम के साथ सजीव लेखनी से लिखी गई है। ऐसी ऐतिहासिक पुस्तकें ही समाज और देश के उत्थान मे सहायक होती है"।

प० दीपचन्द वर्णी, अधिष्ठाता ऋ० ब्र० आश्रम [illegible], [illegible]:—

"इसे देखते ही मन इसीको पढने मे लग गया, और [illegible] पढे बिना न रहा गया। इसकी भाषा और लेखनशैली [illegible]

पं० महावीरप्रसाद जैन, देहली:—

"गोयलीयजी ने यह पुस्तक लिखकर जैनसमाज का मस्तक ऊँचा किया है। यह उनकी सेवा दो वर्ष की तपस्या का चमत्कार है

दैनिक अर्जुन २८-९-३३ देहली:—

पुस्तक मे वीर-रस प्रधान है। [illegible] हुई [illegible] और

रोचक है। लेखक का परिश्रम सराहनीय है"।

रंगभूमि २२-१-३३ देहली :—

"धार्मिक महत्व के अतिरिक्त इसका ऐतिहासिक महत्व भी काफी है। ···पुस्तक की युक्तियाँ सप्रमाण ग्राह्य हैं और धार्मिक संकीर्णता से दूर है। भाषा भी ओजस्वी है"

जैन-जगत वर्ष ८ अंक ९ अजमेर :—

"लेखक में उत्साह खूब है और पुस्तक पढ़ने से पाठकों में भी उत्साह का संचार होता है"।

जैन-मित्र २६-२-३३ सूरत :—

"पुस्तक पढ़ने योग्य है। बहुत परिश्रम से लिखी गई है"।

सनातन जैन १६-२-३३ बुलन्दशहर :—

"लेखक एक उत्साही परिश्रमी और विचारशील युवक है। ···उन्होंने इतिहास के कूड़े में से रत्न चुन चुनकर यह मणिमाला तैयार की है। भाषा बड़ी ओजस्वी और लेखनशैली युक्ति-युक्त सारगर्भित, पक्षपात रहित तथा समयोपयोगी है।

दिगम्बर जैन, सूरत :—

"वास्तव में पुस्तक बड़ी ही महत्वशाली है"।

जैन-संसार (उर्दू) १-२-३३ देहली :—

"···पुस्तक तवारीख की हैसियत से इस क़ाबिल है कि, उसे एक उच्च स्थान दिया जाय"

नोट—इसका द्वितीय संस्करण परिवर्द्धित परिवर्तित और संशोधित करके नवीन रूप में सचित्र प्रकाशित करने की योजना की जा रही है। मूल्य २०० पृष्ठ का केवल एक रुपया होगा